आँचल
और
आग
लक्ष्मीनिवास बिरला

लक्ष्मीनिवास बिरला

१९७६

सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन

प्रकाशकीय

हिन्दी के पाठक प्रस्तुत उपन्यास के लेखक से भली भाँति परिचित हैं। उनके निवंधों के कई संग्रह और कुछ उपन्यास 'मंडल' से प्रकाशित हुए हैं। पाठकों ने उन्हें वहुत पंसद किया है। अपने निवंधों में वह पाठकों को विचारों की गहराई में ले जाते हैं और सूक्ष्म चिन्तन के लिए उन्हें विवश कर देते हैं। छोटी-सी समस्या भी लेखक के हाथों महत्वपूर्ण वन जाती है।

उपन्यास उनके इतिहास-मूलक हैं। 'पद्मिनी का शाप', 'प्रेम की देवी' आदि उपन्यासों के कथानक उन्होंने इतिहास से लिये हैं; लेकिन अपनी सरस शैली से उन्हें कहीं भी नीरस नहीं वनने दिया। जहां आवश्यक हुआ है, वहां उन्होंने अपनी ओर से रंग भरे हैं और अपनी कृतियों की औपन्यासिकता में अंतर नहीं आने दिया है। पाठक उन्हें पढ़ते समय जहां इतिहास का ज्ञान प्राप्त करते हैं, वहां उपन्यास का आनंद भी लेते हैं।

प्रस्तुत उपन्यास उसी कोटि का उपन्यास है। लेखक को अनुभव हुआ कि इतिहास-पुरुष वीसलदेव को, जो स्वतंत्रता के अमर पुजारियों में से थे, प्रकाश में लाने का प्रयत्न नहीं हुआ। उनको जो यश मिलना चाहिए था, नहीं मिला। अतः उन्होंने उनके संवंध में जो साहित्य उपलब्ध था, उसका अध्ययन किया और उस सामग्री के आधार पर ताना-वाना वुनकर इस उपन्यास की रचना की। उन्होंने इस बात का विशेष ध्यान रक्खा कि वीसलदेव की ऐतिहासिकता यथावत वनी रहे, उस पर आंच न आने पावे। साथ ही इस बात की भी सावधानी रक्खी कि उसके चरित्र के वर्णन में कहीं भी अतिरंजना न होने पावे।

उस ताने-वाने में उन्होंने वीसलदेव की प्रियतमा राजमती के, जो

'धारा की पद्मिनी' के नाम से विख्यात थी, चरित्र को भी गूंथा। वीसलदेव के उदात्त चरित्र की विशेषता यह थी कि उन्होंने अपनी प्रेयसी को पाने के लिए उसके पिता से युद्ध नहीं ठाना, बल्कि एक दूसरा मार्ग अपनाया। उसके भाई की युद्ध में सहायता करके उसके हृदय को जीता।

उपन्यास में जहां शौर्य की आग धधकती है, वहां प्रेम की धारा भी प्रवाहित होती है। इस प्रकार यह कृति जीवन के दो प्रमुख रसों का विशेष रूप से आस्वादन कराती है।

लेखक की शैली के विषय में हमें कुछ नहीं कहना है। पाठक उसे अच्छी तरह जानते हैं। उसमें अपने ढंग का प्रवाह है और शब्दों का संगीत है। उपन्यास को एक बार हाथ में ले लेने पर बिना पूरा किये छोड़ने को जी नहीं करता।

आशा है, यह उपन्यास सभी वर्गों और सभी क्षेत्रों में चाव से पढ़ा जायगा।

—मंत्री

प्रस्तावना

सभी युगों में स्वतंत्रता को दिव्य वस्तु माना जाता है। इसकी रक्षा के लिए नर-नारी प्रयत्नशील रहते आये हैं। पुरुषों ने अवसर आने पर, स्वतंत्रता की वेदी पर अपने प्राणों की बलि हँसते-हँसते चढ़ा दी है।

सभी लोगों में यह भावना रहती है। एक देश की वीरता के उदाहरण दूसरे देशों के कम उत्साही एवं कम साहसी लोगों को प्रेरित करते हैं। इंग्लैंड और फ्रांस के स्वातंत्र्य-संबंधी इतिहास तथा साहित्य ने भारत को अनेक सदियों की नींद से जगाया।

प्राणों का बलिदान करके स्वाधीनता की रक्षा करने की गौरव-गाथाओं से प्रत्येक देश का वायुमंडल गूंजता रहता है। स्वतंत्रता को बनाये रखकर ही सम्मान और स्वाभिमान के साथ रहा जा सकता है। व्यक्तिगत पद-प्रतिष्ठा से भी बड़ा है यह सम्मान। स्वातंत्र्य की लालसा स्वर्गीय आभा से दीपित रहती है। यह एक पवित्र भावना हैं, जिसमें भौतिक उपलब्धि की अपेक्षा आध्यात्मिक सार-तत्व अधिक होता है। अपनी जन्म-भूमि के रूप में ईश्वर के दर्शन करना देशभक्तिपूर्ण कृत्य का प्रधान उत्स है।

आधुनिक युग ने एक नया विचार, एक गतिमान आदर्श, प्रस्तुत किया—वह है राष्ट्रवाद। पहले-पहल इस विचार का उदय पश्चिम में हुआ, और पूर्व के हम लोगों ने उसका अनुसरण किया। परंतु मानव-मन को राष्ट्रवाद की धुंधली धारणा ने स्पंदित किया, उससे भी बहुत पहले, जिस चीज की पताका सर्वत्र फहराती रही, वह थी देशभक्ति की प्रारंभिक आस्था, जो धार्मिक आस्था के समरूप थी।

अति प्राचीन काल से ही भारत में देशभक्ति की भावना का प्राबल्य रहा है। यहां स्वतंत्रता एक पावन वस्तु समझी जाती रही और उसके लिए अनुपम उत्साह से त्याग किये गए। इसी सात्विक भावना के वशीभूत पुरु ने सिकंदर से, राणा रतनसिंह ने सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी से और राणा प्रताप ने बादशाह अकबर से युद्ध किया था। उनके नाम इतिहास के पृष्ठों पर सुनहले अक्षरों में लिखे हुए हैं और अन्य देशों में भी लोगों ने उनके स्वातंत्र्य-प्रेम की सराहना की है।

यह सही है कि वे पराजित हुए, परंतु वे भय से या हीनकोटि की स्वार्थपरता से अथवा स्वतंत्रता की दिव्यता को विस्मृत कर देने की दुर्बुद्धि

से पराजित नहीं हुए। उनके पराजित होने का कारण यह था कि उनका सावका किसी सामान्य सैनिक शक्ति से नहीं, वरन् अपने से हर तरह से वढ़ी-चढ़ी सैन्य-शक्ति से पड़ा था। आक्रांता का शस्त्रास्त्र-वल उनकी प्रतिरोध भावना को नहीं तोड़ सका था। मानवीय श्रेष्ठता की हर कसौटी पर उनकी महानता खरी उतरती थी। विजेता के चरण-चुम्वन के प्रलोभन के विरुद्ध उन्होंने हर तरह का खतरा मोल लिया था।

इस उपन्यास का नायक वीसलदेव स्वतंत्रता के अमर पुजारियों की ही श्रेणी में आता है और उसका स्थान इस कोटि के महापुरुषों में काफी ऊंचा है।

उसकी असाधारण योग्यता की ओर लोगों का यथोचित ध्यान नहीं गया, और यही कारण है कि उसकी जितनी प्रसिद्धि होनी चाहिए थी, हो नहीं पायी। एक वात में वह वेजोड़ है, शत्रु के हाथों उसका पराभव नहीं हुआ। एक अन्य चौहान राजा, पृथ्वीराज चौहान ने भी मुहम्मद गौरी से युद्ध किया था, किंतु दुर्भाग्यवश अंतिम युद्ध में वह मुहम्मद के द्वारा पराजित हो गया। फिर भी, उसके चारण चंद वरदाई ने उस पर एक रासो काव्य लिखा, जिसके कारण उसका नाम लोगों की स्मृति में आजतक वना हुआ है। वीसलदेव चौहान ने न केवल महमूद गजनवी को उसके अंतिम आक्रमण के समय हराया, वरन् देश से उसके शासन का नाम-निशान तक मिटा दिया था। पृथ्वीराज की प्रियतमा संयुक्ता की ही तरह वीसलदेव की भी प्रियतमा थी—राजमती, जो 'धारा की पद्मिनी' के नाम से प्रसिद्ध थी। पृथ्वीराज की तरह वह अपनी प्रियतमा के पिता से नहीं लड़ा, उलटे उसने राजमती के भाई की, उसके शत्रुओं के विरुद्ध सहायता कर राजमती का हृदय जीता। लेकिन अपने जीवन-वृत्त पर एक रासो की रचना करने के लिए उसके पास चंद-जैसा कोई कवि न था, इसीलिए उसके विषय में हमको अधिक ज्ञात नहीं है।

उस काल का इतिहास भी वहुत खंडित है। यही कारण है कि एक वेहद नाजुक दौर में, स्वतंत्रता-सेनानी के रूप में, असाधारण सफलताएं प्राप्त करने के वावजूद, वीसलदेव को इतिहास में उचित स्थान नहीं मिल पाया। इस उपन्यास में इतिहास के प्रति निष्ठा रखते हुए, मध्ययुगीन भारत

की छिट-पुट घटनाओं को चुनकर, अपने चरितनायक के इर्द-गिर्द, उनका ताना-वाना वुनने की चेष्टा की गई है। वीसलदेव की कहानी को इतिहास सम्मत रखने की दृष्टि से, इतिहास का उल्लंघन न होने देने की पूरी सावधानी वरती गई है। उद्देश्य यह है कि एक अत्यंत स्मरणीय वीर पुरुष विस्मृत ही न रह जाय, किंतु साथ ही उसके विषय में ऐसी अलंकृत और अतिशयोक्तिपूर्ण वातें भी न कही जायं, जो ऐतिहासिक संदर्भों की अवहेलना करती हों। औचित्य का ध्यान रखते हुए एक भव्य सफलता की प्रशस्ति तो गायी ही जानी चाहिए।

निस्संदेह, सफलता हो या असफलता, दोनों के समान नैतिक मूल्य हैं। देशभक्ति की भावना, अपने देश के प्रति अडिग-अविभाज्य निष्ठा और देशभक्ति की अग्नि-परीक्षा में भाग लेने के अदम्य उत्साह को प्रधानता मिलनी ही चाहिए। असफलता केवल एक भौतिक परिणाम है, जो किसी वीर जाति के आध्यात्मिक गुणों को कलंकित नहीं करती।

यही स्वाधीनता का आंतरिक तत्व है, उसका दिव्य सार। यदि इसमें कोई अविनश्वर गुण है, तो केवल किसी की संपदा-वृद्धि के लिए इसको विनष्ट नहीं होने देना चाहिए। यदि यह स्वेच्छापूर्वक स्वीकार कर लिया जाय कि सभी लोग मूलतः एक ओर समान हैं, तो स्वतंत्रता प्रत्येक व्यक्ति का न्यायोचित अधिकार वन जाती है, और इसको किसी तरह खंडित नहीं किया जाना चाहिए। वस्तुतः स्वातंत्र्य-प्रेम मानव-जाति के हृदय का मूल तत्व है। परंतु विडंबना यह है कि जिस स्वतंत्रता को निश्चित रूप से अलंघ्य माना जाना चाहिए, उसी पर चोट करके एक आदमी दूसरे आदमी की स्वतंत्रता पर डाका डालना चाहता है। यदि सबको जीने का अधिकार है, तो ठीक उसी तरह सबको स्वतंत्रता से जीने का अधिकार भी है।

स्वतंत्रता को विभाजित करना गलत है और खतरनाक भी, क्योंकि स्वतंत्रता असल में आत्मा की संपत्ति है। यह एक पवित्र विश्वास है, एक ऐसा विश्वास, जिसका पालन करने के लिए सव लोग समान और निर्बाध रूप से अधिकारी हैं। कोई व्यक्ति शारीरिक रूप से सबल हो या दुर्वल, आर्थिक रूप से समर्थ हो या असमर्थ, राजनैतिक दृष्टि से सुरक्षित हो या

असुरक्षित, मानवीय आचार-संहिता उसे स्वतंत्र रहने का अधिकार प्रदान करती है। स्वतंत्रता के लिए समादर सर्वमान्य और सार्वभौम होना चाहिए, और सिद्धांतत: और व्यवहारत: होना चाहिए। सभी इससे सह-मत हैं, फिर भी सभ्यता के आदिकाल से ही, एक दूसरे की स्वतंत्रता के प्रश्न पर, युद्ध होते रहे हैं।

राष्ट्रीय सुरक्षा अपरिहार्य होती है। रणभेरी बजाकर किसी भी समय राष्ट्र को अपने कोट और दुर्गों की रक्षा के लिए कमर कस लेने और आक्रमणकारी को पीछे धकेल देने के लिए आह्वानित किया जा सकता है। यदि राष्ट्र की सुरक्षा के नाम पर वास्तव में अत्याचार हुए हैं, तो यह खेद-जनक है; परंतु इसका यह मतलब नहीं कि हम जिन जीवन-मूल्यों को अपने अस्तित्व या कल्याण के लिए अपरिहार्य समझते हों, उनकी रक्षा में किसी तरह की अकर्मण्यता या शिथिलता बरतें। चूंकि वे मूल्य हमारे जीवन के लिए इतने अनिवार्य हैं, उनको पाने, बनाये रखने और उनका सुख उठाने के लिए प्रयत्न करना और साधन जुटाना सर्वथा उचित ही है।

इसके अतिरिक्त, इस प्रकार की सुरक्षा के प्रबंध के लिए कई प्रकार की राष्ट्रीय शक्ति की आवश्यकता होती है। वर्तमान वातावरण में हमारे राष्ट्रीय जीवन की बहुमूल्य थातियों पर केवल परंपरागत संकटों या सैन्य-शक्तियों की ही कुटिल दृष्टि नहीं लगी है, कुछ ऐसे खतरे भी उन पर मंडरा रहे हैं, जिनका स्रोत, स्वरूप और प्रवृत्तियां असैनिक प्रकार की हैं।

कुछ देश सदा ही दूसरे देशों की प्रतिरक्षा-व्यवस्था की त्रुटियों पर अपनी गृद्ध-दृष्टि रखते हैं। किसी को भी इस बात की चिंता नहीं रहती कि अपना काम बनाने के लिए किस तरह के साधनों का प्रयोग किया जा रहा है। मानव-इतिहास के चारों ओर दर्प, पूर्वाग्रह और शक्ति अपना जटिल जाल बुनते रहे हैं। जब कभी किसी व्यक्ति या देश की भीरुता का पता चलता है, या उसके साधनों की न्यूनता प्रकट हो जाती है, तब लोग निःसंकोच उसके विरुद्ध पाशविक बल-प्रयोग पर उतर आते हैं। ऐसी ही स्थितियां आक्रांता को लुभाती हैं और कभी-कभी आक्रांता विजेता बन जाता है। आक्रमणकारी ने भले ही अवसर का लाभ उठाया हो, उसका कार्य तो मानवता के प्रति विश्वासघात ही माना जायगा।

मानवता की अंतरात्मा को आज असंस्कृत-व्यवहार बुद्धि ग्रस्त किये हुए है। इसके विपरीत, युद्ध में भाग लेनेवाले सभी दल भावना का सहारा लेते हैं। विजय का अभिलाषी आक्रांता हो या स्वतंत्रता की रक्षा के लिए सन्नद्ध प्रतिरोधी, दोनों पक्ष भावावेश जगाने की चेष्टा करते हैं। दोनों में से किसी की भी चाहे जो नीयत हो, कुल मिलाकर हारती तो मानवता ही है।

एक युद्धहीन संसार का निर्माण करना मानव-जाति का चिर-पोषित स्वप्न रहा है, परंतु अभीतक वह स्वप्न सत्य नहीं बन पाया। मनुष्य के भीतर जो सर्वोत्तम है, सर्वोच्च है और मधुरतम है, उसे इस मामले में अपनी दुःखद असफलता स्वीकार करनी पड़ी है। आदमी चाहे हँसे या रोये, युद्ध का रथ हमेशा चलता ही जाता है।

लोगों की दृष्टि में युद्ध एक महान् कार्य, एक श्रेष्ठ साहसिक कर्म और एक वृहद् व्यवसाय है। दो महायुद्ध हो चुके हैं और उनसे जो दुनिया उबरी, वह आंसुओं से भीगी और खून से लथपथ थी। अब अगले महायुद्ध के लिए भी लगातार तैयारियां हो रही हैं। कोई नहीं जानता कि किस पर यह वज्रपात होगा, और कैसे। इतिहास व्यर्थ ही युगों-युगों से अहिंसा का मरसिया लिखता आ रहा है।

जब विपत्ति सिर पर आ जाती है और टाले नहीं टलती, तब वीर पुरुष डटकर उसका सामना करते हैं; स्वतंत्रता की रक्षा के लिए वे अपनी जान की बाजी लगा देते हैं, शानदार बलिदान करते हैं, फिर भी अगर पराजय हो जाय तो उस वीरतापूर्ण पराजय के गीत गाये जाते हैं। ठीक ऐसे ही, जो पक्ष जीतता है, वह अपनी विजय पर हर्षोन्मत हो उठता है और मधुर कोलाहल और हर्षनाद के द्वारा अपनी सफलता का डंका पीटता है। विजित और विजेता के अतिरिक्त एक तीसरा पक्ष भी होता है, जो इतिहास को पढ़ता है, उस पर अपना निर्णय देता है और संयमित स्वर तथा कलात्मक विराग से मानव की दारुण विपत्ति पर मन-ही-मन आंसू बहाता है। स्वतंत्रता के लिए उत्सर्गमय कष्ट-सहन सदा ही बहुत मार्मिक, बहुत कोमल और बहुत विरल रहा है। यह तो ठीक है कि स्वतंत्रता के छिन जाने पर उसके लिए उदात्त शोक प्रकट किया जाता है, परंतु निरंकुश सत्ता के

उपभोग के पाप के प्रति वह कोई नैतिक संत्रास जागता हो, सो बात नहीं। लेकिन यह दुनिया जा किधर रही है, जिसमें ईश्वर की संतानें पवित्र एकता का जीवन जीने के लिए और उसकी करुणामय सृष्टि की स्तुति गाने के लिए भेजी गई थीं ?

अगर मान लिया जाय कि युद्ध का सदा के लिए मुंह काला कर दिया गया तो क्या होगा ? हम सभी निर्दोष प्राणियों के हत्याकांड पर शोक प्रकट करने से, और आत्मत्यागी देशभक्तों की प्रशस्ति गाने तथा अमानुषिक आक्रमण के विरुद्ध ईमानदारी से अपना आक्रोश व्यक्त करने के भावपूर्ण गर्व से वंचित रह जायंगे। सच है, एक बार यदि युद्ध की संभावना को समाप्त कर दिया जाय, तो स्वतंत्रता एक आकर्षणहीन, शुष्क दर्शन-मात्र रह जायगी। उस हालत में करुण-विलाप करने और भव्य देशभक्ति की दुर्घटनाओं का प्रशस्ति-गान करने का कोई औचित्य नहीं रह जायगा। साथ ही, स्वतंत्रता के शत्रुओं पर चुटीले, रोषपूर्ण आक्षेप करने का अवसर भी हमारे हाथ से जाता रहेगा।

अगले पृष्ठों में जिस तरह के व्यक्तियों और घटनाओं का वर्णन किया गया है, उन्हें इतिहास अब और नहीं प्रस्तुत कर सकेगा और 'भारत छोड़ो'—जैसे ऐतिहासिक संघर्ष फिर नहीं घटित होंगे; उस स्वदेशी-आंदोलन के आरंभिक ज्वार भी अब देखने को न मिलेंगे, जिसने मेरे पिता को देशभक्ति का पाठ पढ़ाया था। देशभक्ति की पवित्र भावना ने ही स्वदेशी-क्रांति की नूतन अवस्था में हमारे परिवार को स्वतंत्रता का पुजारी बनाये रखा। लेकिन हम सभी सार्वभौम शांति का एक नया पृष्ठ पलटेंगे, और यहां तथा संसार में अन्यत्र, मानव-जाति उस प्रशस्त कर्म के प्रति अपने को समर्पित कर देगी, जो इस विश्वास से उत्पन्न होता है कि शांति की विजय युद्ध की तुलना में कम यशस्विनी नहीं होती।

—ल० नि० बिरला

आंचल और आग

□ १ वर्षा का जादू

वह विक्रमाब्द १०८२ की सुवह थी। अजयमेरु के राजा वीसलदेव जव अपने खेमे में सोकर उठे, तव सूरज हल्के बादलों से ढका था और सारा वन-प्रदेश कभी सवेरे की कोमल स्निग्ध धूप में और कभी बादलों की छांह में लुका-छिपी खेलता-सा लग रहा था।

वर्षा-ऋतु में ही राजाओं को युद्ध के कठोर श्रम से कुछ अवकाश मिल पाता था। वर्षाकाल युद्धों के लिए उपयुक्त समय नहीं होता, क्योंकि प्रजाजन अपनी खेतीवाड़ी के कामों में व्यस्त रहते थे। जो राजा इस ऋतु में युद्ध छेड़ वैठते, वे शीघ्र ही अपनी प्रजा का समर्थन खो देते और उनका अपने सिंहासन पर वने रहना कठिन हो जाता था। इस साल वर्षा अच्छी हुई थी और प्रजा के सुखी-संतुष्ट होने के लक्षण दिखायी दे रहे थे।

वास्तव में वर्षा-ऋतु के आगमन के साथ समस्त देश में आनंद की हिलोरें उठने लगती हैं। वर्षा के उमड़ते-घुमड़ते मेघ ऋतु के मन की तरंग होने के अतिरिक्त और भी कुछ हैं। वे पृथ्वी और आकाश के समीप आने के प्रतीक हैं। जब वर्षा-जल की रजत धारें पृथ्वी पर गिरने लगती हैं, तब आकाश और पृथ्वी अपने मिलन की खुशी में गुनगुना उठते हैं। धरती का हरा-भरा होना केवल वनस्पतियों के पनपने का ही सूचक नहीं है; लता-वल्लरियां और सिर उठाये अनाज की वालियां प्रकृति-मां के स्वागत में हाथ हिलाती हुई उससे कहती हैं कि धरती का हृदय गद्गद् हो उठा है। फूल के पौधों की झूमती हुई टहनियां आसमान से कनबतियां कर अपना मूक, सार्थक प्रेम-संदेश देती हैं। जब वर्षा थम जाती है तब सूर्य पृथ्वी को अपना अरुण संगीत सुनाता प्रतीत होता है। फिर वादल, जो दो प्रेमी

हृदयों के इर्द-गिर्द मंडराता रहता है, अक्सर दोनों को परस्पर ताक-झांक करने की अनुमति दे देता है।

मध्यकाल में राजाओं को दूसरे छोटे-बड़े राजाओं के आक्रमणों से ही अपने राज्य को बचाने के लिए हमेशा चौकस नहीं रहना पड़ता था, वल्कि उन्हें अपनी प्रजा को बटमारों और लुटेरों से भी सुरक्षित रखना पड़ता था।

वीसलदेव सात वर्षों से शासन कर रहे थे। इस छोटी अवधि में ही उन्होंने अपने राज्य-क्षेत्र में वृद्धि कर ली थी। वे शक्तिशाली राजा थे और उनके शत्रु उनसे भयभीत रहते थे। बटमार और लुटेरे बड़े राज्यों की सीमा में प्रवेश करने का साहस नहीं करते थे, क्योंकि ऐसे राजाओं के पास विशाल सेनाएं हुआ करती थीं।

वीसलदेव सामान्यत: उद्विग्न और अशांत रहते थे। राजकाज में वे इतने व्यस्त रहते थे कि उन्हें आमोद-प्रमोद के लिए कम ही समय मिल पाता था। युद्धों के अलावा, दरवारी कामकाज भी कम थकानेवाले नहीं थे; समय के साथ उनको भी इतना महत्व प्राप्त हो गया था कि वे पवित्र अनुष्ठान-जैसे वन गये थे। वीसलदेव को राजकाज और राज-पद के साथ लगे रहनेवाले झंझटों से जब कभी बच निकलने का अवसर मिलता, वे वन-प्रदेश में चले जाते और वहां जाकर उन्हें बड़ी राहत मिलती थी, उनकी सारी उद्विग्नता मिट जाती थी। जंगल को वे कितना प्यार करते थे!

तीन राज्यों के सीमान्त के मध्य में स्थित होने के कारण इस वन में तीनों राज्यों के लोग अपना अवकाश व्यतीत करने के लिए आया करते थे। बारहसिंगों और हिरणों की उसमें भरमार थी और जहां-तहां चीते भी मिल जाते थे। वीसलदेव को घेरकर उनके कुछ सैनिक और सामंत खड़े थे, जो अस्त्र-शस्त्र चलाने में दूसरों से बढ़-चढ़कर थे, परंतु वीसलदेव के आयुध-कौशल के सामने वे भी पानी भरते थे। उनकी आंखों ने दृश्य का जायजा लिया और आसन्न धावे की कल्पना करके वे हर्षित हो उठे, उनकी आंखें अदृश्य को चीरती चली गईं।

"रणवीर, आखेट की तैयारी करो।" सबसे समीप खड़े व्यक्ति को यह आदेश देकर वीसलदेव अपने खेमे में चले गये।

जब वे बाहर निकले, तो दिन शांत था। मंद-मंद पवन प्रवाहित हो रहा था, जिससे दिन की तपन दूर हो रही थी। आसमान में छितराये बादलों से छन-छनकर धूप वृक्षों की फुनगियों पर पड़ रही थी। वीसलदेव ने अचानक अपने हृदय में एक स्पंदन और दायीं भुजा में फड़कन अनुभव की। यह शकुन इस बात का सूचक था कि उनकी भेंट किसी प्रिय व्यक्ति से होगी। लेकिन कौन हो सकता है वह व्यक्ति? उनके राज्य से तो किसी आदमी के आने की आशा थी नहीं!

राजा के पीछे-पीछे उनके बहुत-से साथी और परिचारक चल रहे थे, जिससे असाधारण कोलाहल हो रहा था। राजा ने तेजी से एक नजर उन पर डाली और उनमें से अधिकांश को वापस लौट जाने का आदेश दिया। केवल पांच या छह योद्धाओं को, जो निशाना लगाने में कुशल माने जाते थे, उन्होंने अपने साथ रखा। इस छोटे-से दल को लेकर वे वृक्षों की सघन छाया तले जंगल में आगे बढ़ने लगे। नीचे जंगली झाड़ियां थीं, जो ढलान पर से होती-होती उस जगह तक फैली हुई थीं, जहां एक बरसाती नाला सुंदर हरे-भरे चरागाह में से टेढ़ा-मेढ़ा बह रहा था। लंबी-लंबी घास में से सिर उठाये जंगली फूल मस्ती में झूम रहे थे। जहां-तहां नीम के पेड़ भी दिखायी दे जाते थे, जिनकी पत्तियां हरी-भरी थीं और जिनके फूलों की भीनी-भीनी सुगंध वायुमंडल को सुवासित कर रही थी। इधर-उधर काई लगे पत्थर बेतरतीब बिखरे हुए थे।

मंद बयार से कभी-कभी वृक्षों के ऊपरी सिरे की पत्तियां सरसराने लगतीं, तो ऐसा जान पड़ता, मानो वे गीत की कोई कड़ी गुनगुना रही हों। जब यह शिकारी-दल थोड़ी खुली जगह में आ गया, तब वृक्षों की संख्या भी कम हो गई। वृक्षों के बीच उन्होंने कुछ बारहसिंगों को चरते देखा। एक क्षण के लिए बारहसिंगों ने अपने कान खड़े कर लिये, मानो उन्हें अनाहूत आगंतुकों के समीप होने का आभास मिल गया हो।

वीसलदेव निःशब्द खड़े हो गये। सबसे बड़े बारहसिंगे पर निशाना साधकर उन्होंने एक बाण छोड़ दिया। बाण बारहसिंगे की गर्दन में बायीं ओर लगा; लेकिन तभी अचानक कहीं से एक सनसनाता तीर आया, जो उसकी गर्दन की दायीं ओर घुस गया और वह गिर पड़ा। झुंड के दूसरे बारहसिंगे चौकड़ी भरते हुए भाग निकले। वीसलदेव अपने शिकार की ओर बढ़े। उनके शिकार पर किसी दूसरे ने बाण चलाया है, यह सोचकर उनका चेहरा तमतमा गया, परंतु उनकी क्रोधाग्नि पूरी तरह भड़कने के पहले ही शमित हो गई।

जिस खुली जगह पर वे खड़े थे उसके दूसरी ओर से आती हुई एक बाला पर उनकी दृष्टि पड़ी, जो वेश-भूषा और चालढाल से कोई राजकुमारी जान पड़ती थी। उस बाला के पीछे-पीछे दस महिला-सैनिक हाथ में नंगी तलवारें लिये आ रही थीं। बाला का मुंह क्रोध से लाल हो गया था। क्रोधावेश में वह और सुंदर दिखायी दे रही थी। वीसलदेव का अपने जीवन में अनेक स्त्रियों से परिचय हुआ था, लेकिन इतना अछूता और पूर्ण सौंदर्य वे पहली बार ही देख रहे थे। इस सुंदरी को देखकर उन्होंने अपना दिल थाम लिया।

वह लंबी नहीं थी, परंतु उसकी चाल-ढाल में जो गरिमा थी और उसकी लंबी सुराहीदार गर्दन पर उसका सिर जिस अनुपम भंगिमा से झुका हुआ था, उससे वह लंबी भी लगती थी और महिमामयी भी।

उसका चेहरा दिल की शक्ल का था। उसके स्निग्ध, गौर ललाट के मध्य से निकलती हुई मांग केशराशि को स्पष्टतः दो भागों में बांट रही थी। तीतर के डैनों की भांति उसकी आंखें बड़ी-बड़ी थीं, जो अब गुलाबी रंग की हो गई थीं, उनका रंग उसके रक्तिम, ऊष्ण और आकर्षक अधरों से पूरी तरह मेल खाता था। वीसलदेव अपने विचारों में खो गये। उनके मुख से सहसा निकल पड़ा, "सुंदर! उदीयमान सूर्य की झिलमिलाती कांति!"

बाला ने कभी सोचा तक न था कि कोई पुरुष अपने श्यामल नेत्रों से

उसकी ओर इतनी ढिठाई से देख सकता है !

"इस तरह बोलने और मेरे शिकार पर तीर चलाने का तुम्हें साहस कैसे हुआ ?" क्रोध की उत्तेजना में इससे अधिक उससे बोला न गया। उग्रता और आवेश में कहे गये उसके शब्द आपस में ही टकरा गये। क्रोधावेश के कारण उसकी आंखें कौंध गईं, जिससे सारा चेहरा आश्चर्यजनक रूप से सुंदर लगने लगा।

इसमें गजब की दिलेरी है, वीसलदेव ने सोचा। लेकिन वन, पवन और बादल ने उसके स्वर को मधुर बनाकर उसमें झंकार पैदा कर दी थी। जो हो, बाला भी उद्विग्न हो उठी थी। उसकी दृढ़ युवा-देह में अब एक कंपित हृदय था, जो लयबद्ध रूप से स्पंदित हो रहा था। फूलदार कौशेय कंचुकी के भीतर उसके वर्तुल वक्ष श्वास की गति के साथ उठ-गिर रहे थे।

वीसलदेव के कान उसकी वाणी को सुनने के लिए व्याकुल थे और उनकी आंखें उसके मुखमण्डल, उसके हाथों के हाव-भाव और उसके सिर की गति को देखने में व्यस्त थीं।

वीसलदेव ने उसकी बात का उत्तर नहीं दिया, इसलिए वह और भी कुपित हो गई। परंतु जब उसकी दृष्टि वीसलदेव के सशस्त्र सैनिकों पर गई, तब उसने अपने को नियंत्रित करने का प्रयास किया। फिर भी यह प्रयास उसके लिए बहुत बोझिल सिद्ध हुआ। उसमें कंपकंपी दौड़ गई, मानो वन-प्रदेश को हवा का कोई ठंडा झोंका झकझोर गया हो !

वीसलदेव राजकुमारी के मुखड़े को एकटक निहारते रहे। तभी उनको अंतर्बोध हुआ कि वह कांप रही है। इस अनुभूति ने मानो राजकुमारी के कथन के प्रति उन्हें पूर्णतः सचेत कर दिया।

"राजकुमारी, क्षमा करें, मैंने आपको देखा नहीं। शिकार आपका है, मेरी शुभकामनाओं सहित उसे स्वीकार कीजिये।"

उनके शब्दों ने राजकुमारी की क्रोधाग्नि को भड़काने में घी का काम किया। वह तनकर बोली, "राजकुमारी दान नहीं लेती, दान देती है।"

इतना कहकर उसने मुंह फेर लिया। आवेशवश वह रुंआसी हो उठी

थी। फिर वह तेजी से पलटी और इससे पहले कि वीसलदेव उससे और कुछ कहते, वहां से चल दी।

राजकुमारी अपने शिविर में लौट आई; परंतु आज की घटना के लिए उत्तरदायी उस पुरुष को वह न भुला सकी। उसके विषय में उसका सोचना स्वाभाविक ही था। वन में आखेट के निमित्त आने से पहले, उसने कभी आशा नहीं की थी कि उसकी भेंट इतने असाधारण व्यक्ति से हो जायगी। उसके आजतक के सभी परिचितों से उस पुरुष का व्यक्तित्व एकदम भिन्न था।

उसके काले केश चौकोर ललाट पर से पीछे की ओर कढ़े हुए थे और नक्श निश्चय ही सुंदर होने का प्रमाण दे रहे थे। यद्यपि आयु में वह कुछ बड़ा जान पड़ता था, तो भी कद उसका लंबा था और सीना चौड़ा। वह निडर मालूम पड़ता था। राजकुमारी ने महसूस किया कि ऐसे व्यक्ति से भेंट हो जाना प्रसन्नता का ही विषय है। उसने राजकुमारी को डरानेवाली कोई हरकत नहीं की थी। उसने जहां राजकुमारी के मन में कुतूहल जगाया था, वहीं उसे व्याकुल भी कर दिया था।

जबतक वह वृक्षों के पीछे जाकर आंखों से ओझल न हो गई, वीसलदेव उसे टकटकी बांधे देखते रहे। वह शिकारी युवती, जिसके पैरों में जैसे बिजली के पंख लग गये थे, अवश्य कोई राजकुमारी होनी चाहिए। अब वीसलदेव को पछतावा हो रहा था कि उन्होंने न तो उसका गांव-ठांव पूछा और न यही कि वह किस राज्य की राजकुमारी है।

□ २ अंधेरे से चांदनी में

वीसलदेव विकल थे। वे सोना चाहते थे, परंतु नींद उनके पास नहीं फटक रही थी। उस दिन सवेरे जंगल में उन्होंने जिस चेहरे को देखा था,

वह वार-बार उनके स्मृति-पटल पर उभर आता था। आखिर वे कवतक विस्तर पर करवटें वदलते रहते ! अंत में उठ खड़े हुए और जंगल की ओर चल पड़े। शायद जंगल उन्हें कुछ राहत दे सके। रणवीर उनके पीछे चलने को हुआ, लेकिन हाथ के इशारे से उन्होंने उसे मना कर दिया।

वादल छंट गये थे। आकाश में लटके रात्रि के गुंवद में तारों का जाल तना हुआ था और सप्तमी का चांद अपनी शीतल किरणों से अमृत-वर्षा कर रहा था। शीघ्र ही वीसलदेव को एक पगडंडी मिल गई, जो जंगल के भीतर जा रही थी। जंगल में वृक्षों की सघन छाया चंद्रमा के प्रकाश को अवरुद्ध किये हुए थी, इसलिए वहां अपेक्षाकृत अंधेरा था। एक खरगोश तेजी से भागता हुआ रास्ता काट गया; एक उल्लू कहीं पास ही 'घू-घू' कर बोल उठा, और पेड़ों के नीचे उगी झाड़ियों में सरसराहट-खड़खड़ाहट हो उठी।

कुछ देर तक वे इसी तरह चलते रहे। उन्हें लगा कि वे किसी झील के पास पहुंचते जा रहे हैं, क्योंकि हवा ताजा शीतल जल की गंध से बोझिल थी। थोड़ी देर वाद वृक्षों की संख्या कम हो गई और रुपहले जल की झिलमिल दिखायी दी। अभी वह अंधेरे में ही थे कि उन्हें हिलती-डुलती कुछ छायाएं नजर आईं। कुछ क्षणों तक वे निःशब्द खड़े रहे और जंगल के अंधेरे में आंखें गड़ाकर उन छायाओं को पहचानने की कोशिश करते रहे। तभी अपने सिर के ऊपर की डाल पर उन्होंने हजारों मधुमक्खियों की तीखी भनभनाहट सुनी। वे उझककर वहां से हट गये और खुली जगह की दूसरी तरफ जा खड़े हुए। जहां वे खड़े थे, वहां अंधेरा था।

वीसलदेव के सामने ही एक झरना झर रहा था, जिसका पानी झील में गिरता था। झरने की दायीं ओर एक पुराना शिव-मंदिर था। कभी वह मंदिर अवश्य सफेद रहा होगा, परंतु अव धूप और वरसात सहते-सहते उसका रंग फीका पड़कर दूधिया पत्थर जैसा हो गया था, जिसके कारण वह अब भी सुंदर दिखायी दे रहा था। यहां हर चीज निःशब्द, मौन थी।

केवल एक ही ध्वनि सुनायी दे रही थी, और वह थी निर्झर की सुमधुर ध्वनि !

बीसलदेव वहां दम साधे खड़े रहे। जब वे मंदिर की ओर टकटकी लगाकर देख रहे थे, तभी उनके मन में पूर्वाभास हुआ कि कुछ नई घटना घटने वाली है। अचानक उन्होंने देखा कि मंदिर की ओर से कोई आ रहा है। अरे, यह तो राजकुमारी थी ! वह मौन, मंथर गति से चल रही थी। उसने श्वेत पारदर्शी परिधान अपने शरीर पर लपेट रखा था। वह ढलान पर उतरती-उतरती पानी तक पहुंच गई।

कुछ देर तक वह चुपचाप खड़ी रही। ऐसा लगा, मानो वह प्राकृतिक सौंदर्य को आंखों से पी लेना चाहती हो। जिस वस्त्र से उसने अपने शरीर को ढक रखा था, वह धीरे-धीरे उसकी कमर तक गिर पड़ा और फिर वहां से उसके पैरों के पास जमीन पर।

उसने सिर को पीछे की ओर झटक दिया और अपने चेहरे को चंद्रमा की ओर उठाया, जो वृक्षों के ऊपर चमक रहा था। उसका सौंदर्य वर्णनातीत था। संगमरमर-सा सुडौल शरीर, आपस में सटी हुई पुष्ट जंघाएं, उभरे हुए नितंब, कजरारे केश।

एक क्षण अपने शरीर को तौलती वह खड़ी रही, फिर छपाक से मछली की तरह पानी में कूद पड़ी। काफी देर तक वह झील में तैरती रही। कभी तैरते-तैरते झील के मध्यभाग की ओर बढ़ जाती और कभी पलटकर किनारे की ओर। तैरते-तैरते जब वह थक गई, तब किनारे पर आ गई और कगार की ऊंचाई पर, मंदिर के सामने, जा खड़ी हुई। चांदनी में उसका गीला शरीर झिलमिला रहा था। उसकी केशराशि और शरीर से टपकती जल की बूंदों को चंद्रमा की किरणें सतरंगी बना रही थीं।

अपने हाथ ऊपर करके उसने लंबे बालों को निचोड़ा और बार-बार उन्हें ऐंठकर उनका पानी निथार दिया, फिर सिर को झटका देकर उसने बालों को छितरा दिया, ताकि वे जल्दी सूख जायं। उसके केश सुंदर और खूब काले थे और पीठ पर कटि को छूते हुए घटा की तरह फैले थे। उसके

गुलाबी चेहरे के इर्द-गिर्द लटें बिखरी हुई थीं। उसकी तपे कुंदन-सी गौराई ताजगी लिये हुए थी और देह-यष्टि को देखकर लगता था कि उसमें पर्याप्त जीवनी-शक्ति है।

फिर जैसे अप्रत्याशित रूप से वह आई थी, वैसे ही वहां से चल दी और मंदिर की छाया में जाकर विलुप्त हो गई।

वीसलदेव ने एक गहरी सांस ली। उसके सौंदर्य का अपलक पान करते हुए वे दम साधे, ठगे-से वहां खड़े रह गये थे। सचमुच ऐसे अप्रतिम सौंदर्य की उन्होंने कभी कल्पना तक नहीं की थी—चांदनी रात, झील का चमचमाता जल, सघन काले-काले वृक्ष और उस सारे वातावरण को सविशेप बनाता राजकुमारी का छबीला, सर्वांग सुंदर, पुष्ट शरीर।

धीमे-धीमे, मानो अपनी इच्छा के विरुद्ध खिंचे जा रहे हों, इस तरह, छायाकृतियों को भूलते हुए, वे मंदिर की ओर चल पड़े। मंदिर के पास पहुंचे ही थे कि अचानक राजकुमारी उनके सामने प्रकट हो गई। यद्यपि उन्हें आशा थी कि वे उसे देख पायंगे तो भी उसके इस तरह सहसा सामने आ जाने से वे चौंक पड़े। अब उसने पूरी तरह वस्त्र पहन लिये थे। अंधकार से जब वह चांदनी की ओर बढ़ रही थी, तब उसके पैरों से चलने की कोई आहट नहीं हुई थी।

उसके होंठ खुले थे। एक क्षण के लिए उसने जब चंद्रमा की ओर सिर उठाकर देखा तो उसकी आंखें विस्फरित हो गईं और अद्भुत आभा से आलोकित हो उठीं। राजकुमारी को इस बात का आभास तक न था कि कोई पुरुष उसे देख रहा है। उसने पारदर्शी वस्त्र की चोली पहन रखी थी, जो रुपहले फीते से उसके स्तनों के नीचे तक कसी थी। अपनी नंगी वांहों के नीचे से घुमाकर उसने कंधे पर एक मखमली दुपट्टा डाल रखा था, जिसके आंचल पर सुनहले किमखाव की गोट लगी हुई थी। कमर में उसने सुनहले, सफेद धागों का बना लहंगा पहन रखा था, जो पैर की पिंडलियों तक लहरा रहा था। उसने पुनः चांद की ओर देखा और एक ठंडी सांस भरी।

उसे अवश्य किसी अंत:प्रेरणा से पता चल गया था कि कोई उसे देख रहा है, क्योंकि उसने तेजी से अपना सिर घुमाया और एक क्षण के लिए वीसलदेव को देख लिया। दोनों में से कोई भी अपनी जगह से नहीं हिला, किंतु राजकुमारी का हाथ अपनी छाती की ओर गया, मानो वह अपने हृदय की आकस्मिक धड़कन को शांत करने की चेष्टा कर रही हो।

"तो, तुम फिर आ गये! यहां क्या कर रहे हो?" उसने पूछा। किंचित् भयातुर होने के कारण उसकी आवाज धीमी निकली। उसने यह जानने के लिए कि उसकी महिला-सैनिक वहां हैं या नहीं, इधर-उधर देखा। जाहिर था कि वे वीसलदेव को नहीं देख पाई थीं।

वीसलदेव ने अदव से झुककर कहा, "मैं इस स्वर्ग को, जिसका मुख्य आकर्षण-केंद्र एक अप्सरा है, देख रहा हूं।" उन्होंने जव राजकुमारी की ओर ताका, तव उनकी आंखों में एक चमक थी।

"तुम चाहते क्या हो? किसने तुम्हें भेजा है?" राजकुमारी ने पूछा, परंतु यह पूछने से पहले उसने एक-दो क्षण के लिए वीसलदेव को घूर कर देखा।

"मुझे न किसी ने भेजा है, न मैं कुछ चाहता हूं।" वीसलदेव ने उत्तर दिया, "मेरा यहां आने का भी ठीक वही प्रयोजन है, जो आपका है।"

एक क्षण के लिए ऐसा लगा, मानो वीसलदेव के उत्तर ने उसको पुन: आश्वस्त कर दिया हो। वह तो शायद उनसे कुछ उग्र उत्तर की आशा कर रही थी। अव छाती पर रखा उसका हाथ कांपता नहीं जान पड़ा। उसने अपने स्वर में नरमी लाते हुए कहा, "तो, कृपया यहां से चले जाइए, अन्यथा मुझे अपने सैनिकों को वुलाना पड़ेगा।"

"क्या मैं पहले यह पूछ सकता हूं कि किस अधिकार से आप इस तरह के आदेश दे रही हैं?" वीसलदेव ने पूछा।

राजकुमारी का रुख कुछ कड़ा हो गया। उसने दर्प-भरे स्वर में कहा, "किस अधिकार से? अपने स्वयं के अधिकार से। मैं हूं धारानगरी की राजकुमारी राजमती। मैंने पहले ही आपको आवश्यकता से अधिक छूट

दे दी है। अब चलते बनिए यहां से।"

वीसलदेव के चेहरे पर चांदनी पड़ रही थी। राजकुमारी ने यह जानने के लिए कि उसके शब्दों की क्या प्रतिक्रिया हुई, उनकी ओर देखा। सहसा उसे लगा कि जिस पुरुष के साथ वह इतनी कठोरता से पेश आ रही है, वह गजब का सुंदर और असाधारण व्यक्ति है। उसने सोचा, जैसा कि उससे पहले भी बहुत-सी स्त्रियों ने सोचा होगा कि इस पुरुष का रूप ही आकर्षक नहीं है, अपने चौड़े जबड़ों या अपनी विचित्र गहरी काली आंखों के कारण ही, जो किसी स्त्री की ओर देखते समय रहस्यमय ढंग से उसके अंतस्तल में पैठ जाती थीं, वह सामान्य से कुछ अधिक आकर्षक ही नहीं है, वरन् उसमें ऐसी कोई खास चीज है, जो उसे स्त्रियों के लिए अधिक मोहक बना देती है। उसका मुखमंडल प्रसन्न और भोला था, परंतु जैसा कि कभी-कभी सज्जन और सरल व्यक्तियों के साथ होता है, उसमें समझ, अनुभवशीलता तथा इच्छाशक्ति की कमी नहीं लक्षित हुई। यद्यपि वह इस समय मुस्करा रहा था, तथापि उसके चेहरे का निचला हिस्सा—खासतौर से होंठ और ठोड़ी—उसके दृढ़ निश्चयी होने की गवाही दे रहा था। उसकी चाल का बांकपन, उसकी वाणी की शिष्टता और उसके व्यवहार से टपकता आभिजात्य यह सूचित कर रहा था कि वह अवश्य कोई राजा है।

क्षण-भर के लिए दोनों की आंखें चार हुईं, फिर झट से राजमती अपनी दृष्टि उधर से हटाकर कहीं दूर देखने लगी—गहरी चुप्पी साधे अंधियारे जंगल की ओर। राजमती ने अपने गालों का सुर्ख होना महसूस किया। उसे विश्वास नहीं हो रहा था कि कोई भी आदमी इतनी ढिठाई से उसकी ओर देख सकता है। किसी असाधारण व्यक्ति से इस जंगल में उसकी भेंट होगी, उसने यह कब सोचा था ?

वीसलदेव ने देखा कि राजमती को अपनी विवशता का अनुभव हो रहा है, अतः वे तुरंत एक कदम पीछे हट गये। उन्होंने कहा, "मुझे क्षमा करें ! अगर आप चाहती हैं कि मैं चला जाऊं, तो तुरंत चला जाऊंगा।"

वीसलदेव ने जब पूरी तरह हथियार डाल दिये तो राजमती की उत्सुकता उनके प्रति जाग उठी। बोली, "शायद आप रास्ता भूल गये हैं, वरना इतनी रात गये यहां न आते।"

वीसलदेव ने कहा, "रास्ता ही नहीं, वल्कि उससे कहीं ज्यादा कीमती चीज..."

"सचमुच ?" राजमती ने भौंहें चढ़ाकर प्रश्नसूचक दृष्टि से उन्हें देखा।

"ऐसा मेरे साथ इससे पहले कभी नहीं हुआ।" वीसलदेव ने कहा, "जब मैं वहां दूर, वृक्षों के बीच खड़ा था, तब मैंने कोई चीज देखी, जो इतनी सुंदर थी, इतनी अनुपम कि मेरा दिल काबू में न रहा और मैं हमेशा के लिए उसे गंवा बैठा।"

उसके हाथों में कंपन हुआ और वह वीसलदेव की ओर नजरें उठाकर न देख सकी। "आप...आपका मतलब है कि...आप यहां काफी देर से मौजूद हैं ?" उसने हकलाते हुए कहा।

"कुछ क्षणों से...नहीं, अनंतकाल से।"

वीसलदेव ने उसके कपोलों को आरक्त होते देखा, जिससे उसकी सुंदरता और भी बढ़ती जान पड़ी।

अभिमान और मधुर सलज्ज भंगिमा से राजमती ने कहा, "अच्छा हो कि अब आप यहां से चले जायं।"

एक क्षण दोनों में से कोई अपनी जगह से हिल न सका। वे एक-दूसरे की आंखों में आंखें डाले देखते रहे, न जाने किस शक्ति से, जो उनकी इच्छा और विचारों से परे थी। वीसलदेव के व्यक्तित्व में शक्ति और सबलता का ऐसा आभास था, जो किसी भी देखनेवाले को प्रभावित किये बिना न रहता था। उनको देखकर यही लगता था कि उनके मार्ग में चाहे जो दुर्धर्ष बाधा या विरोध आये, वे उसपर निश्चय ही काबू पा लेंगे।

राजमती को ऐसा जान पड़ा, मानो वह वीसलदेव से चिरकाल से प्रेम करती आ रही है। उनके प्रति विश्वास और आदर का भाव अकस्मात्

उसके हृदय में जाग उठा। एक क्षण के लिए भी यह ख्याल नहीं आया कि जो पुरुष सामने खड़ा है, वह क्या सचमुच उससे प्रेम करता है या केवल मुंहदेखी प्रीति जता रहा है; या उसका यह प्रेम-प्रदर्शन क्षणिक भावावेश है। सिर्फ यही विचार आया कि अगर सौभाग्य से उसका विवाह उसके साथ हो जाय, तो दोनों सुखी-संतुष्ट हो सकेंगे और सारी दुनिया से बेखबर अपने प्रेम की अलग दुनिया वसा सकेंगे।

अचानक उसकी चार महिला-सैनिक भागती हुई वहां आईं और उन्होंने वीसलदेव को घेर लिया। जादू टूट गया।

"मैं फिर कल रात में यहां आऊंगा। आशा है, आपसे भेंट होगी—अकेले में।" वीसलदेव ने ये शब्द इतने धीरे, फुसफुसाते हुए कहे कि वह केवल अटकल से ही उनका तात्पर्य समझ पाई। वीसलदेव उसकी ओर देखकर भरपूर मुस्कराये और फिर जाने के लिए मंथर गति से मुड़े।

किसी भी नारी के लिए कदाचित् इससे वढ़कर कोई आनंददायक अनुभूति नहीं होती कि कोई उसकी प्रशंसा कर रहा है। राजमती ने लज्जा से लाल होकर अपना मुख दूसरी ओर फिरा लिया। उसने सोचा कि उसकी सैनिकों ने भी अवश्य वीसलदेव की बात सुन ली होगी।

इसके वाद, मौन के वे क्षण आये, जो दो तन एक प्राणवाले व्यक्तियों के वीच ही आ सकते हैं और जब भावों की समरसता के आगे वाणी अशक्त और निरर्थक हो जाती है। राजमती के मन को यह आगंतुक भा गया था, इसीलिए तो उसे लगा था कि वह इसपर सहज विश्वास कर सकती है। उसने अपनी परिचारिकाओं से कहा, "इन्हें जाने दो!"

राजमती की ओर पुनः देखे विना वीसलदेव चले गये। जिस पगडंडी से वे आये थे, उसे पाने में उन्हें कोई कठिनाई नहीं हुई। थोड़ी ही देर में वे जंगल के वृक्षों की छाया में ओझल हो गये।

उस लौटती हुई आकृति को देखती हुई राजमती वहां कुछ देर तक खड़ी रही। अब पहली बार उसे ख्याल आया कि उस पुरुष ने अपने बारे में तो कुछ वताया ही नहीं। मंद पवन के कारण धीरे-धीरे डोलती

वृक्ष-छायाओं को घूरते हुए उसने अपने को बहुत खोया-खोया और लाचार-सा महसूस किया। उसे स्वयं अपने ऊपर आश्चर्य हुआ कि उसने उसका परिचय क्यों नहीं पूछ लिया; परंतु पूछती कैसे, वह तो उसे देखते ही ठगी-सी जो रह गई थी!

☐ ३ कोई और

राजमती अपने ही विचारों में मगन शैया पर लेटी हुई थी। कुछ देर इसी दशा में पड़े रहने के बाद वह उठी, अपने वस्त्र उतारे और गहरी सांस लेकर पुनः बिस्तर पर जा गिरी। किंतु उसे किसी तरह कल नहीं पड़ रही थी। सहसा अपने पलंग से उछलकर वह झरोखे पर पहुंची और उसके पर्दे हटा दिये। दूधिया चांदनी से खेमे का फर्श भीग गया। राजमती ने झरोखे से बाहर देखा, वृक्षों के नीचे काली-जामुनी छायाएं, शीतल और रहस्यमय, पसरी हुई थीं। चांदनी का स्पर्श पाकर भी वे मुश्किल से ही उजली हो पाई थीं। मंद-मंद पवन प्रवाहित हो रहा था, जिससे वृक्षों के पत्तों में हल्की-सी मर्मर ध्वनि हो रही थी। फूल-पत्तियों की भीनी-भीनी सुगंध वायुमंडल में भरी हुई थी।

झील के तट पर जो कुछ घटित हुआ था, उसका पूरा-पूरा अहसास उसे अब जाकर हुआ। भावों की बाढ़-सी उसके मन में आ घिरी। उसका हाथ अपने गालों पर चला गया, मानो उनसे फूटे पड़ रहे गुलाबी रंग को वह छिपाने की चेष्टा कर रही हो। यद्यपि उसके चारों ओर मौन, शांति का साम्राज्य था, तथापि उसके अंतस्तल में भावों की लहरें तुमुल नाद कर रही थीं, जिनको पूर्णतया समझ पाने में वह असमर्थ थी।

झरोखे से हटकर वह खेमे के भीतर टहलने लगी। कितना अद्भुत,

कितना अप्रत्याशित और चमत्कारिक था वह सब ! इतनी उल्लसित वह कभी नहीं हुई थी। कैसे इतना हर्षोन्माद किसी के हृदय में समा सकता है, इसका अनुभव उसे पहली बार ही हो रहा था। वह एक-एक बात को मन-ही-मन दुहरा रही थी। जैसे ही उनकी नजरें मिलीं, एक अजीव-सी उत्तेजना उसके भीतर भर गई थी, रोम-रोम में नये प्राणों का स्पंदन हो उठा था। उसके भीतर कुछ ऐसा जादू हो गया था, मानो आगंतुक पुरुष ने उसे अपने हाथों में उठा लिया हो और उड़ता हुआ बादलों में ले चला हो। इस अनुभूति को किसी और को समझा पाना उसके लिए असंभव ही था।

उसने हर चीज को एक असलियत मान लिया था। इतनी रात गये अव कहीं वह पहली बार सोच रही थी कि उस पुरुष के बारे में वह कितना कम जानती है। उसने अपने विषय में तो कुछ बताया ही नहीं था। अपने माता-पिता से वह भला कैसे कह सकेगी कि उसने अपना वर चुन लिया है, क्योंकि वह तो उसका नाम तक नहीं जानती थी।

वह उसे प्यार करता है—यह तो वह उसकी मद-भरी आंखों से और उसके होंठों से प्रस्फुटित होते शब्दों की ध्वनि से ही जान गई थी। वह सोचने लगी—यही तो मैं चाहती हूं कि जीवन में कोई मुझे प्यार करे—प्यार करे, कोई ऐसा आकर्षक सुन्दर पुरुष, जिसके पास मैं रहूं तो उसके दिल की धड़कनें तेज हो जायं।•••

उसने खुद अपने-आप से पूछा, क्या वे भी मुझे प्यार करते हैं ? फिर उसने सोचा, मुझे भावुक लड़की की तरह व्यवहार नहीं करना चाहिए, बल्कि अपने मन पर नियंत्रण रखना चाहिए। इन परिस्थितियों में एक अजनबी के प्रेम में पड़ जाना कितना हास्यास्पद लगेगा।

उसकी वह रात आंखों में ही कट गई और भोर ने उसके खेमे को आ घेरा। पूर्व दिशा से सूरज आगबबूला होकर निकला और उसने जंगल से धुंध-रूपी भूतों को तो जरूर निकाल भगाया, लेकिन जंगल के बीच जो खुला मैदान था, उसके ऊपर फेनिल बादल अभी तक छाये हुए थे।

उस अपरिचित युवक का ख्याल राजमती को सता रहा था और

उसकी याद का नशा उस पर छाया हुआ था। पारदर्शी, वादामी रंग की रेशमी चादर के भीतर उसे भावावेगवश कंपकंपी आ रही थी। चादर को पैर के झटके से अलग फेंककर वह गद्दियों पर गुड़ी-मुड़ी हो गई। अब विस्तर छोड़ने को उसका मन हो रहा था। उसके ताली वजाते ही परिचारिकाएं आ गईं और उसे घेरकर खड़ी हो गईं।

वह दिन वहुत धीमे-धीमे वीता। अगर और किसी चीज के लिए नहीं तो कम-से-कम यह जानने के ही लिए कि वह पुरुष कौन है, उसे आज रात एक वार फिर वहां जाना होगा। आने के लिए उसने कहा भी तो था। वह उसे प्यार करने लगी थी। फिर भी आशंका का कीट मन को कुतर रहा था, भूमिका में संदेह का वादल मंडरा रहा था। प्रथम दृष्टि में प्रेम हो जाने का ही प्रश्न नहीं था, वरन् ऐसे दो व्यक्तियों के पुनर्मिलन का प्रश्न था, जो किसी पूर्वजन्म में साथ-साथ रह चुके थे और इस जन्म में पुनः एक-दूसरे के समीप आ गये थे। राजमती को याद आया, जव उसने पुनः मिलने का वायदा किया था तव वह अपने ऊपर कुछ अंकुश-सा लगाये हुए था, जिसे शायद वह असल में महसूस नहीं कर रहा था।

ईश्वर से यही मनाती हूं कि वह जरूर आये—वह होंठों-ही-होंठों में वुदवुदाने लगी।

ज्योंही उसने अपना जूड़ा खोला, रेशमी केश छितराकर हल्के-से उसके नंगे कंधों पर फैल गये। जैसा पिछली रात हुआ था, उसके गाल कानों तक सुर्ख हो उठे।

दर्पण में अपना प्रतिविंव निहारती हुई वह खड़ी थी। उस अजनवी ने पिछली रात भावों का जो तूफान जगा दिया था, उसके कारण उसके कपोल आरक्त हो उठे और दिल की धड़कनें तेज हो गईं। उसने कभी इतना अजीव-अजीव-सा महसूस नहीं किया था। धीरे-धीरे उसने अपने हाथ उठाये और जलते गालों को सहलाने लगी। इसके वाद वह दर्पण के सम्मुख एक पीठिका पर वैठ गई और दोनों हाथों से उसने अपना चेहरा छिपा लिया।

वह काफी देर बैठी रही। उस समय उसे सिर्फ याद आ रही थीं दो काली, भावनापूर्ण आंखें, जो उसकी आंखों में सीधे देख रही थीं; और एक दृढ़संकल्प-सूचक मुख, जो गंभीर, अर्थव्यंजक शब्द उच्चरित करता था; और एक चेहरा, जो सदा उसकी आंखों में बसा हुआ था और उसे अपने समूचे अतीत को भुला देने को प्रेरित-प्रोत्साहित कर रहा था।

दिन काटे नहीं कट रहा था और न इतना लंबा उसे कभी महसूस हुआ था, परंतु साथ ही वह विचार कि वह पुनः उससे मिल सकेगी, उसे प्रसन्न बनाये रहा, यहां तक कि वह उससे पुनर्मिलन के रोमांच को अनुभव करती रही। इसीलिए उसे अपना अकेलापन अधिक नहीं खल रहा था, क्योंकि प्रिय का स्वप्न उसके साथ था। अपने प्रेमी से पुनः मिलने के लिए जाना कितना परंपरा-विरुद्ध और अनुचित है, इसे वह भलीभांति समझती थी। लेकिन इस समय राजपूत-समाज में प्रचलित रीति-रिवाज उसे निरर्थक लग रहे थे और उनसे प्रभावित होना उसे व्यर्थ जान पड़ रहा था।

यद्यपि उसका हृदय किसी बँधन में बंधने के लिए तैयार नहीं था और पूर्णतः उन्मुक्त था, तथापि वह इस बात से सहमत थी कि उसका विवाह परंपरागत रीति से ही हो। राजपूतों में पिता ही अपनी कन्या का विवाह रचाता और वर की खोज करने में उसे राजनैतिक तथा अन्य पक्षों पर भी सोच-विचार करना पड़ता था। परंतु इस समय उसके हृदय में प्रेम का इतना उत्कट स्पंदन हो रहा था कि वह इस बात के लिए भी प्रस्तुत थी कि उसका प्रेमी उसका अपहरण कर ले जाय।

वह उसका था और संसार की कोई भी परंपरा, रूढ़ि या रीति किसी और व्यक्ति को पति-रूप में उससे स्वीकार नहीं करा सकती थी।

"परंतु क्या वह भी परंपराओं की अवहेलना करने के लिए मेरी तरह उत्सुक है ? ऐसे बहुत से उदाहरण मिलते हैं, जिनमें वर-कन्या ने एक-दूसरे का चुनाव स्वेच्छा से किया है। यह बिलकुल परंपरा-विरुद्ध भी नहीं होगा।"—राजमती ने सोचा।

आज शाम उसने अकेले जाने का निश्चय किया था, परंतु जब जाने का

समय आया तो उसे भय लगने लगा। एक कंपकंपी उसके भीतर दौड़ गई। फिर भी बलात् मुस्कराते हुए उसने अपनी एक विश्वस्त परिचारिका से कहा, "सुनो सविता, तुम एक भेद अपने तक ही रख सकती हो ?"

"राजकुमारीजी, आप जानती हैं कि मैं आपके लिए सब-कुछ कर सकती हूं ?"

"तो तुम मेरी एक सेवा करोगी ?" राजमती का स्वर गंभीर था।

सविता के नेत्र विस्फारित हो गये। उसका मुस्कराता, दमकता चेहरा चुप और गंभीर हो गया। एक क्षण मौन रहने के बाद वह शांत-गंभीर स्वर में बोली, "राजकुमारीजी, इसे आप अच्छी तरह जानती हैं कि मैं आपके लिए अपने प्राण तक न्यौछावर कर सकती हूं।"

"जानती हूं और तुम पर भरोसा करती हूं।" राजमती ने कहा, "मैं तुरंत एक बहुत महत्त्वपूर्ण यात्रा पर जा रही हूं।"

सविता ने अपने दोनों हाथ भींच लिये। मन-ही-मन कहा, तो यह अभिसार-यात्रा है। परंतु प्रकट रूप से बोली, "अगर आपके पिताजी को इस बात का पता चल गया तो वे क्या कहेंगे ?"

"मैं कोई काम जल्दबाजी में नहीं करूंगी।" राजमती ने उत्तर दिया।

"आशा है, आप अधिक समय नहीं लगायंगी ?"

"नहीं, बस थोड़ी-सी देर। कल जो आगंतुक हमें मिला था न, उसी के बारे में कुछ जानकारी प्राप्त करनी है। मैं गई और आई।"

"मुझे तो बहुत डर लग रहा है।" सविता ने कहा।

"डरो मत ! मेरा कोई बाल बांका नहीं कर सकता।"

जैसे ही राजमती जंगल में पहुंची, उसके मन को सतानेवाले सारे मनहूस विचार हवा हो गये। एक टेढ़ी-मेढ़ी परिचित पगडंडी पर चलकर वह झील और मंदिर की ओर बढ़ी। वह कुछ वर्षों से मनोरंजन के लिए इस जगह आती रही थी, इसलिए वहां का चप्पा-चप्पा उसका जाना-पहचाना था।

जब वह बच्ची थी तब उसने ऐसी कथाएं सुनी थीं, जिनमें इंद्रदेव की

अप्सराएं गहन वन और उसमें स्थित जलाशय में क्रीड़ा करने के लिए जाया करती थीं। जब उसने मंद पवन में अठखेलियां करतीं वृक्ष की शाखाओं और अपने हल्के पैरों के नीचे दबी काई को फिर से उभरते देखा, तब उसे यह विचित्र अनुभूति हुई कि जिन कथाओं ने इतने वर्षों तक उसके स्वप्नों की दुनिया को सजाये रखा था, वे आज भी सत्य सिद्ध हो सकती हैं।

आकाश में बादल छाये हुए थे और बादलों की चादर की ओट में सितारों की स्निग्ध चमकीली किरणें छिपी हुई थीं, किंतु नवचंद्र की रुपहली ज्योत्स्ना उनमें से छन-छनकर आ रही थी।

जैसे ही पगडंडी के अंतिम मोड़ से वह घूमी, झरना दिखायी दे गया। चिकने पाषाण-खंडों से टकरा-टकराकर झरने की धारा कल-कल, छल-छल की ध्वनि कर रही थी, जो मधुर संगीत की तरह जान पड़ती थी। नीचे शांत झील थी, जिसमें तटवर्ती वृक्षों की हरी-भरी डालियां प्रतिबिंबित हो रही थीं। इनके कारण न केवल झील का विस्तार द्विगुणित हो रहा था, वरन् गरिमामय भी।

समस्त वन-प्रांत में यही एक स्थल था, जहां उसका मन रमता था। यहां की सारी दृश्यावलि उसे सुपरिचित जान पड़ती थी और उसका हृदय आनंद से विभोर हो जाता था। शायद ऐसा उसे प्रशांत जल में वृक्षों के प्रतिबिंबित सौंदर्य के कारण लगता हो, या शायद देवालय का प्राचीन वास्तु-सौंदर्य और यहां का अनंतकाल से अखंडित शांतिपूर्ण वातावरण उसके मन में ऐसी अनुभूति जगाता हो।

जब वह वहां पहुंची तो चंद्रमा धीरे-धीरे बादलों से बाहर आ रहा था। एक-एक कर तारे भी दिखायी देने लगे थे। उसने राहत की सांस ली। उसे ऐसा प्रतीत हुआ मानो पिछली कुछ घड़ियों से उसके कंधों पर जो बोझा और मुसीबत आ गई थी, वह अपने-आप दूर हो गई।

रात्रि की उस निस्तब्धता में यह समझना सरल था कि सभी चीजों का एक ढर्रा होता है। आदमी अपने भीतर चाहे जितना अकेलापन महसूस करे, ईश्वर उसे कभी अकेला नहीं छोड़ता। सच बात तो यह है कि ईश्वर

हर वक्त आदमी के साथ रहता है। राजमती मंदिर के चबूतरे पर जा बैठी। उसे थकान लग रही थी, हालांकि उसकी देह फड़क रही थी और सजग थी। उसके कान वीसलदेव की पदचाप सुनने के लिए और उसकी आंखें देखने के लिए चौकस थीं।

अचानक एक सूखी टहनी टूटने की आवाज हुई और किसी के समीप आने की भनक सुनाई दी। राजमती चौंककर उठ खड़ी हुई। उसके कपोल आरक्त हो उठे और दिल की धड़कनें तेज हो गयीं।

पिछली रात वह जिस पगडंडी से चलकर मंदिर तक आया था, उसके दोनों ओर खड़े वृक्षों की छाया में राजमती की आंखों ने किसी को खोजने की चेष्टा की, परंतु उसे कोई दिखायी न दिया। वह उसकी प्रतीक्षा में आतुर थी और सोच रही थी कि किसी भी क्षण उसका लंबा डील-डौल जंगल के अंधियारे से प्रकट हो जायगा, तभी उसके पीछे से एक आवाज आई। चौंककर वह मुड़ी और देखा तो उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा—वहां जो आदमी खड़ा था, वह कलवाला उसका स्वप्न-पुरुष नहीं, कोई और था।

वह युवा था, उसने योद्धा की वेशभूषा धारण कर रखी थी और एक तरह से देखने में असुंदर भी न था। लेकिन राजमती की आंखों को वह दुष्ट और भयावह लगा।

"राजकुमारी राजमती, मैं तुम्हारे लिए आया हूं।" उस अपरिचित ने कहा।

"सचमुच ? लेकिन तुम आये क्यों हो ?"

"मैं आना चाहता था, इसलिए चला आया।"

"क्या मैं पूछ सकती हूं कि मुझसे इस तरह बात करने का अधिकार तुम्हें किसने दिया ?"

"मैंने यह दुस्साहस इसलिए किया कि मैं तुमसे विवाह करना चाहता हूं।"

"तुम !" उसने तिरस्कारपूर्ण स्वर में कहा, "तुम अपने होश-हवास में तो हो ?"

"मैं पूरे होश-हवास में हूं। मैंने अपनी इच्छा तुम पर प्रकट की है।"

"तुम मेरा अपमान कर रहे हो !" कहने को तो उसने कह दिया, लेकिन जब उसे अपने अकेलेपन का अहसास हुआ तो डर भी लगा। फिर भी उसके दर्पोन्नत मस्तक को देखकर किसी को इसका आभास नहीं हो सकता था।

"तुम्हारी तेजस्विता मुझे अच्छी लगती है।" उसने कहा, "लेकिन मैं तुमसे विवाह करना चाहता हूं, और करके रहूंगा।"

"अपनी मूर्खता का तुम काफी प्रदर्शन कर चुके, अब यहां से रफूचक्कर हो जाओ !" राजमती ने डपटकर कहा। राजमती का चेहरा बहुत पीला पड़ गया था और उसकी आवाज में भी कुछ कंपन था, परंतु उसकी आंखों से दृढ़ता और साहस टपक रहा था।

"स्त्रियों में थोड़ी-सी तलखी मुझे अच्छी लगती है। इससे वे कुछ अधिक आकर्षक बन जाती हैं। लेकिन मैं जाने के लिए नहीं आया हूं।"

ये शब्द कहकर वह अजनबी कुछ कदम आगे बढ़ आया। अब उसके और राजमती के बीच की दूरी बहुत कम रह गई थी। राजमती ने उसकी आंखों में वासना की सहसा भड़की हुई आग को देखा और उसे उसके इरादे को समझते देर न लगी। उसके मुंह से हल्की-सी चीख निकल गई। कमर में बंधी तलवार को खींचने के लिए उसका हाथ मूंठ पर गया ही था कि अजनबी ने अपनी बाहें फैलाकर उसे पकड़ लिया और अपने पास खींचते हुए मंदिर के समीप छाये अंधकार की ओर ले चला।

राजमती के सिर का दुपट्टा गिर पड़ा। उसके काले केश मुख पर छितरा गए। ऐसा जान पड़ा, मानो अचानक किसी काले बादल ने चाँद को ढक लिया हो। फिर केश बीच में से कुछ हट गए, जिससे यह आभास हुआ कि उसके नुकीले चेहरे और अंडाकार ललाट के गिर्द एक प्रभामंडल उभर आया हो।

राजमती एकदम बौखला गई। उसने छटपटाते हुए अपने को उस पुरुष के चंगुल से छुड़ाने की वहुत कोशिश की, लेकिन उसकी मजवूत पकड़ से वह छूट न सकी। वह चिल्लाने को हुई कि मुझे छोड़ दो, जाने दो, लेकिन आवाज उसके गले से निकल न सकी। पर उसने यह महसूस किया कि उसके पाशविक वल-प्रयोग के आगे वह वेहोश हो जायगी। सहसा वह उसकी पकड़ से मुक्त हो गई। वांहों की पकड़ को उसने ढीला पड़ते हुए महसूस किया और तभी यह देखकर उसे वेहद राहत हुई कि आक्रमणकारी को कोई व्यक्ति उससे दूर घसीटे लिये जा रहा है। उसने देखा कि वह त्राण-कर्ता कोई अन्य नहीं, कल रातवाला व्यक्ति ही है। वह संतोष और उल्लास के आवेग में उसकी ओर कुछ डग वढ़ गई।

"यह अधम तुम्हारे साथ क्या कर रहा था ?" बीसलदेव ने पूछा।

परंतु वह वोले, तबतक उस अवांछित व्यक्ति ने अपना संतुलन संभाल लिया था। उसने झटका देकर अपने को बीसलदेव की पकड़ से छुड़ा लिया और मुड़कर उनके सामने खड़ा हो गया, फिर ललकार कर वोला, "तुम बीसलदेव चौहान तो नहीं हो ? यहां क्या झख मारने आये हो ?"

"यही तो मैं तुमसे पूछ रहा हूं, सोलंकी।" बीसलदेव ने रुखाई से कहा, "और इसके पहले कि मैं तुम्हारा काम तमाम कर दूं, तुम मुझे जल्दी से बता दो कि तुम्हारा प्रयोजन क्या है ?"

सोलंकी एक कदम पीछे हटा और उसने अपनी तलवार खींच ली। बीसलदेव ने अपनी तलवार उससे पहले ही निकाल ली थी।

□ ४ प्रेम क्या है ?

"देखता हूं तुम्हें।" सोलंकी चिल्लाया। उसका चेहरा वासना के कारण तमतमा रहा था। वह गुर्राया, "तुम्हारी विशाल सेना इस समय तुम्हारी

कोई सहायता नहीं कर सकेगी, चौहान, और आज तुम्हारा काम तमाम किये विना मैं चैन नहीं लूंगा।"

"मुझे भी आज तुम्हारे साथ यही तो करना है।" वीसलदेव ने शांति से उत्तर दिया।

"इससे सावधान रहिये, यह वड़ा दुष्ट है।" राजमती ने चिल्लाकर सचेत किया।

प्रारंभ से ही इस वात में संदेह नहीं रहा कि लड़ने में दोनों योद्धा जोड़-तोड़ के हैं। सोलंकी बीसलदेव की अपेक्षा आयु में छोटा था, अतः उसे अपने वल पर आवश्यकता से अधिक भरोसा था। वह पैंतरा वदलने और वार करने में भी तेज था। परंतु वीसलदेव उसकी अपेक्षा अनुभवी थे और अपनी शक्ति को बचाते हुए वार कर रहे थे। जैसे-जैसे समय वीतता गया, सोलंकी के पैंतरों की गति और उसके वार के गहरेपन में शिथिलता आने लगी।

एक वार एक योद्धा दूसरे को पीछे धकेल देता और दूसरी वार दूसरा। इसी तरह एक वार करता और दूसरा उसके प्रत्युत्तर में उससे गहरा वार करने की कोशिश करता। खांडे खड़क रहे थे। दोनों लड़ाकों के द्वंद्व-युद्ध को देखने के लिए चंद्रमा भी वादलों की ओट से वाहर निकल आया था। सोलंकी उग्र होता जा रहा था, क्रोध में वह अपने होंठ चवा रहा था, वीसलदेव को मार डालने की कसमें खा रहा था, अपमानजनक अपशब्द वोल रहा था और हर तरह की चालवाजी और धोखेवाजी से अपने विरोधी से वाजी मार ले जाने की कोशिश कर रहा था। वह अधिकाधिक झक्की और बेहूदा होता जा रहा था।

इसके विपरीत वीसलदेव संयम और शालीनता से युद्ध कर रहे थे। उन्होंने गलत तरीके से अपने विरोधी को परास्त करने की कोई चेष्टा नहीं की। पहले तो वीसलदेव का पलड़ा भारी रहा, परंतु सोलंकी के दुष्टतापूर्ण, भयंकर आक्रमण के सामने वे पीछे हटने लगे।

राजमती अस्फुट शब्दों में ईश्वर से प्रार्थना कर रही थी, "हे भगवान,

उनकी सहायता करो, सहायता करो, भगवान !"

किन्हीं क्षणों में तो उसके मुख से चीख निकलने को हो जाती। हृदय के असह्य बोझ को वह चिल्लाकर हल्का कर लेना चाहती थी। वार-वार उसके होंठों पर प्रार्थना के शव्द आ जाते थे, परंतु उसको पता नहीं रहता था कि वह क्या कर रही है। अचानक उसके मुंह से तीखी चीख निकल पड़ी। शायद इस ओर सोलंकी का भी ध्यान गया। एक क्षण के लिए उसकी तलवार थमी। उसने देखने की कोशिश की कि माजरा क्या है। वीसलदेव विल्कुल परेशान न हुए; अपने इर्द-गिर्द की कोई वात उनका ध्यान न बंटा सकी थी। सोलंकी की चूक का लाभ वीसलदेव जैसा अनुभवी असिचालक भला कैसे न उठाता ! उन्होंने जोर का एक वार किया। सोलंकी के पैर क्षण भर के लिए लड़खड़ाये और धराशायी हो गया।

राजमती ने अव अपने ऊपर कावू पा लिया। आतंक का कारण समाप्त हो गया था। उसने अपने विखरे वालों को सहेजा-संवारा, चोली को ठीक किया और घाघरे के वंद के भीतर उसे खोंस लिया, जहां से वह वाहर निकल आई थी। उसने अपने सिर और छाती को ओढ़नी से ढक लिया।

सोलंकी को मारकर गिराने के वाद वीसलदेव का ध्यान राजमती की ओर गया। वे उसकी ओर मुड़े। वह अव भी पीली पड़ी हुई थी, लेकिन कांप नहीं रही थी। वीसलदेव ने उसको आंख भरकर देखा। वह उन्हें वहुत सुंदर लगी, पिछली रात को जितनी सुंदर दिखायी दी थी, उससे कहीं अधिक। उसके छोटे-से नुकीले मुखड़े पर ऐसी दिव्य आभा प्रस्फुटित थी, जैसी उन्हें किसी अन्य स्त्री के मुखड़े पर आजतक दिखायी न दी थी।

ये विचार जव उसके मन में आ रहे थे, तभी राजमती की निगाहें भी ऊपर को उठीं। दोनों की निगाहें मिलीं और दोनों मंत्रमुग्ध-से रह गये। वह ऐसा क्षण था, जिसमें वाणी मूक हो जाती है। जो कुछ कहना था उनकी आंखें एक-दूसरे से कह रही थीं और दोनों के दिल तेजी से धड़क रहे थे।

वीसलदेव ने अपने दायें हाथ की अंगुलियों से राजमती की ठुड्डी ऊपर उठायी। उसके रसीले अधर खुले हुए और कंपित थे। उन्हें देखकर वीसल-

देव का मन काबू में न रह सका। एक क्षण को वे झिझके, फिर आगे को झुके और अपने होंठों का एक प्रगाढ़ चुंबन उन्होंने उसके अधरों पर अंकित कर दिया। उनके अधर काफी देर तक मिले रहे, दोनों में से कोई भी अपनी जगह से नहीं हिला। बीसलदेव के होंठों का उसके होंठों पर उष्ण, कठोर दबाव ऐसा रोमांचक था, जिसकी अनुभूति उसे पहले कभी नहीं हुई थी। वह समझ ही नहीं पाई कि यह सब क्या हो रहा है।

राजमती को अपने हृदय में अद्‌भुत, अभूतपूर्व थिरकन की अनुभूति हुई। उसके कंठ-मूल में जो आग जल उठी थी, वह मानो उसके प्राणों को ही अवरुद्ध करने लगी। उस अंधकार में भी राजमती मन-ही-मन मुस्करा दी। एक साहसपूर्ण अभिसार की कितनी सुंदर परिणति थी वह !

बीसलदेव ने अपना सिर उठाया। राजमती की उंगलियों को वे अभी तक अपने हाथों में भरे हुए थे, उन्हें उन्होंने और कस लिया। राजमती ने पलकें उठाकर उनकी आंखों में झांका। अब वे एक-दूसरे के साथ इतने घुल-मिल गये थे कि संसार की कोई भी शक्ति उन्हें अलग नहीं कर सकती थी। वे दो तन एक प्राण हो गये थे। प्रेम किसे कहते हैं, यह राजमती ने अब जाना।

राजमती बीसलदेव की आंखों में इस तरह न जाने कबतक देखती रहती कि सहसा लाज से उसकी पलकें झुक गईं और आरक्त कपोलों पर लंबी बरौनियां फड़कने लगीं। उसने मंदिर की ओर अपना मुंह फेर लिया।

"मैं अब ऐसी चीजें भी समझने लगी हूं, जिनको पहले कभी नहीं समझ पाई थी।"

"जैसे ?" बीसलदेव ने पूछा।

"शब्दों में उन्हें प्रकट करना कठिन है।" उसने कहा।

लेकिन पुरुष अपने जीवन के लिए सर्वोत्तम उपयुक्त संगिनि प्राप्त करने के पहले कई स्त्रियों को परखता है और जानने की चेष्टा करता है कि उसे वास्तव में कैसी स्त्री चाहिए। बीसलदेव बोले, "मेरे साथ ऐसा पहले कभी नहीं हुआ। मैंने समझा था कि मैं दूसरी स्त्रियों से प्रेम करता

हूं। ठीक-ठीक नहीं बतला सकता कि कैसे-क्या होता है, परंतु एक बार स्त्रियों से परिचित होने पर मुझे लगता रहा है कि मैं मानो उनसे प्रेम करता हूं, लेकिन अपने अंतरतम में मुझे एक छलना ही लगती रही है।"

"आप मेरे बारे में तो पूरी तरह आश्वस्त हैं न ?" राजमती ने पूछा।

"आश्वस्त ? पूरी तरह।" बीसलदेव ने धीर-गंभीर स्वर में कहा। "तुम वह महिमामयी, सुंदर और उत्तम स्त्री हो, जिसकी मुझे जीवन-भर तलाश रही है।"

"नहीं-नहीं, यह तो आपकी कल्पनामात्र है।" सच यह था कि प्रशंसा के उन शब्दों को सुनकर उसका हृदय खुशी से उछल पड़ा था। तो यह सच है कि बीसलदेव उसे प्यार करने लगे हैं। जहां तक उसका अपना सवाल था, वह तो पिछली रात, उन्हें देखते ही उनके प्रेमपाश में आबद्ध हो चुकी थी।

"विश्वास करो राजकुमारी, मैंने जो कुछ तुमसे कहा है, हमारा यह आज का मिलन, तुम्हारे प्रति मेरी भावना—ये सब बातें सत्य हैं, पवित्र और अकाट्य सत्य।"

दोनों मंदिर के भीतर गये और शिव की प्रतिमा के सम्मुख उन्होंने साष्टांग दंडवत प्रणाम किया।

"हम भगवान शिव के समक्ष तो विवाहित हो चुके, परंतु समाज के सम्मुख भी हमारा विवाह होना आवश्यक है।" बीसलदेव ने कहा।

"इसका उत्तर मैं नहीं दे सकती। मुझे यह पता नहीं कि इसका क्या उत्तर होना चाहिए। मैं तो इतना ही जानती हूं कि आपके साथ रहना चाहती हूं, जिससे हम दोनों सुखी हो सकें।"

एक क्षण के लिए बीसलदेव और राजमती एक-दूसरे को टकटकी बांधे देखते रहे, फिर अकस्मात दोनों के बीच की दूरी मिट गई और वह बीसलदेव के आलिंगन में आ गई।

बीसलदेव ने उसकी ओर देखते हुए कुछ कहना चाहा। उनका गला खरखराया। राजमती के होंठ गुलाबी हो गए और फिर गुलाब की पंखु-ड़ियों की तरह कुछ खुल गए। उसकी सांसें तेज हो गई थीं।

"मैं शीघ्र ही अपने पुरोहित को तुम्हारे पिता के पास भेजंगा। अब अकेले मत घूमा-फिरा करना और हमेशा सतर्क रहना।"

"अपने राजकाज के झमेलों में आप मुझे भूल तो न जायेंगे ?" उसने पूछा।

"ऐसा कभी नहीं होगा। हमारे प्रेम के पंख हैं। हम कुछ समय के लिए भले ही एक-दूसरे से दूर रहें, लेकिन मेरा हृदय उड़कर तुम्हारे हृदय के पास पहुँच जाया करेगा।"

बीसलदेव खड़े कुछ क्षण उसकी ओर देखते रहे। जब उसने कुछ नहीं कहा तब वे जाने के लिए धीरे-धीरे मुड़े। उसने उनकी पदचापों को सुना, घास की चरमराहट भी सुनी, फिर सबकुछ शांत हो गया। केवल वन में दूर कहीं एक निशा-विहग गीत गा रहा था।

मंदिर के चबूतरे पर, जहां बीसलदेव उसे छोड़कर गये थे, वह बैठ गई और जो कुछ घटित हुआ था, उस पर विचार करने लगी। बीसलदेव उससे विवाह करेंगे, वह उनकी रानी बनेगी—बस, एक यही विचार उसके मानस-पटल पर छाया रहा। शेष सारे विचार लुप्त हो गये थे। राजमती को लगा, जैसे उस रात के जैसा चांद कभी चमकीला न था और रात के किसी पांखी ने इतना मधुर गीत पहले कभी नहीं गाया था।

उसने अपनी देह में वैसा ही कंपन पुन: अनुभव किया जैसा बीसलदेव की भुजाओं में आबद्ध होकर किया था। ऐसे ही पुरुष की तो उसे चाह थी और यह पुरुष भी दुनिया में उसी की प्रतीक्षा कर रहा था।

जब बीसलदेव चले गये तो उसे बहुत सूना-सूना महसूस हुआ। वह काफी देर तक उसी तरह बैठी रही। अचानक उसने देखा कि चंद्रमा अस्त हो चुका है। वह उठ खड़ी हुई और तेज कदमों से जंगल में बनी पगडंडी पर, वृक्षों की घनी डालियों से बचती हुई चल पड़ी। जब वह अपने खेमे में पहुंची, तो उसकी सांस फूल गई थी।

उसने कभी सोचा भी न था कि वह इतनी भावुक हो जायेगी। जब

वह अपनी शय्या पर लेट गई तव उसने अपने-आपसे पूछा—प्रेम क्या है ?

यह है सुख का एक उन्माद, जैसा कि उसे इस समय हो रहा है। यह है एक अटल विश्वास कि कोई चाहे तो समस्त संसार को जीत ले। यह है नितांत नैराश्य की स्थिति, जिसमें पाये हुए प्रेम को खो देने की हमेशा आशंका बनी रहती है। उसने दर्पण में अपना प्रतिविंव निहारकर कहा कि मेरा इतना उत्तेजित हो उठना आश्चर्यजनक क्यों है ? प्रेम की इस संपदा को पाकर भी कोई नारी आपे में रहे तो क्या उसे नारी कहा जायगा ?

उसे अपने सारे शरीर में अद्भुत आनंद की अनुभूति हुई। उसकी नस-नस खुशी के मारे फड़कने लगी थी, फिर दूसरे ही क्षण उसे अपने भीतर आध्यात्मिक उन्नयन की प्रतीति हुई, जिसमें उसका सारा अस्तित्व रात्रि के सौंदर्य के साथ एकीभूत हो जाने का आकांक्षी हो उठा था। वह सर्वात्म-भाव से सर्वोपरि और सर्वान्तिर्यामी परमेश्वर के प्रति अपनी निःशव्द प्रार्थना निवेदित करने लगी।

□ ५ बंधन और मुक्ति

न राजमती की आंखों में नींद थी और न उसकी प्रसन्नता की कोई सीमा ही; परंतु अचानक एक संदेह का कीट उसके मन में घुस गया। पिताजी क्या कहेंगे ? बीसलदेव से विवाह के लिए क्या वे अनुमति देंगे ?

"इस वात को मैं आज भूली रहूं, यही अच्छा है। इस जंगल में किसी भी अप्रिय विचार का न उठना ही श्रेयस्कर है, और न मुझे यही याद रहे कि इस आमोद-यात्रा के वाद पुनः घर भी जाना है। मुझे यही समझने

का वहाना करना चाहिए कि जंगल के वाहर किसी चीज का अस्तित्व नहीं है और हम दोनों हमेशा-हमेशा के लिए यहीं बने रहेंगे।"...उसके विचारों की कड़ी टूटने में नहीं आ रही थी।

"कितना अच्छा होता कि मैं वृक्षों के नीचे हरी घास पर पड़ी रहती और जव वीसलदेव सो जाते तो उनके मुखड़े को एकटक निहारा करती। क्या कभी ऐसा भी दिन आयेगा ?"

लेकिन नहीं, वह दुनिया को भुला नहीं सकी। उसके मन का संदेह और भी दृढ़ हो गया। वीसलदेव से भेंट होने की वात वह अपने पिता को कैसे समझा पायगी ? उसके पिता वेहद खीझ उठेंगे कि उसने रीति-रिवाजों और परंपरा की इतनी अवहेलना कैसे की और कैसे यह मूर्खतापूर्ण कार्य कर वैठी ! उसके भाई-भाभी भी उसे गलत समझ वैठेंगे। संभव है, उसके पिता वीसलदेव के प्रस्ताव को अंततः स्वीकार कर लें, परंतु भाभी सरोज कुमारी क्या कहेगी ? उसकी दृष्टि में तो वीसलदेव जैसे शक्तिशाली राजा भी किसी गिनती में न थे। अव तो धारानगरी लौटने पर ही इस पहेली का कोई हल निकल सकेगा।" वह झमककर उठ खड़ी हुई और अपनी परिचारिकाओं को उसने आदेश दिया कि कल प्रातःकाल यहां से चल देने की तैयारी करें।

उसने सोचा, घर पहुंचने से पहले अपने भय और असमंजस से तो मुक्ति पा ही लेनी चाहिए।

गत दो दिनों में वह जितनी प्रसन्न रही थी, उतनी पहले कभी नहीं। जहां तक उसे याद था, अपनी मां के स्वर्गवास के वाद तो ऐसा अवसर पहली वार ही आया था।

वीसलदेव पुनः उसके ख्यालों की दुनिया में आ गये। उसे विश्वास था कि वे अपने वचन के पक्के निकलेंगे और उसके पिता के पास उचित प्रस्ताव भेजेंगे। उनके वारे में वह संदेह कैसे कर सकती है ? वारहसिंगे के शिकार के समय जब पहली वार उनसे भेंट हुई तभी समझ गई थी कि वे सज्जन और सहृदय हैं। लेकिन इससे भी कुछ विशेष उनमें था, जिसके

कारण मित्र या शत्रु कोई भी उनका विश्वास किये विना नहीं रह सकता था। जब वह उनसे पहली रात मंदिर के पास मिली तो उनके वारे में उसे कुछ भी मालूम न था और न उन्होंने अपनी ओर से उसे आश्वस्त किया था। फिर भी उसे यह महसूस हो गया था कि वे मित्र हैं, और उनसे उसे कोई हानि नहीं पहुंच सकती। वह किसी को यह नहीं वतला सकती कि ऐसा उसने क्यों महसूस किया। न जाने कैसे उन्होंने ऐसा दृढ़ और अडिग विश्वास उसके मन में उपजा दिया था कि अगर वे उसी दम उससे अपने साथ चलने के लिए कहते तो वह एक क्षण के लिए भी आगा-पीछा न करती; उनके साथ जाने में उसे तनिक भी भय न लगता। उसे इस वात का निश्चय हो गया था कि वीसलदेव के प्रेम की इतनी अधिक ऊष्मा प्राप्त करने का सौभाग्य केवल उसी को मिला है।

काफी देर वाद जव उसने आंखें उठाकर आसमान को ताका तो तारे फीके पड़ने लगे थे और उषा की प्रथम पीताभ अगुली पूर्व क्षितिज पर दृष्टिगत हो रही थी। उसने सोचा कि विक्षुब्ध करनेवाले प्रश्नों से उसे अपने दिमाग को साफ कर लेना चाहिए।

यद्यपि राजमती का अत्युल्लास और विचित्र व्यवहार किसी की आंखों से छिपा न रह सका तो भी किसी ने उससे इस संवंध में कुछ पूछने का साहस नहीं किया। लेकिन सविता की वात दूसरी थी। वह उसके लिए परिचारिका से अधिक एक संगिनी थी और राजमती उसके सामने अपना हृदय खोलकर रख देती थी।

राजमती अकेली गई थी तभी सविता आतंकित थी। सवेरा होने पर भी उसका भय वना रहा। लेकिन जव राजमती ने पिछली रात की घटनाओं के वारे में वताना शुरू किया तो उसका डर काफूर हो गया।

पहले तो राजमती हिचकिचायी, फिर उसने सविता से एक प्रश्न पूछा, जो वहुत देर से उसके मन को मथ रहा था, "क्या तुम समझती हो कि वीसलदेव मुझे उतना प्यार करेंगे, जितना उन्होंने आजतक किसी भी व्यक्ति से नहीं किया ?" उसका स्वर धीमा था।

"ईश्वर करे ऐसा ही हो, राजकुमारीजी ! मगर आपने भी यह कैसा सवाल पूछा," सविता ने सोत्साह कहा, "हर वर-वधू के बारे में हम आरंभ में यही कल्पना तो करते हैं कि वे एक-दूसरे को सबसे बढ़कर प्यार करेंगे। लेकिन राजाओं की बात कुछ और ही होती है। उनके मामले में हमें कुछ अलग ढंग से सोचना पड़ता है। उनकी प्रेमलीलाएं जहां-तहां चलती रहती हैं। उनका वह प्रेम अक्सर दिखावटी होता है और मनबहलाव से अधिक उसका कोई महत्त्व नहीं होता। जहां तक मैंने सुन रखा है, राजा बीसलदेव भी बड़े रसिक व्यक्ति हैं। लेकिन कोई कारण नहीं कि उनका यह स्वभाव आगे भी बना रहे।"

"मुझे इन बातों की तनिक भी समझ नहीं है, सविता !" राजमती ने कहा, "लेकिन इतना विश्वास अवश्य है कि हम दोनों एक-दूसरे के साथ सदा संतुष्ट और सुखी रह सकेंगे।"

राजमती के सुंदर चेहरे पर चिंता की कुछ रेखाएं देखकर सविता ने मृदुता से कहा, "आप अब इन बातों को लेकर परेशान न हों। आपको सौभाग्य से एक सुयोग्य और प्रेमी पति मिला है, जो अंत तक आपसे प्रेम करता रहेगा।"

"इस बात से तो मैं आश्वस्त हूं।" राजकुमारी बुदबुदायी। अपने मन में उसे रंचमात्र भी संदेह न था। "मैं चाहती हूं प्यार—सच्चा प्यार !" दर्पण में अपनी छवि निहारते हुए उसने मन-ही-मन ये शब्द कहे, "बदले में मैंने उन पर अपना संपूर्ण हृदय जो न्यौछावर कर दिया है।"

विचारों की ऐसी ही उधेड़बुन में उसने अपनी यात्रा आरंभ की। न तो उसे रास्ते का कुछ भान था, और न अपने इर्द-गिर्द चल रही परिचारिकाओं तथा सैनिकों का। और कोई अवसर होता तो जंगली कबूतरों की गुटरगूं या कोयल की कूक और खरगोशों की चौकड़ी तथा लंबी-लंबी घासों के बीच डर से उन्हें भागते देख वह प्रसन्नता से खिल उठती। परंतु आज वह इन सबसे अप्रभावित, अपने रथ में चुपचाप बैठी रही।

उसके साथ चल रहे व्यक्तियों की संख्या लगभग पांच सौ थी। कुछ

लोग घोड़ों पर सवार थे कुछ ऊंटों पर, और उसकी निजी परिचारिकाएं रथों में थीं। उसका अपना रथ साजसज्जा में सबको मात दे रहा था। रथ में नागौरी बैल जुते थे, जिनको हांकने के लिए छड़ी की जरूरत नहीं होती। बागडोर को जरा ढीली करते ही वे हुमककर इस तरह दौड़ पड़ते कि उनका साथ देने के लिए घोड़ों को भी दुलकी भागना पड़ता था।

धारानगरी के लिए वहां से एक सप्ताह का रास्ता था। राजमती के दल को सिद्धपुर से होकर गुजरना पड़ा। जब वहां के रावल को उसके आगमन की सूचना मिली तो उसने एक रात का आतिथ्य स्वीकार करने का निवेदन किया। रावल उसके पिता राजा भोज का घनिष्ठ मित्र था। ठकुरानी ने उसकी बड़ी आवभगत की और उसके सम्मान में रात को एक दावत दी, जिसमें महत्त्वपूर्ण महिलाओं ने भाग लिया।

अन्य सब महिलाएं तो राजकुमारी राजमती से एक-एक कर मिलीं, परंतु लंबे कद की एक स्त्री हर समय उसकी बगल में बनी रही। राजमती जिधर भी जाती, वह स्त्री बराबर उसके साथ लगी रहती। राजमती को यह जानने की उत्सुकता हुई कि यह स्त्री कौन है और मुझसे क्या काम है। लेकिन वह किसी अन्य महिला से उसके विषय में पूछताछ करती, उसके पहले ही उस स्त्री ने उसे अकेला पाकर, उसके कान के समीप मुंह लाकर कहा, "मैं आपको एक गोपनीय संदेश देना चाहती हूं।"

उसकी इस बात ने राजमती के कुतूहल को और भी बढ़ा दिया। वह एक कोने में जाकर खड़ी हो गई, जिससे उनकी बात को दूसरा कोई सुन न सके।

"आपका प्रेमी आधी रात को आपकी प्रतीक्षा करेगा। अपनी दासियों को हटा दीजियेगा, फिर मैं आकर आपको लिवा ले जाऊंगी।"

एक क्षण में उसने यह बात कह दी और राजमती कुछ और पूछती, उसके पहले ही अन्य स्त्रियों की भीड़ में जा मिली। परंतु उसने राजमती के मन में उत्सुकता की एक लौ जगा दी थी। न जाने उस रात उसे किन परिस्थितियों का सामना करना पड़ेगा। वीसलदेव उससे मिलना चाहते

हैं। उत्सव में सम्मिलित महिलाओं और खुद अपने-आप से भी उसका मन उचट गया। उसको यह स्वप्न-जैसा जान पड़ा कि पहले तो वीसलदेव को उसके अचानक रवाना होने की जानकारी मिल गई, और फिर उन्होंने पहले से ही उससे भेंट करने की व्यवस्था भी कर ली, जबकि स्वयं उसी को पता न था कि वह रात में पड़ाव कहां करेगी। परंतु उसने सोचा—जो लोग असंभव के साथ जूझने का साहस करते हैं, उनके लिए सबकुछ संभव हो जाता है।

रावल चंद्रसेन की ठकुरानी को भी यह देखकर आश्चर्य हुआ कि राजमती एकाएक अन्यमनस्क और अशांत हो गई है। मगर कारण उनकी समझ में नहीं आया।

राजमती जब विश्राम के लिए अपने कक्ष में आई तब उसका मन इतना तनावपूर्ण और उत्तेजित था कि किसी की साधारण-सी बात पर भी चिढ़ जाती थी। वह चुप रहना और वीसलदेव तथा झील के तट पर व्यतीत उस रुपहली रात के अलावा किसी दूसरी चीज के बारे में सोचना नहीं चाहती थी।

अभी रात कुछ ज्यादा नहीं गई थी, फिर भी वह विश्राम के लिए अपने कक्ष में चली आई और अपनी सारी परिचारिकाओं को उसने वहां से हटा दिया। दो दासियां रात के समय उसकी आवश्यकताओं का ध्यान रखने के लिए सामान्यतः नियुक्त रहती थीं; लेकिन उनको भी उसने यह कहकर वहां से भेज दिया कि वह एकांत चाहती है। जैसे-जैसे मध्य रात्रि निकट आती गई, उसकी उत्सुकता चरम सीमा पर पहुंचती गई और अंततः उसे लगने लगा कि अब और प्रतीक्षा करना उसके लिए असंभव है।

वह स्त्री आधी रात के कुछ पहले उसके पास आई। वह रावल चंद्रसेन के पिता की रखैल की लड़की और एक प्रकार से रावल की सौतेली बहन थी। सिद्धपुर दुर्ग के गुप्त मार्गों की जितनी जानकारी उसे थी, उतनी शायद किसी और को नहीं थी। राजमती ने उससे कुछ अधिक बातें जाननी

चाहीं, लेकिन पूरी कोशिश के बाद भी वह उसमें सफल न हो पाई।

उस स्त्री ने कहा, "ऐसी परिस्थितियों में यह कहावत बावन तोले पाव रत्ती सही उतरती है कि दीवारों के भी कान होते हैं। हम जो काम आज करने जा रही हैं, वह परंपरा के विरुद्ध है। दासियों को यहां से हटा देना भी एक ऐसा मामला बन जायगा, जिसके लिए आपको अपने माता-पिता के सामने जवाबदेही करनी होगी। छोटी-से-छोटी बात पर भी लोगों का ध्यान गये बिना नहीं रहता।" इतना कहकर वह मौन हो गई।

आधी रात का गजर बजते ही उसने राजमती से कहा कि वह अपनी पोशाक को एक सफेद चादर से ढक ले। फिर वह पलंग के पीछे गई और वहां फलक के पत्थर में खुदे एक फूल को उसने दबाया। तुरंत एक दर-वाजा खुल गया, जिसमें नीचे की ओर जाती सीढ़ियां दिखाई दीं।

स्त्री ने चारों ओर देखकर पूछा, "आप तैयार हैं?"

"हां, मैं तैयार हूं।" राजमती ने कहा।

"हम इस गुप्त मार्ग से नीचे उतरेंगे। यह मार्ग हमें दुर्ग की खाई के उस पार ले जायगा। ध्यान रखिये, हमारे चलने में तनिक भी खड़का न हो और मुंह से एक शब्द भी न निकले। लोग चलने-फिरने की आहट से भी ज्यादा आसानी से बोलने की आवाज सुन लेते हैं।"

उसने पहले राजमती को नीचे उतारा और फिर स्वयं सीढ़ियों पर कूदी। उसने मशाल ज़ला ली। ऐसा लगता था कि मशाल वहां पहले से ही रखी हुई थी। चलने से पूर्व उसने सुरंग का दरवाजा बंद कर दिया। मशाल को बायें हाथ में पकड़कर उसने अपने दायें हाथ की तर्जनी अंगुली को होंठों पर रखकर राजमती को चुप रहने का संकेत किया। वह सीढ़ियों पर आगे-आगे उतरने लगी। राजमती उसके पीछे-पीछे चली और सोचती जा रही थी कि आज वह कितने साहसिक अभियान पर निकली है।

"मान लो, कोई हमें देख ले।" राजमती ने फुसफुसाकर कहा।

स्त्री के होंठ एक क्षण को सख्त हुए, लेकिन उसने कोई उत्तर नहीं दिया। कई सीढ़ियां उतरने के बाद वे एक भारी चूलवाले काठ के दरवाजे

पर पहुंचीं। वहां से आगे वे एक सुरंग में होकर गईं। एक शब्द भी बोले बिना वे चुपचाप चल रही थीं। प्रिय-मिलन की आशा राजमती के हृदय में उत्साह भर रही थी।

सुरंग के दूसरे सिरे पर, एक बहुत संकरा, पाषाण-निर्मित जीना था, जो ऊपर को चढ़ता था। उससे वे एक ऐसी जगह पहुंचीं, जो संतरी की कोठरी-जैसी थी। लेकिन वहां कोई था नहीं। ज्योंही वे खुले में आईं, राजमती ने वहां दो आदमियों को खड़े देखा। दोनों की शक्ल-सूरत डरावनी थी।

"एक पल यहीं रुकिए।" उस स्त्री ने राजमती से कहा और वह उन आदमियों के पास गई और उनसे कनबतियां कीं।

राजमती को उन पुरुषों के विषय में सोचने के लिए अधिक समय नहीं मिला; क्योंकि बलिष्ठ भुजाओं ने उसे मजबूती से पकड़ लिया था। दूसरे ही क्षण एक पुरुष ने उसे उठाकर अपने कंधों पर डाल लिया और लेकर चल दिया।

एक क्षण के लिए तो राजमती हतबुद्धि हो गई। वह करे तो क्या, यह सोचने की शक्ति उसमें न रही। परंतु शीघ्र ही उसने अपने ऊपर नियंत्रण पा लिया। उसने सोचा कि डरने से तो काम चलेगा नहीं, स्थिर बुद्धि रहने पर ही बचाव का कोई उपाय सोचा जा सकता है।

राजमती को इतना पता तो चल ही गया था कि वह सुरंग के द्वार से बहुत दूर नहीं लायी गई है। उसे उन पुरुषों ने ले जाकर एक कुटिया के कच्चे फर्श पर पटक दिया। कुटिया की दीवार के बाहर निकले पत्थर से जब उसका कंधा टकराया तो उसके मुंह से अनायास एक हल्की-सी चीख निकल गई।

"इसे यहीं रहने दो।" एक पुरुष ने कहा।

"पहले मेरा मेहनताना दो।" दूसरे पुरुष ने उत्तर दिया।

कुछ सिक्के खनके। दूसरा आदमी चला गया और पहले आदमी ने उसके पीछे जाकर कुटिया का दरवाजा बंद कर दिया। राजमती जमीन

पर पड़ी-पड़ी प्रतीक्षा करती रही कि देखें, आगे क्या होता है। वह समझ गई कि उसके साथ धोखा हुआ है। उसका जन्म और पालन-पोषण ऐसे वातावरण में हुआ था, जिसमें भाग्य पर अटल भरोसा किया जाता था—जो होना होगा, होगा। उसको पछतावा बस इसी वात का हो रहा था कि अपनी कटार क्यों न लेती आई।

वह आदमी उसके इतने समीप खड़ा था कि इच्छा करते ही उसे छुआ जा सकता था। राजमती ने उससे कुछ पूछने की चेष्टा की, परंतु उसने उसके एक भी प्रश्न का उत्तर नहीं दिया, न यही प्रकट होने दिया कि उसकी वात उसने सुनी है। भुनभुनाते हुए उसने राजमती की सुंदर केश-राशि की एक लट को उठाया, अपनी अंगुलियों के बीच उसे मसला और लापरवाही से छोड़ दिया, मानो वह वाजार में विक्री के लिए रखी कोई जिंस हो।

कुछ देर बाद एक स्त्री उस कुटिया में घुसी। उसकी गोद में एक वच्चा था और वह चिल्ला-चिल्ला कर रो रहा था।

"बच्चा वहुत बीमार है, किसी वैद्य को क्यों नहीं बुला लाते ?" उसने उस आदमी से कहा, जो उसका पति जान पड़ता था।

"तू क्या चाहती है कि मैं अपनी जान से हाथ धोऊं ? देख, मैं क्या लाया हूं।" वह गुर्राया।

कुछ क्षणों तक दोनों में से कोई न वोला। वह स्त्री चिल्लाते हुए वच्चे को चुप कराने की कोशिश करती रही।

"लगा तो दो धमूके इस छोकरे को।" आदमी ने चिल्लाकर कहा, "मुझे सुवह जल्दी उठकर खवर देने जाना है। मेरे लिए थोड़ी देर सो लेना जरूरी है। तू इस लड़की की निगरानी कर।" राजमती की ओर इंगित कर उसने कहा।

"इसकी निगरानी करूं, इसको यहां रखूं ?" स्त्री की आवाज चीखने-जैसी थी, "इस-जैसी लड़की को जवतक वह मर ही न गई हो, हम यहां कैसे रख सकते हैं ? क्या यह मरी हुई है ?"

राजमती विना हिले-डुले पड़ी थी, शायद इसीलिए उस स्त्री को उसके मृत होने का भ्रम हो गया था।

"मूरख, यह मरी नहीं है।" आदमी ने क्रोधपूर्वक उत्तर दिया। वोलते-वोलते वह कुछ डग आगे वढ़ आया और राजमती के शरीर पर ढकी सफेद चादर को उसने झटके से खींच दिया। कुछ क्षणों तक वह चुपचाप पड़ी रही और अपने ऊपर झुके हुए दो विचित्र चेहरों को एकटक देखती रही। कुटिया में तेल का छोटा-सा दीया जल रहा था, जिससे वहुत धीमा प्रकाश हो रहा था। कुटिया छोटी-सी, बेहद मैली-कुचैली थी। एक कोने में एक खटिया रखी थी, जिसका वान जगह-जगह से टूट गया था। दूसरे कोने में एक अलगनी पर घाघरा, ओढ़नी, गुदड़ी और दूसरे कपड़े टंगे हुए थे।

एक क्षण तक कुटिया और उसके निवासियों को देखते रहने के वाद राजमती को पता चल गया कि जगह अंधेरी है और उस पर निगरानी रखनेवालों के चेहरे गंदे और दुष्टतापूर्ण हैं, खासतौर से मर्द का चेहरा। मर्द की वायीं कनपटी की पूरी लंवाई में घाव का एक लंवा निशान था, जिसके कारण उसका चेहरा और कुरूप दिखायी देता था।

"यह जिंदा तो है ?" स्त्री ने पूछा।

"मैंने तुझसे कहा तो कि यह जिंदा है।"

"तुम कौन हो और मुझे यहां क्यों लाया गया है?" राजमती ने पूछा।

"अपनी जवान बंद कर और चुपचाप पड़ी रह।" उस आदमी ने चिल्लाकर कहा।

कुछ लड़खड़ाती हुई राजमती उठकर खड़ी हो गई। उसे शिकंजे में कस दिया गया था, फिर भी वह शान से चलती हुई उस स्त्री के पास पहुंच गई।

"अगर तुम मुझे मेरे घर पहुंचा दो, तो विश्वास दिलाती हूं कि जितना रुपया किसी और से मिलेगा, उससे कहीं ज्यादा मैं तुम्हें दूंगी।" उसने प्रस्ताव रखा।

"तुम सभी औरतें एक-जैसी हो।" मर्द ने पैर पटकते हुए कहा, "मैंने तुमसे कहा नहीं कि कोई सवाल मत पूछो। मैं तुम्हारे किसी भी मित्र से धन नहीं चाहता।"

उसकी आंखों में कुछ ऐसा था, जिसे देखकर राजमती को फनियल नाग की याद हो आई। उसे जरा भी संदेह न रहा कि इस आदमी की नीयत ठीक नहीं है। उसे यह बात इतनी स्पष्टता से आभासित हो गई थी, मानो उसमें छिपी वस्तुओं को देखने की शक्ति हो। उस आदमी में उसे दुष्टता की कुछ ऐसी झलक मिल गई थी, जिससे उसे लगा कि वह नीचता की किसी भी सीमा तक जा सकता है, यहां तक कि बलात्कार भी कर सकता है। उसने अपनी अंगुलियों को अपने गालों पर रखा तो उसके दोनों हाथ कांप रहे थे।

ऐसे बखेड़े में फंसने और उलझन में पड़ने की तो उसने सपने में भी कल्पना नहीं की थी। अपनी संकटापन्न स्थिति का बोध होते ही उसके सारे शरीर में कंपकंपी की लहर दौड़ गई। कितनी मूर्ख थी वह कि इतनी सरलता से धोखा खा गई!

"इसका क्या मैं अचार डालूंगी?" अंगूठे से राजमती की ओर इशारा करते हुए उस आदमी की पत्नी ने कहा।

एक पल के लिए भयानक चुप्पी रही। फिर वह बोला, "इससे तुम्हें कुछ भी परेशानी न होगी। मैं इसे बांधकर जकड़ दूंगा।"

एक कोने में से, जहां ढेर सारी चीजें गड्डमड्ड रखी थीं, वह कोई चीज ले आया, जो खड़खड़ायी। जैसे ही वह राजमती की ओर बढ़ा, वह एक-एक पैर पीछे हटती हुई कुटिया की दीवार से जा सटी। उसकी असहायता पर उस दुष्ट पुरुष को हंसी आ गई और राजमती के भयातुर चेहरे पर उसकी क्रूर आंखें लहक उठीं। नीचे की ओर दृष्टि करके राजमती ने देखा कि उस आदमी के हाथ में इस्पात की एक बेड़ी थी, जो इस्पात की ही जंजीर से जुड़ी हुई थी। जंजीर के अंतिम छोर पर एक नुकीली कील थी। वह कहीं से पत्थर का एक टुकड़ा ले आया और कील को उसने दीवार में

गाड़ दिया। खींचकर उसने जांच लिया कि वह मजबूती से गड़ गई है। राजमती अभी तक एक तरफ सिकुड़ी हुई खड़ी थी। आदमी ने अपना हाथ फैलाकर उसे टखने से पकड़ लिया।

अवतक तो वह चीख उठी होती, परंतु जाने क्यों उसके होंठ ही नहीं हिले। उसे ऐसा लग रहा था, मानो कोई भयानक दुःस्वप्न देख रही हो। आदमी ने जब उसको अपनी ओर खींचा तो वह चेतनाशून्य-सी उसके पास खिच आई। प्रतिरोध करने की उसकी शक्ति समाप्त हो गई थी। उसने महसूस किया कि उसके पैर में इस्पात की बेड़ी पहनायी जा रही है; फिर ताले में चाबी घुमाने का खटका हुआ। अब वह बंदिनी बना दी गयी थी।

उस आदमी के हाथों का स्पर्श इतना घिनौना था कि राजमती को लगा, वह बेहोश हो जायगी। तभी आदमी उठ खड़ा हुआ। उसने अपनी आंखें बंद कर लीं और बड़ी कठिनाई से अपने को चुप रख सकी। वह समझ गई थी कि भावुकतामय विरोध प्रकट करने से बात बनने के बजाय बिगड़ेगी ही।

"अब यह भाग नहीं सकती।" उसने अपनी पत्नी से कहा।

"लेकिन अगर कोई पड़ोसी यहां आ गया, तो मैं क्या कहूंगी?" स्त्री ने पूछा।

"किसी को यहां मत आने देना, बाहर से ही टरका देना।"

राजमती ने महसूस किया कि उसके पैरों में जान नहीं रह गई है। वह भागना भी चाहे तो पैर उसका साथ नहीं देंगे। धीरे-धीरे वह फर्श पर भहरा पड़ी और बेहोशी का अचानक दौरा आ जाने से उसकी आंखें मुंद गईं।

बच्चे के चीखने-चिल्लाने की आवाज सुनकर उसकी आंखें खुलीं। बेहोशी के दौरान कुछ समय के लिए वह अपनी विपदा को भुला सकी थी। आंखें खोलकर उसने देखा कि छोटी-सी बंद खिड़की के सूराख में से छन-छनकर धूप कुटिया में आ रही है। स्त्री बच्चे को चुप कराने की कोशिश

कर रही थी, परंतु वच्चे की चिल्लाहट कान के पर्दे फाड़े दे रही थी।

राजमती ने कुटिया में इधर-उधर दृष्टि डाली तो पाया कि उसकी दीवारों का पलस्तर कई जगह से उधड़ गया है और छत कालिख की वजह से काली पड़ गई है। कुटिया में गंदगी भी थी और दुर्गंध के मारे दम घुटा जा रहा था। स्त्री ने वच्चे को अपनी गोद में ले लिया था। राजमती को उस औरत के चेहरे पर पहली वार कोमलता उभरती दिखायी दी। उसे वच्चा कुरूप लगा, परंतु शायद इसलिए कि वह पीला पड़ गया था, उसका चेहरा सूखा हुआ और असाधारण रूप से दुर्वल था।

"यह कव से वीमार चल रहा है ?" राजमती ने पूछा।

मां ने कहा, "एक सप्ताह से। मैं इसे खाने को तो कुछ दे नहीं पाती, फिर चिल्लाये नहीं तो क्या करें ?"

राजमती ने अपने छोटे भाई को गोद में खिलाया था। उसको लगा कि अगर इस वच्चे को वचाने के लिए तुरंत कुछ न किया गया, तो यह मर जायगा। उसने वच्चे की मां के सामने यह सुझाव रखा कि वह गांव में जाकर कुछ जड़ी-वूटियां खरीद लाये, तवतक वह उसके वच्चे को बहलाती रहेगी। राजमती ने सोचा कि इस अवसर से लाभ उठाकर भागने की चेष्टा की जा सकेगी। उसने अपना पासा संभालकर फेंका था, जल्दवाजी नहीं की थी। उसका दिमाग साफ था और उसमें किसी तरह की उत्तेजना या घवराहट नहीं थी। उसने सावधानी से अपनी योजना तैयार की थी और पहले से ही सोच-समझ लिया था कि कैसे क्या करना होगा।

"वहुत खूव ! सोच रही होगी कि मैंने पीठ फेरी और तुम नौ-दो-ग्यारह हुईं।"

"मैं भागकर कैसे जा सकती हूं ? क्या तुम देखती नहीं कि मैं इस्पात की जंजीर में वंधी पड़ी हूं। लाओ, वच्चे को मुझे दो। मैं उसे लिये रहूंगी।" राजमती ने कहा।

स्त्री ने संदेहात्मक दृष्टि से घूरा, परंतु राजमती की आंखों में उसे कुछ ऐसी चीज दिखायी दी, जिससे उसे लगा कि डरने की कोई आवश्यकता

नहीं है। उसने राजमती को अपना बच्चा थमा दिया। बच्चे के शरीर से दुर्गंध आ रही थी, क्योंकि उसे कई दिनों से नहलाया-धुलाया नहीं गया था। राजमती द्वारा बतायी जड़ी-बूटियों को खरीदने के लिए वह स्त्री ज्यों-ही बाहर गई, राजमती सरकते-सरकते उस कोने में गई, जहां पानी का घड़ा रखा था। उसमें से थोड़ा-सा पानी लेकर उसने बच्चे को धो-पोंछ दिया। कदाचित् न नहाने के कारण उसके शरीर का चमड़ा खुजलाने लगा था। नहला देने से उसके चमड़े की खुजली किसी हद तक मिट गई और उसका रोना-चिल्लाना शांत हो गया। यह बच्चे का कसूर नहीं था कि उसके माता-पिता गंदे और अशिक्षित थे।

जैसे ही बच्चे को आराम महसूस हुआ, उसने रोना-चिल्लाना बंद कर दिया। वह अच्छी तरह सोया नहीं था और चीख-चिल्लाकर थक भी गया था, इसलिए थोड़ी देर में नींद से बोझिल होकर उसकी पलकें मुंदनी लगीं। जब वह स्त्री गांव से औषधि लेकर लौटी तब उसने राजमती और बच्चे को सोता हुआ पाया। एक क्षण वह उनकी ओर अपलक देखती रही। लड़की कोई राजकुमारी जान पड़ती थी। उसके मूल्यवान वस्त्र गंदे फर्श पर फैले हुए थे, कंधे मैली-कुचैली दीवार के सहारे टिके हुए और सिर एक ओर को लटक गया था; परंतु उसकी गोद में बच्चा अभी तक पड़ा हुआ था।

राजमती अकचकाकर उठ बैठी, "हम दोनों ही शायद सो गये थे।" कहकर वह मुस्करायी, "तुम्हें जड़ी-बूटियां मिल गईं?"

"हां, मुझे सारी चीजें मिल गईं। थोड़ा-सा दूध भी मैं लेती आयी हूं।"

"दवाइयों को किसी बर्तन में रखकर उबाल लो।"

औषधि का काढ़ा तैयार हुआ। राजमती ने बच्चे को चम्मच से थोड़ी दवाई पिलायी और ऊपर से थोड़ा-सा दूध भी पिला दिया। बच्चा फिर सो गया। काफी देर तक वह शांतिपूर्वक सोता रहा। जब सोकर उठा तो राजमती ने उसे पुनः थोड़ी-सी औषधि पिलायी। बच्चा पहले से बेहतर महसूस कर रहा था। वह हल्का-हल्का हंसने भी लगा था।

गोधूलि बेला होने जा रही थी। बच्चे को इतना प्रसन्न देखकर उसकी

मां की खुशी का ठिकाना न रहा। राजमती ने स्त्री को प्रसन्न और संतुष्ट देखकर अपने अपहरण का किस्सा फिर छेड़ दिया। उसने स्त्री से पूछा, "तुम लोग किसके कहने से यह काम कर रहे हो?"

"मुझे बताना तो नहीं चाहिए, लेकिन तुमने मेरे साथ भलाई की है।" स्त्री ने उत्तर दिया, "हमें इस काम के लिए विजयसिंह सोलंकी से अच्छा इनाम मिलेगा। रावल की बहन की शादी अपने भाई से करने का आश्वासन विजयसिंह ने दिया है।"

"लेकिन विजयसिंह तो मर गया। तीन दिन पहले ही उसे मार डाला गया।"

अगर यह घटना कुछ दिन पहले होती तो राजमती इस दुर्भाग्य के साथ शायद समझौता कर लेती, परंतु अब तो बीसलदेव का सबल, जीवंत और प्रेरणास्पद व्यक्तित्व उसके मन-प्राणों में बसा हुआ था। इसके अतिरिक्त विजयसिंह धरातल पर पड़ी काली छाया-मात्र रह गया था।

"क्या सचमुच वह मार डाला गया? कहीं तुम मुझे बहका तो नहीं रही हो?" स्त्री ने ये शब्द कहे और विस्मय से राजमती की ओर देखने लगी। उसकी आंखों में देखकर उसे विश्वास हो गया कि राजकुमारी झूठ नहीं बोल रही है। वह बेड़ी की तालियां ले आई और उसके ताले खोल दिये। राजमती बंधन-मुक्त हो गई।

"मेरा आदमी लौटकर आये, उससे पहले ही तुम तेजी से गोधूलि के अंधेरे में यहां से दूर चली जाओ।" राजमती से उसने बुदबुदाकर कहा, "तुमने मेरे बच्चे को बचाकर चमत्कार किया है। तुम्हारे उपकार का बदला चुकाना मेरा फर्ज है।"

राजमती ने उसके दूसरे शब्द की प्रतीक्षा नहीं की। वह कुटिया में से निकल भागी। उसने अपना घाघरा समेट लिया और तेज डगों से छितराये वृक्षों के झुरमुट को पार करती हुई अंधकार में खो गई। कुछ ही क्षण पहले वह लोह-शृंखला में जकड़ी बंदिनी थी और अब मुक्त। दोनों स्थितियों में

कितना अद्भुत अंतर था। वह चकित थी कि इतनी सरलता से उसकी बंधन-मुक्ति कैसे हो गई ?

उसको कुछ धुंधला-सा ख्याल था कि वह दुर्ग से बहुत दूर नहीं है। जिस ओर उसे ध्यान था कि दुर्ग हो सकता है, उसी ओर वह दौड़ने लगी। वृक्षों के बीच से एक पगडंडी जा रही थी, वह उसी का अनुसरण करने लगी। उसकी आंखें आंसुओं से भर-भर आती थीं, जिससे कभी-कभी तो रास्ता भी नहीं सूझ पाता था। लेकिन वह बेतहाशा दौड़ी जा रही थी। उसका विचार था कि अगर दुर्ग तक न भी पहुंच सके तो कम-से-कम इस जगह से तो दूर निकल जाय। एक-दो बार वह रास्ते पर उभरी हुई वृक्षों की जड़ों में उलझकर गिरने को हुई, उसका घाघरा भी कई बार उलझा, जिसे छुड़ाने के लिए उसे अनेक बार झुकना पड़ा।

काफी देर तक दौड़ने के बाद उसे खाई तथा छोटे-बड़े वृक्षों से घिरा हुआ दुर्ग दिखायी दिया। दुर्ग के एक तरफ बरगद का एक पेड़ था। इस दृश्य को देखकर उसका दिल उछल पड़ा। एक पेड़ के तने का सहारा लेकर वह कुछ क्षण सुस्ताती रही। फिर एक गहरी सांस लेकर अपने गंतव्य की ओर चल पड़ी। वह अपनी समझ में दुर्ग के द्वार की ओर जा रही थी।

थकी-मांदी,पसीने में तर-बतर वह एक स्वप्निल धुंध को चीरती हुई चली जा रही थी। जब उसने दुर्ग के पौर के भीतर प्रवेश किया तो गोधूलि का धुंधलका गहरा चुका था। दुर्ग के भीतर पहुंच कर ही उसकी जान-में-जान आई।

राजकुमारी के अचानक प्रकट होने पर दुर्ग के फाटक पर तैनात पहरेदारों को बड़ा आश्चर्य हुआ। रावल के सैनिकों ने दुर्ग कोट के भीतर-वाले गांव का चप्पा-चप्पा छान डाला था। रावल की सौतेली बहन, वह लंबे कदवाली महिला भी तो लापता हो गई थी। रावल का परेशान होना स्वाभाविक था। राजा भोज के कोप से अधिक उसे अपनी इज्जत पर बट्टा लगने का भय सता रहा था। उसने लगभग निश्चय कर लिया था कि अगर एक दिन में राजमती का पता न चला, तो आत्महत्या कर लेगा।

राजमती की मुख्य परिचारिका चंद्रा दुर्ग के भीतर स्थित राजमहल के द्वार पर उदास बैठी थी। उसने जब राजमती को आते देखा तो चकित रह गई। आनंदातिरेक में उसे अपने दास-पद का ध्यान न रहा और लपककर उसने राजमती को आलिंगन में भर लिया। राजमती वेसुध होकर चंद्रा के हाथों में गिर पड़ी।

सिद्धपुर से अपने लव-लश्कर के साथ रवाना हुई तो राजकुमारी राजमती ने बार-बार भगवान का आभार माना कि वह उन दुष्टों के चंगुल से बच गई। अपने अपहरण को लेकर उसके मन में इतनी उद्विग्नता नहीं थी, जितनी उस घटना को लेकर चल पड़ी चर्चाओं, प्रमादों और कुत्सा-निंदा से थी !

□ ६ तीरों की बौछार

मंदिर के चबूतरे पर राजमती को छोड़कर बीसलदेव ने अपने खेमे को जानेवाला रास्ता लिया। कुछ दूर जाने पर उन्हें ध्यान आया कि राजमती को अकेला छोड़ जाना ठीक नहीं हुआ। वे वापस लौटे। जैसे ही वे झील के समीपवर्ती खुले मैदान में पहुंचे, उन्होंने राजमती को मंदिर के चबूतरे पर से उठते देखा। राजरानी की गरिमा से वह तीव्र गति से एक ओर को चल दी। उसे देखकर वीसलदेव को लगा कि वन की कोई अप्सरा जा रही है। तभी वृक्षों के पीछे जाकर वह उनकी आंखों से ओझल हो गई। उन्होंने उसका अनुसरण करने का प्रयत्न नहीं किया।

उनके मन में यह चाह जरूर उठी कि वे उसके पास लौट जायं और उससे पुनः मिलें। ऐसी उत्कट चाह किसी अन्य वस्तु के लिए उनके मन में कभी नहीं उठी थी। जीवन में पहली बार उन्हें पीड़ा की अनुभूति हुई

और यह पता चला कि उनका प्रेम, जो पंख फड़फड़ाता हुआ उनके हृदय से उड़ चला था, राजमती के अलावा कहीं अन्यत्र अपना बसेरा नहीं कर सकता।

उस रात उन्हें उचटी-उचटी नींद आई। दुश्चिंताओं और दुःस्वप्नों के कारण वे बेचैन रहे। उन्हें स्वप्न में दिखायी दिया कि अजयमेरु के अन्नासागर में एक सुंदर हंस उतरा है और उनके पास आने के लिए तड़प रहा है, परंतु कोई बाधा उसे उनके पास तक आने नहीं देती। वे झील में कूद पड़े। तभी हठात् उनकी नींद खुल गई। वे घबराकर अपने खेमे के बाहर देखने लगे।

उजली रात थी। आकाश में बादल नहीं थे। लेकिन चंद्रमा अस्त हो चुका था और तारागण भी अपनी पूर्वभास्वरता के छायाबिंब ही रह गये थे। पूर्व दिशा में पौ फटने को थी और हल्का-सा उजाला प्रतिभासित होने लगा था। लगता था, उषाकाल अधिक दूर नहीं है।

वीसलदेव ने सिर उठाकर आकाश की ओर देखा। फिर जंगल, उसके वृक्षों, झाड़-झंखाड़ों और उनके रंगों की ओर उनकी दृष्टि गई। रात के कारण उनके रंग धूमिल पड़ गये थे, परंतु अब अपनी हरीतिमा को पूरी शान से व्यक्त करने के लिए वे उगते सूरज की प्रतीक्षा कर रहे थे।

वे सोचने लगे कि इस समय राजमती क्या कर रही होगी। राजमती का ध्यान आते ही उनके हृदय में उससे भेंट करने की उमंग उठी। क्या उससे मिलने जाना उचित होगा ? परंतु जब उन्होंने देव-प्रतिमा के समक्ष उससे विवाह कर लिया है, तब इसमें आपत्ति और अनौचित्य ही क्या हो सकता है ? राजपूतों में तो गंधर्व-विवाह को मान्यता प्राप्त थी ही।

वे राजमती से मिलने के लिए चल पड़े। वृक्षों के नीचे से होती हुई टेढ़ी-मेढ़ी पगडंडी जा रही थी। उसके किनारे-किनारे महुवा के बहुत-से पेड़ खड़े थे और अनेक प्रकार की झाड़ियां उगी हुई थीं। जहां-तहां, इक्के-दुक्के फूलों की सुगंध से मिश्रित महुवा के फूलों की मादक गंध वायुमंडल में भरी हुई थी। दिन के समय पथिक वन के लाल-लाल फूलों से लहकती

मंजूषा को देखकर मंत्रमुग्ध हुए बिना नहीं रह सकता था। विदा होती रात्रि की प्रशांति में, महुवा वृक्षों की हरीतिमा के साथ अन्य वृक्षों के पत्तों का नीललोहित रंग मिश्रित होकर एक अद्भुत छटा दिखा रहा था। वृक्षों की छाया में पुष्प भी उनींदे जान पड़ते थे।

बीसलदेव का ध्यान अपने चतुर्दिक् फैली सौंदर्यराशि पर नहीं था, उनके मन में तो अब भी मंदिर और झील की स्मृति ही बसी हुई थी। उन्हें उस रात की याद आ रही थी जब ओस-भीगी घास की तीखी गंध का संधान करते हुए वे खुले मैदान के ऊपर विस्तृत रुपहले उज्ज्वल आकाश और झील के सौंदर्य के सान्निध्य में पहुंच गये थे। उस समय रात के पाखी का गीत वातावरण को गुंजित कर रहा था। उन्हें उस दिन की याद हो आई जब बारहसिंगे को उन्होंने अपने तीर का निशाना बनाया था। उन्हें उस क्षण की भी स्मृति हो आई जब उन्होंने आहत बारहसिंगे के स्वामित्व के प्रश्न पर राजकुमारी की भृकुटि को कुंचित होते देखा था।

जब से राजमती से भेंट हुई थी, विशेषतः आखेट के समय, तब से उनके मन में केवल उसी का ध्यान था और केवल उसी का स्वप्न वे देख रहे थे। अब तो उन्हें पता भी चल गया था कि वह कौन है और वे उससे देवालय में विवाह भी कर चुके थे। इससे अनजाने ही उनका एक प्रयोजन पूरा हो गया था। राजमती के साथ उनका विवाह हो जाने से उनकी भावी योजनाओं को बहुत बल मिल सकता था। विधाता ने कितने अचिंत्य रूप से उनकी सहायता की है, यह जानकर उन्हें अत्यंत हर्ष हो रहा था।

बीसलदेव चले जा रहे थे। सुनहले सूरज की पहली किरणें आकाश में ऊपर की ओर फैलती जा रही थीं। समस्त वातावरण रूपांतरित हो गया था। एक क्षण को सब कुछ धूसर और रंगविहीन दिखायी देने लगता और दूसरे ही क्षण आकाश अपनी संपूर्ण महिमा को व्यक्त करने लगता था। गहरे लाल रंग के चमकीले पुष्प अपना अनूठा सौंदर्य प्रदर्शित कर रहे थे। बीसलदेव के चतुर्दिक् बैंगनी, हरे और सिंदूरी रंग की जैसे बाढ़ आ गई थी। सूर्य का स्तवन करते पक्षियों का प्रथम गीत गूंजने लगा था।

राजमती के शिविर के समीप पहुंचकर वीसलदेव एक क्षण रुके। उन्होंने अपने इर्द-गिर्द देखा। जिधर देखा, उधर आदमी-ही-आदमी थे। रक्षक अपने-अपने घोड़ों पर जीन कस रहे थे, परिचारिकाएं इधर-से-उधर भाग-दौड़ रही थीं। वीसलदेव ने सोचा, लगता है, ये लोग खेमा उखाड़ रहे हैं।

उन्होंने सूना-सूना-सा महसूस किया; लेकिन और आगे जाना उन्हें उचित नहीं जान पड़ा। इतनी खुल्लमखुल्ला परंपराओं का तिरस्कार करना गलत था। वृक्षों की काली छायाओं के नीचे चलते हुए वे झाड़ियों की ओट में हो गए। उनके हृदय में जो द्वंद्व उठ रहा था, उसे वे अपने शिविर में पहुंचने के बाद ही किसी तरह शांत कर पाये। उन्होंने अपनी राजधानी में लौटने और शीघ्रातिशीघ्र विवाह कर लेने का निश्चय कर लिया।

वीसलदेव और उनके सैनिक जंगल में से होकर रवाना हुए। उनके चारों तरफ ऊंचे-ऊंचे वृक्ष थे, जिनके कारण रास्ते पर घनी छाया हो रही थी। वृक्षों के नीचे झाड़-झंखाड़ उगे हुए थे। घोड़ों की टापों की आवाज से चौंककर चकोर पक्षी झाड़ियों में से उड़-उड़कर आ जाते थे। खरगोश और झाऊमूसे तो ढेर-के-ढेर चारों ओर नजर आ रहे थे। लंबे बालोंवाले पशु, बारहसिंगे और भूरे हिरन उनके धनुष-बाण को देखकर भी भाग नहीं रहे थे।

वर्षा-ऋतु में प्रकृति की हरित सुषमा को देखकर ये वन्य पशु आश्चर्य-चकित हो रहे थे। उनके उस भोले विस्मय पर मुग्ध वीसलदेव के आखेटक उनका पीछा करने से अपने को रोके हुए थे। नाटे कद के वृक्षों की फैली हुई शाखाएं और उनकी पीताभ-हरित पत्तियां ऊंचे वृक्षों की गहरी हरियाली के बीच दूर से रुपहली जान पड़ती थीं। प्रपातों की वेगवती धारा का चमचमाता जल आंखों को शीतलता प्रदान कर रहा था।

अगले दिन जंगल का सिलसिला खत्म हुआ और वे रेगिस्तान में आ पहुंचे। पहाड़ियों और रेतीली भूमि के बीच, जिसमें वे अब आ पहुंचे थे, कड़ी-रूखी जमीन की एक पट्टी आती थी। जहां-तहां कोई क्षीणकाय नदी मिल जाती, जिसमें नाम-मात्र को पानी होता। इन जगहों पर दिन गरम

और खुश्क होते, पर रातें ठंडी। पेड़-पौधे विरल थे और उनकी जड़ें उथली।

रेत के टीलों के बीच से गुजरती हुई हवा सूँ-सूँ की आवाज करती थी। उसके साथ उड़ी रेत उनकी पलकों पर बारीक छर्रों की तरह आकर लगती, उनके नथुने सूखी मिट्टी और हरियाली की मिली-जुली गंध से भर जाते थे। वीसलदेव ने अपने साफे के छोर से अपना मुँह ढंक रखा था।

दो दिनों तक वे रेंगती चाल से रेगिस्तान में यात्रा करते रहे। हर बीतते घंटे के साथ पेड़-पौधे कम होते गये और मार्ग के दोनों ओर एकत्र लाल-पीली रेत रही-सही हरियाली को भी धुंधला करतीं रही।

अगली सुबह वे अरावली पहाड़ियों तक पहुंच गए। प्रातःकालीन धूप से नहाती घाटी में दूर-दूर तक भूरी-भूरी चट्टानों का सिलसिला दिखायी दे रहा था। धूप की तेजी से बचने के लिए वे दोपहर में तो किसी छायादार जगह में विश्राम करते और तीसरे पहर, धूप ढलने पर, अपना सफर चालू कर देते थे।

एक ध्वजधारी अश्वारोही सारे दल के आगे-आगे चल रहा था और उसके पीछे चार सौ घुड़सवार। वीसलदेव हरावल दस्ते के साथ थे, जिसमें एक हजार घुड़सवार थे। तभी अचानक एक सनसनाता तीर कहीं से आया और ध्वजधारी के अश्व को आहत कर गया।

नायक का नाम आनंद था। उसने सामने देखा और तुरंत अपना धनुष हाथ में ले लिया। वह अपना घोड़ा दौड़ाता हुआ ध्वजधारी की ओर बढ़ा और उसी के पीछे बढ़ चले चार सौ घुड़सवार। घोड़ों की टापों की आवाज गहरी घाटी में से गुजरते रास्ते पर गूंज उठी। घाटी के दोनों ओर की ढाल पर धूसर रंग की चट्टानें खड़ी थीं। उनके बीच-बीच में पीली मिट्टी की तहें आ गई थीं, जिसमें उगी झाड़ियां ढलान पर लटकी हुई थीं। झाड़ियों में गहरी हरी पत्तियाँ टँकी थीं। दोनों ओर की ढलानों की ऊंचाई क्रमशः घटती जा रही थी और रास्ता खड़ी चढ़ाई का था—संकरा।

वीसलदेव आगे की ओर उभरी चट्टान के मोड़ को पार कर जैसे ही निकले, उन्हें दूरी पर कुछ हिलता-सा दिखायी दिया। घोड़े को एड़ लगाकर

वे अपने अनुगामियों से कोई सौ गज आगे, चट्टान की उस फांट की ओर बढ़ गये, जो छाया में छिपी थी। वहां आकर रास्ता पुनः संकरा हो गया था। उनके हाथ धनुष की प्रत्यंचा पर थे।

तभी ऊपर की ओर लटकी चट्टान से एक शिलाखंड उनके घोड़े के टाप के सामने, कुछ गज की दूरी पर गिरा और टूक-टूक होकर बिखर गया। वीसलदेव रुक गये। कुछ ही क्षण बाद एक दूसरा शिलाखंड उनके कुछ और निकट आकर गिरा और साथ ही सायंकाल की हवा को चीरती हुई तीरों की एक बाढ़ आई। तीर उनके इर्द-गिर्द धरती पर गिरे।

वीसलदेव ने चिल्लाकर आदेश दिया, "सैनिको, आगे बढ़ो और मेरे गिर्द बाड़ बना लो।"

हजार घुड़सवार दौड़े आये और उनकी सुरक्षा के लिए दीवार-सी बनाकर उन्हें घेरकर खड़े हो गये।

वीसलदेव के धनुर्धरों ने अपने चारों ओर की चट्टानों को लक्ष्य करके तीर चलाये; परंतु चट्टानें इतनी खड़ी थीं कि उन्हें मुश्किल से ही कुछ छाया, आकृतियां और भाले की नोक या धनुष के सिरे का कंपन-मात्र दिखाई देता था। पहाड़ियों में गोधूलि-वेला के पूर्व जो प्रकाश छाया रहता है उसकी विचित्र अस्पष्टता में यह झड़प उनके गले आ पड़ी थी। तीरों की चोट से घायल घोड़े हिनहिना उठते और उनके सवार घायल होकर अपनी काठियों से गिर पड़ते थे।

सीधी-खड़ी चट्टानों से घिरे, तीरों से विंधते हुए सैनिकों को ऐसा लग रहा था, मानो खुद पहाड़ियां शत्रु बनकर उनके विरुद्ध खड़ी हो गई हैं। मानव-शत्रु तो अदृश्य था, क्योंकि वह अज्ञात था और अप्रत्याशित भी।

तीन धनुर्धर गिरकर धराशायी हो चुके थे और एक अपनी पसलियों में घुसे तीर को मुट्ठी में भरे हुए था। वीसलदेव ने अपने घोड़े को आगे बढ़ाया, सामने के चार सौ सैनिक भी पीछे मुड़े। वे सब वहां से हटकर कुछ खुले स्थान पर आये, जहां ठीक ऊपर चढ़ी चट्टानें नहीं थीं, और जहां से ऊपर खड़े शत्रुओं को देखा जा सकता था। अब वे पहले की अपेक्षा बार

करने की अच्छी स्थिति में थे। बीसलदेव ने अपने चार सौ सैनिकों को पहाड़ियों पर चढ़ने का आदेश दिया। हरावल दस्ते के एक हजार सैनिक उनकी सुरक्षा कर रहे थे। बीसलदेव ने आनंद को दक्षिण पार्श्व से बढ़ने-वाली टुकड़ी का नेतृत्व सौंपा। वे स्वयं सैनिकों के साथ रहे।

ऊपर से तीरों की बौछार पूर्ववत जारी थी। बीसलदेव के चेहरे पर चिंता की रेखाएं उभर आईं। वे अपने घोड़े से उतरकर, वाम पार्श्व से पहाड़ी पर चढ़ने लगे। वे इतनी तेजी से चट्टानों को पकड़-पकड़कर चढ़ते जा रहे थे कि उनके भालेदार सैनिक पिछड़ गये। आनंद के नेतृत्व में चढ़ने वाला सैनिक दल लगातार आगे बढ़ता जा रहा था। उनके हल्के भूरे अंग-रखे धूलि-धूसरित होकर चट्टानों के रंग से घुलमिल गए थे। अब वे एक ऐसे स्थल पर पहुंच गये थे, जहां बीच-बीच में आ गई दरारों के कारण शत्रुओं की तेज-से-तेज आंख भी उन्हें नहीं देख सकती थी। यहां आकर वे सैनिक सीधे खड़े हो गये। वाम पार्श्व में बीसलदेव के नेतृत्व में मुख्य सैनिक दल अब भी ऊपर की ओर बढ़ता जा रहा था।

जब सब लोग उस स्थल पर आये, जहां से शत्रु उन पर आक्रमण कर रहे थे तो मैदान खाली मिला। पांच शत्रु सैनिकों की लाशें पड़ी थीं और एक सैनिक एक तीर के लंबे फलक से बिंधकर कीलित हो गया था। स्पष्ट ही उन्हें अपने से अधिक संख्या में देखकर शत्रु सैनिक भाग गये थे। सायं-काल का झुटपुटा भी अब रात के अंधियारे में क्रमशः गहराता जा रहा था। रात का काला पर्दा क्षितिज पर गिर गया था। पछुवा हवा के कारण उठे बादलों ने धरती और चमकते चांद के बीच में चादर तान दी थी। बीसलदेव ने अपने सैनिकों को पुनः अश्वारूढ़ होने का आदेश दिया।

बीसलदेव अपने घोड़े पर सवार होकर सैनिकों को गुजरते हुए देखते रहे। चार सौ सैनिक, जिन्हें आगे-आगे चलना था, उनके पास से गुजर गये। राजपूत सैनिक अपने घोड़ों पर बड़ी ऐंठ से जमकर बैठे थे। चंद्रमा की मंद आभा में उनके साफों के लहराते हुए छोर मुश्किल से ही दिखायी दे रहे थे। उनके अंगरखे घोड़ों के पृष्ठ भाग के ऊपर फहरा रहे थे। हवा स्वच्छ,

शीतल थी। घोड़े धूमिल पगडंडी पर, दुलकी चाल से, उत्तर की ओर चले जा रहे थे।

वीसलदेव और उनके अश्वारोहियों ने रात-भर यात्रा की। प्रातःकाल ने उनका गहरी झीलों से घिरे हरे-भरे मेवाड़ की धरती पर स्वागत किया।

▫ ७ दूसरा तूफान : महमूद गज़नवी

वीसलदेव ने पर्वतीय स्थानों की कठोर यात्राएं पहले भी की थीं, परंतु आज अपने घोड़े पर सवार होकर जितने वेग से वे जा रहे थे, इससे पहले कभी नहीं गये थे। कंकरीले-पथरीले मार्ग पर घोड़ों की टापों की रगड़ से जो आवाज पैदा हो रही थी उससे उसके मन में अनागत शुभ घटनाओं के लिए पूर्व-उत्साह उत्पन्न हो रहा था। सूर्य की तीखी किरणों में तपी पर्वतीय उपत्यका मांजकर चमकाये हुए तांबे के समान दिखाई दे रही थी। झोंपड़ियों और वृक्षों पर सूर्य का प्रखर, झिलमिल प्रकाश पड़ने से उनकी आकृति कुछ विलक्षण, विरूप दृष्टिगत होती थी।

इस मौसम में आंधी-तूफान आना साधारण बात होती है, परंतु उस दिन इसका लेश भी नहीं था। शीतल पुरवा के झोंकों के साथ वीसलदेव ने चित्तौड़ में प्रवेश किया। शीघ्र ही आकाश काले-कजरारे बादलों से भर गया और हवा कुछ देर के लिए थम गई। तभी पछुवा चल पड़ी, जिसके वेग से सुनहली रेत की बड़ी-बड़ी दीवारें एक जगह से दूसरी जगह को हट गईं। उसके बाद तूफान फट पड़ा और सारे आकाश का जल-कोष जैसे लूट लिया गया। बिजली कौंधती, कड़कड़ाती बादलों की बांहों से छिटक-छिटक जाती थी। वर्षा ने जोर पकड़ा और शीघ्र ही गंदले गाढ़े-पीले रंग के पानी का पहाड़-का-पहाड़ राजमहल के द्वार के सामने से बह निकला।

जव आंधी-तूफान छंट गया तो मौसम वड़ा सुहावना, ठंडा हो गया। अतीत में चित्तौड़ के गहलोतों और अजयमेरु के चौहानों के वीच शत्रुता थी। वीसलदेव के पिता अपनी मृत्यु तक चित्तौड़ के तत्कालीन रावल से लड़ते रहे थे। परंतु विदेशी शत्रु के संकट को देखते हुए गहलोतों और चौहानों ने अपने मतभेद भुला दिये थे और अव वे मित्र वन गये थे। रावल तेजसी और वीसलदेव दोनों ही लोकप्रिय नरेश थे। दोनों को ही उनकी प्रजाएं स्नेह करती थीं।

रावल तेजसी गहलोत ने वीसलदेव का स्वागत किया। वीसलदेव उनके अतिथि के रूप में वहां ठहरे। वीसलदेव को सीने से लगाते समय रावल के भावपूर्ण नेत्रों में उल्लास चमक उठा था। वीसलदेव ने भी अपनी मोहक मुस्कान के द्वारा अपने हृदय की भावना व्यक्त की।

रावल ने सायंकाल वीसलदेव के मनोरंजन के लिए समारोह का आयोजन किया। स्थल-स्थल पर दीपक और मोमवत्तियों का प्रकाश छिटक रहा था। भोज का भव्य प्रवंध था। प्रत्येक व्यंजन प्रभूत परिमाण में प्रस्तुत था। चित्तौड़ के सभी गणमान्य व्यक्ति किमखाव और रेशमी वस्त्रों में सजे-धजे मयूरों की भांति रंग-विरंगे दिखायी दे रहे थे। भोज के पश्चात् नृत्य आरंभ हुए। नर्तकियां अपनी नृत्य-कला के प्रदर्शन में एक-दूसरे से वाजी मार ले जाना चाहती थीं। रत्नजटित चपक मदिरा से भरे जा रहे थे और रीते हो रहे थे। यह क्रम आधी रात तक चलता रहा। रावल औरवीसलदेव समारोहवाले वड़े प्रशाल के पीछे स्थित एक छोटे प्रशाल में विश्राम के लिए चले गये।

गद्दों पर आसंदियों के सहारे वैठते हुए रावल ने कहा, "आज तो आपके स्वागत के लिए आसमान भी उमड़ पड़ा है। प्रजाजनों में भी खुशी का तूफान आ गया है।"

"ऐसे तूफान तो ठीक हैं, लेकिन दूसरे तूफानों के वारे में भी आपने सोचा है?" वीसलदेव ने पूछा।

वे दोनों दूसरे तूफानों से डरते रहे हों, ऐसी वात नहीं। दोनों वीर थे,

युद्ध-कौशल में पारंगत। उनके पास पर्याप्त सैन्य-शक्ति थी और वे इस बात से भी आश्वस्त थे कि अवसर आने पर अन्य नरेश भी उनका साथ देंगे, परंतु वे देशद्रोहियों से अवश्य भयभीत थे।

"ऐसे राजाओं की भी यहां कमी नहीं रही है जो अपने क्षुद्र स्वार्थ की पूर्ति के लिए विदेशी आक्रमणकारियों को आमंत्रित करने में नहीं हिचकते।" वीसलदेव ने कहा।

"सोलंकियों के बारे में संदेह हो रहा है।" तेजसी ने उत्तर में कहा।

"एक नीच को तो मैंने मार डाला है।" बीसलदेव ने कहा, "लेकिन हमें काफी चौकस रहना है। कर्ण चालुक्य के विषय में भी अफवाहें फैली हुई हैं।"

"सोलंकी मारा गया? कैसे?"

"विजय सोलंकी राजा भोज की कन्या का अपहरण करने की कुचेष्टा कर रहा था"...

"ताकि वह सौराष्ट्र में सोलंकियों का प्रभुत्व स्वीकार करने के लिए भोज पर दबाव डाल सके। ऐसे आदमियों को तो मार डालना ही उचित है। लेकिन भोज अडिग दीवार की तरह अड़े रहेंगे।"

"यद्यपि भट्टियों और कच्छावों की संख्या अधिक नहीं है, तो भी ये लोग वीर हैं और निश्चय ही हमारा साथ देंगे।" बीसलदेव ने कहा।

"इन दिनों किसी का विश्वास करना कठिन है। कहते हैं, महमूद ने हर कहीं अपने अनुचर छोड़ रखे हैं। संभव है, हमारे आदमियों में भी उसका कोई भेदिया हो।" रावल बोले।

"वह लोमड़ी की तरह धूर्त और काइयां है। उसका विश्वास कोई कर कैसे सकता है? मेरे पिताजी के जीवन-काल में उसने जो घातक आक्रमण किया था, उसकी स्मृति अबतक मुझे है।"

"असल में वह लुटेरा है; किंतु जो लोग लूट में उसकी सहायता करते हैं, उन्हें वह अपने द्वारा विजित प्रदेश पुरस्कार में दे जाता है।" रावल ने कहा।

वर्षा अब भी हो रही थी। कभी जोर की बौछारें पड़ने लगती थीं, कभी हल्की झींसी, और कभी काले बादलों से घिरे आकाश में बिजली कौंध-कौंध जाती थी। इंद्रदेव का तीक्ष्ण श्वेत वज्र कोमल धरती पर प्रहार करने के लिए क्षितिज में वक्र हो जाता था। रावल ने परिचारक को और मदिरा लाने का आदेश दिया। उनकी बातचीत अबाध रूप से जारी रही।

"लुटेरे महमूद ने पेशावर में अपना पड़ाव डाल रखा है। मैं जयपाल को नहीं भूल सकता। सौराष्ट्र जाने से उसे कौन-सी चीज रोक रही है ?" बीसलदेव ने पूछा।

"यह तो मैं नहीं जानता कि वह क्यों नहीं जा रहा, परंतु संकट के क्षणों में प्राय: सभी लोग एक विचित्र अनिश्चय की मन:स्थिति में पड़ जाते हैं, यद्यपि उसे छिपाने की वे पूरी चेष्टा करते हैं। हम यह तो जानते हैं कि क्या किया जाना आवश्यक है, परंतु न मन स्वीकृति देता है और न शरीर ही साथ दे पाता है।"

"ऐसा लगता है कि ऐसे क्षणों में अनिश्चय एक अनुसंधेय कला बन जाता है।" तेजसी ने अपनी बात को जारी रखते हुए कहा, "संकट के क्षणों में हम पर एक तरह की जड़ता हावी हो जाती है। हम दुविधा में पड़ जाते हैं, कुछ निश्चय नहीं कर पाते, सोचने-समझने और महसूस करने की हमारी शक्ति जवाब दे जाती है, अपने सामने जो कुछ घट रहा होता है उसे हम सूनी आंखों से देखते रहते हैं। लेकिन जब हम इस प्रकार की मनोदशा में होते हैं, तब सारे समय हमारे मन के भीतर कोई यह भी कह रहा होता है कि संकट को टालने के लिए या संकट का सामना करने के लिए कुछ करो, समय रहते करो। परंतु अंतिम क्षण तक हम अपना कर्त्तव्य करने में आगा-पीछा करते हैं। जयपाल ने भी सामयिक निर्णय नहीं किया।"

महमूद गजनवी १०५७ विक्रमी संवत् में राजसिंहासन पर बैठा। इससे पूर्व उसने अपने भाई को, जिसे उसके पिता ने राजा मनोनीत किया था, पराजित किया। उसका पहला उद्देश्य था अपने राज्य को सुगठित

और सुस्थापित करना। यह कार्य उसने किया दो वर्ष बाद, अब्दुल मलिक और उसके सहयोगियों को पराजित किया, और खुरासान पर अपना आधिपत्य पुनः स्थापित कर लिया। तत्कालीन खलीफा ने उसे अफगानिस्तान और खुरासान देशों का अधिपति स्वीकार कर लिया और उसे खिलअत भी बख्शी।

तीन साल बाद उसने हिंदुस्तान पर पहला हमला किया और जयपाल को हराकर पेशावर पर अधिकार कर लिया। इसके बाद, उसने दुबारा दक्षिण-पूर्व में कुछ और आगे तक अभियान किया। वह पराजित होने को ही था कि संयोग से युद्ध के चौथे दिन उसने वाजीराव को, जो भाटियों में बहुत वीर माना जाता था, हरा दिया। उसने नगर को खूब लूटा-खसोटा, परंतु गजनी लौटते समय, नदियों में बाढ़ आ जाने से और शत्रुओं की कार्रवाई के कारण उसका लूट का अधिकांश माल नष्ट हो गया।

तब से उसने हिंदुस्तान पर कई बार आक्रमण किये और पूर्व में मथुरा को, उत्तर में कश्मीर को लूटा। हर बार वह सैकड़ों ऊंटों और हाथियों पर लादकर लूट का माल ले जाया करता था। उसने हिंदु (सिंधु) नदी के पूर्व में भी अपना राज्य स्थापित किया, जिस पर उसकी ओर से नियुक्त सूबेदार शासन करते थे।

उत्तरी हिंदुस्तान का हर राजा इसी चिंता में घुला जाता था कि महमूद का अगला आक्रमण यदि उसके राज्य पर हुआ तो उसकी क्या दशा होगी; उसके भाग्य का ऊंट किस करवट बैठेगा? महमूद क्रूरता और निर्दयता का प्रतीक था। वह बेरहमी के साथ किसी भी भारतीय राजा पर आक्रमण कर देता था। कोई नहीं जानता था कि उसका आक्रमण कब और कहां होगा। संभव है, आक्रमण अगले महीने ही हो जाय। इसलिए कुछ नरेशों ने अपनी रक्षा के लिए एक संगठन बना लिया था। अकेले कोई भी राजा इतना शक्तिशाली नहीं था कि उसका सामना कर पाता।

"यद्यपि उसने हिंदु नदी को कई बार पार किया है, तथापि उसका उद्देश्य रहा है केवल लूट-मार करना।" तेजसी ने कहा।

"हमें सदा-सदा के लिए उसे समाप्त कर डालना है, जिससे देश को ऐसे आक्रांताओं से मुक्ति मिल जाय।" वीसलदेव ने कहा।

"सबसे उत्तम रणनीति यह होगी कि उसे देश के भीतरी भाग तक पैठ जाने दिया जाय, और फिर उसके वापस लौटने का रास्ता रोक दिया जाय।"

"इस नीति का अवलंबन तो हम सब तभी कर सकेंगे, जब वह अगली बार यहां आये। जो हो, अगर हम अपने को संकट से उबारना चाहते हैं तो हमें अभी से अपनी तैयारी में जुट जाना चाहिए।"

"मैं अपने शस्त्रागार का निरीक्षण करने के लिए आपको आमंत्रित करता हूं।" तेजसी ने सुझाया, "चीनियों ने एक काले चूर्ण का आविष्कार किया है, जो लोहे की लंबी नली-जैसी चीज में भरा रहता है। जब उसमें आग का पलीता लगाया जाता है तो उसमें से धातु के टुकड़े बड़े धमाके के साथ फेंके जाते हैं, जिनसे चोट खाकर शत्रु मौत के घाट उतर जाता है। मैंने अपने यहां एक चीनी को रख छोड़ा है, जो यह चूर्ण बनाता है।"

दूसरे दिन कार्यक्रम के अनुसार, वीसलदेव ने तेजसी के शस्त्रागार का निरीक्षण किया और काले चूर्ण को अग्निसंपर्क से भड़कते देखा। उन्होंने एक बड़ा और लचीला गोफन भी देखा, जिसमें रखकर बड़े-बड़े शिलाखंड काफी दूर तक फेंके जा सकते थे। इन शिलाखंडों की चोट खाकर शत्रु-सेना के हाथी चिंघाड़कर भाग छूटते थे। वह चीनी अपेक्षाकृत एक चौड़ी नली बनाने में भी जुटा था, जिसमें धातु के बड़े-बड़े टुकड़े काले चूर्ण के साथ मिलाकर भरे जा सकते थे और उसमें पलीता लगाने पर धमाके के साथ जोर से निकलकर धातु-खंड कोट-प्राचीरों को तोड़ने में समर्थ हो सकते थे।

रावल को तैयारियों को देखकर वीसलदेव बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने चीनी शस्त्र-निर्माता से यह जानना चाहा था कि क्या इन्हीं प्रयोजनों के लिए वह चीन से किसी दूसरे विशेषज्ञ को भी बुला सकता है?

पिछले दिन आंधी-तूफान और वर्षा का जोर जो हुआ था, वह खत्म

हो गया था। अगला दिन सुहावना था। वीसलदेव तथा उनके सैनिकों ने चित्तौड़ से विदा होने की तैयारी की। दिन के साफ होते ही सैनिकों के आयुध चमचमा उठे, पताकाएं हवा में फरफरा उठीं। उनके चलने से धूल के गुबार उठ चले।

किसी को भी इस प्रकार के वीर पुरुषों के ज्वार का अंग बनने में प्रसन्नता और गर्व की अनुभूति हो सकती थी। सारे सैनिक कंकरीले-पथरीले मार्ग पर चल रहे थे। उनके चारों ओर हरे-भरे वृक्षों और झाड़ियों का सौंदर्य विखरा हुआ था। रास्ते में फूस के छप्परवाले मकानों के छोटे गांव मिलते जाते थे। वीसलदेव सैन्य-दल के मध्य में अपने अश्व पर सवार मौन भाव से चले जा रहे थे।

वे विचारों में निमग्न थे। सोच रहे थे—हम स्वयं अपने स्वामी नहीं हैं। जीतने के लिए हम खेल खेलते हैं, परंतु खेल के हमारे प्रतिपक्षी ईश्वराधीन होते हैं। मैं भले ही यह गर्वोक्ति करूं कि यह राज्य मेरा है, और मैं इसकी रक्षा करूंगा, परंतु यदि ईश्वर मेरे प्रयास में अपनी सहायता न करे तो इस पृथ्वी का एक कण भी मेरे द्वारा रक्षित नहीं हो सकता।

इस वार अपनी यात्रा आरंभ करने के पश्चात् वीसलदेव कहीं नहीं रुके। दोपहर के कुछ घंटों के विश्राम के अलावा उनकी यात्रा वरावर जारी रही। पर्वतीय प्रदेश अर्द्ध-मरुधारा में परिणत हो गया। तूफान के वाद आसमान साफ हो गया था। फिर भी रात में ऊवड़-खावड़ रास्ते पर फैली चांदनी धूमिल छाया-सी जान पड़ती थी। तीसरे दिन, जब वे अजयमेरु के समीप पहुंचे, नगर के वाहर ही हरी-भरी वनस्पतियों की गंध मिलने लगी। झील के जल को स्पर्श करके प्रवाहित हवा शीतल, सुखद लग रही थी।

□ ८ एक अनाम भय

अजयमेरु की स्थापना छठी शताब्दी में अजयपाल चौहान ने की थी। चौहान उन क्षत्रियों में माने जाते हैं, जिनकी उत्पत्ति अग्निकुंड से हुई थी। इसीलिए उनको अग्निवंशी कहा जाता है। कहते हैं, यज्ञोपरांत वशिष्ठ ऋषि ने जिस स्थल पर उदक-तर्पण किया, उस स्थल से एक लंबे कद की आकृति आविर्भूत हुई, जिसका मस्तक उठा हुआ, छाती चौड़ी, मुखाकृति भयंकर थी और जिसने कवच तथा आयुध धारण कर रखे थे। उस आकृति ने एक हाथ में धनुष और दूसरे में उल्का ले रखी थी, जो चतुष्कोण थी। इसी से उसे चुहाण या चौहान नाम दिया गया। जो हो, वीसलदेव इसी राजवंश के एक प्रसिद्ध राजा हुए।

बीसलदेव के कुलदेवता शिव थे और राजपुरोहित को नाथजी कहा जाता था। नाथजी राज्य में बहुत शक्तिशाली व्यक्ति था। कुछ मंत्रियों से सांठ-गांठ करके वह राजा और देश पर अपना प्रभुत्व जमाने की चेष्टा किया करता था। उसका धार्मिक अधिकार-क्षेत्र बहुत विस्तृत था। इसका दुरुपयोग करके वह उत्कोच और अन्य प्रकार के प्रलोभन देकर लोगों को अपने वश में कर लेता था। अपने प्रति निष्ठावान लोगों में से जो बहुत धनाढ्य होते, उनसे जब चाहे दान में धन वसूल कर लिया करता और मंदिर से प्राप्त होनेवाले राजस्व के भी अधिकांश को वह अपने निजी उपयोग में ले आता था।

ऐसे अवसर भी आते थे, जब राज्य के उच्च पदाधिकारी, जिनमें कभी-कभी राजा भी सम्मिलित होते थे, उसकी सेवा में खड़े दिखायी देते थे। गर्वीले राजपूत यह अनुभव करते थे कि उन्हें अहंकारी राजपुरोहित की जी-हुजूरी करनी पड़ती है, और यह राजपुरोहित कामिनियों से घिरा रहता है, एवं धार्मिक कर्मकांडों के ढकोसलों की आड़ में अपनी अपरिमित इच्छाओं की पूर्ति करता है तथा अपने अहं की तुष्टि भी।

बीसलदेव राजप्रासाद के अपने गवाक्ष में बैठे दूधिया चांदनी से नहाये

हुए प्रासाद के प्रांगण को देख रहे थे। वे विचारों में खोये हुए थे। मेवाड़ ने युद्ध की जो तैयारी कर रखी थी, उसे देखने के बाद उन्हें अपनी तैयारी की अपूर्णता साल रही थी। वे इस मामले में मेवाड़ से पीछे नहीं रहना चाहते थे।

वे सोच रहे थे कि यदि संकटों का अनुमान पहले से ही कर लिया जाय तो उन्हें शीघ्रता से दूर किया जा सकता है। जब संकट सिर पर आ पड़े तो उसके प्रतिकार के लिए उपाय किये जाने चाहिए। युद्ध से बचने के लिए राजाओं को युद्ध की परिस्थितियों को अबाध रूप से बढ़ने नहीं देना चाहिए, क्योंकि इस तरह से युद्ध को कभी रोका नहीं जा सकता, न उससे बचा ही जा सकता है। अनिवार्य युद्ध को स्थगित करते रहने से अपना नहीं, शत्रु का ही लाभ होता है।

इसलिए बीसलदेव ने सेना को प्रशिक्षित करने का दायित्व स्वयं अपने ऊपर ले रखा था।

उन्होंने अपनी अश्वारोही सेना को झांसा देने की रणनीति सिखायी, जिसमें छोटी-छोटी टुकड़ियों में बँटकर शत्रु को परेशान किया जाता है। यह रणनीति पिछले युद्ध में बहुत कारगर सिद्ध हुई थी। उन्होंने अपने अश्वारोहियों को यह भी सिखाया कि मैदानी इलाकों में शत्रु पर किस तरह एक साथ आक्रमण करना चाहिए, और फिर दो-दो, तीन-तीन की टुकड़ियों में पहाड़ी घाटियों, नदियों के किनारों और रेत के टीलों की आड़ में बिखर जाना चाहिए। छापामार युद्ध की इन पद्धतियों में बीसलदेव ने अपने सैनिकों को निपुण कर दिया था।

इस प्रकार की रणनीति की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि शत्रु पर कितने वेग से आक्रमण किया जाता है और कितनी देर तक बार-बार उसको सताया जा सकता है, इसलिए उन्होंने जहां से भी अच्छी नस्ल के घोड़े मिल सकते थे, एकत्र किये। कुछ घोड़े अरबी नस्ल के थे, जो रेगिस्तान की गरमी और तपन को झेल सकते थे।

जीवन में ऐसे भी क्षण आते हैं, जब हृदय किसी भय से बोझिल होता है, परंतु आदमी उस भय का कोई कारण नहीं देख पाता। चांद चमकता है, झील के जल में चंचल लहरियां उठती हैं, हरी-भरी पत्तियां हवा में थिरकती हैं, हर चीज ठीक वैसी ही होती है, आदमी जैसा उन्हें देखना चाहता है, फिर भी वह महसूस करता है कि कहीं कुछ गड़बड़ है। इस क्षण बीसलदेव को भी एक ऐसा ही अनाम भय सता रहा था।

समझदार आदमी वही होता है, जो महापुरुषों के पदचिह्नों पर चलता है और उन लोगों का अनुकरण करता है, जो अपने क्षेत्र में यशस्वी हुए हैं। उसकी अपनी शक्ति भले ही उन महान् व्यक्तियों की शक्ति और सामर्थ्य के जोड़-तोड़ की न हो, परंतु उसमें एक प्रकार की गरिमा और महानता का आभास तो मिलता ही है। बीसलदेव जानते थे कि व्यक्ति को अपनी कला में कुशल धनुर्धरों की भांति व्यवहार करना चाहिए, जो यह देखकर कि लक्ष्य उनसे बहुत दूर है, अपने तीर की प्रहार-सीमा को जानते-समझते हुए, लक्ष्य वस्तु से काफी ऊंचाई पर निशाना साधकर सरलता से लक्ष्य-वेध कर लेते हैं।

विचारों के ऊहापोह में पड़े बीसलदेव अपने कक्ष में जाने के लिए उठे। उन्हें कुछ ऐसा आभास हुआ कि कोई आदमी भीतर है। चूंकि चंद्रमा की किरणें सीधे उनके चेहरे पर पड़ रही थीं और इससे उनकी आंखें चौंधिया गई थीं, वे कक्ष के भीतर की चीज को मुश्किल से ही देख पा रहे थे।

बीसलदेव ने जोर से चिल्लाकर कहा, "कौन है भीतर ?"

उनसे कुछ ही दूरी पर कोई व्यक्ति सांस ले रहा था। वह डरा हुआ लगता था, क्योंकि उसकी सांसें हांफती हुई निकल रही थीं।

बीसलदेव ने अपनी कटार निकाल ली और उसे हाथ में लेकर कक्ष के एक कोने की ओर देखते हुए डपटकर बोले, "बाहर निकल आओ, वरना मैं कटार फेंककर तुम्हें मार डालूंगा।"

अचानक एक तलवार उनके पास, कमरे के कड़े फर्श पर झन-से आकर गिरी। सहज प्रेरणावश वे अपनी कटार उस अलक्ष्य व्यक्ति की ओर फेंकने

के वाद थोड़ा-सा झुक गये थे, इसलिए तलवार के वार को वचा गए। तभी सहसा एक आदमी उनके कमरे में से निकल कर भागा। पूरे जोर से चिल्लाते हुए वीसलदेव उसके पीछे-पीछे दौड़े। उनके रक्षकों ने उनकी आवाज सुनी और फिर चारों ओर से 'पकड़ो-पकड़ो', 'मारो-मारो' की आवाज़ें आने लगीं।

ऐसा लगा कि वह आदमी महल के रास्तों से परिचित था, क्योंकि महल के असंख्य कक्षों की परिक्रमा करते हुए उसने अपने छिपने के लिए आखिर कोई जगह ढूंढ़ ली थी। वीसलदेव उसके पीछे-पीछे थे। उन्होंने उसे पहचानने की भरसक चेष्टा की, परंतु अपने परिचितों में से कोई भी व्यक्ति उस-जैसा नहीं जान पड़ा। उस व्यक्ति की सांस फूल गई थी, क्योंकि वह आतंकित था और दूर तक भागने के कारण वहुत थक गया था।

वीसलदेव और वह व्यक्ति—दोनों अंधेरे में थे, फिर भी वीसलदेव ने देखा कि उसके अंगरखे से कोई चीज टपक रही है, शायद खून था। वीसलदेव की कटार ने उस आदमी को घायल कर दिया था।

वीसलदेव ने अपने रक्षकों का शोर सुना। दो-तीन रक्षक उस आदमी के पास तक पहुंच भी गये थे, परंतु वीसलदेव ने आव देखा न ताव और उस आदमी पर झपट पड़े। दोनों आपस में गुंथ गये। गद्दों और तकियों के ढेर पर वे फिसल गए। वीसलदेव ने उसकी गरम सांस महसूस की। एक-दूसरे को पटकते-उठाते वे कमरे के दरवाजे तक आ गए। जगह शोरगुल से गूंजने लगी। पहरेदार दोनों में से किसी को न छूते हुए चिल्ला रहे थे। अंधेरा इतना था कि वे वीसलदेव और उस आदमी में से किसी को भी ठीक से पहचान नहीं पा रहे थे। कहीं भूल से वे वीसलदेव को ही चोट न पहुंचा दें, इसलिए वार करने में हिचक रहे थे। महल के आंगन में भी पहरेदार आ जमा हुए थे और बहुत-से कमरे के दरवाजे में से भीतर घुस आये थे।

तत्क्षण वह आदमी किसी तरह वीसलदेव की पकड़ से अपने को छुड़ा-

कर गवाक्ष की ओर दौड़ा और वहां से प्रासाद के प्रांगण में ऐसे कूद गया जैसे चील झपट्टा मारकर कूदी हो। उसके एकाएक कूद पड़ने से नीचे खड़े पहरेदार इतने चकित रह गये कि जबतक उसे पकड़ने को लपकें, वह उनकी पहुंच से बाहर हो गया।

बीसलदेव उठकर खड़े हुए और गोखे की ओर दौड़े, तबतक तो वह आदमी आंगन को पारकर किले के परकोटे तक पहुंच गया था। पहरेदार उसके पीछे-पीछे दौड़ रहे थे। सब एक दुःस्वप्न की भांति लग रहा था। बीसलदेव ने पहरेदारों से चिल्लाकर कहा कि अगर यह परकोट को भी कूद जाता है तो इसे चला जाने दो, पीछा मत करो।

जो लोग बीसलदेव को घेरकर खड़े थे, उन्हें उनके वस्त्रों पर रक्त दिखायी दिया और वे आतंकित हो गये। उनमें से एक ने चिल्लाकर रक्षकों से वैद्य को बुला लाने के लिए कहा। परंतु बीसलदेव ने यह कहकर उनकी आशंका दूर कर दी कि उनके वस्त्रों पर लगा रक्त उस आदमी के घाव से निकला है।

इस बीच वह आदमी किले के परकोटे के ऊपर चढ़ गया था, लेकिन अब उसके पैर लड़खड़ाने लगे थे। लोगों ने आकाश की छाया में उसकी आकृति को उभरते देखा और फिर वह भहराकर गिर पड़ा। एक रक्षक ने उस पर वार करने के लिए अपनी तलवार उठायी तो बीसलदेव ने चिल्लाकर उसे रुक जाने का आदेश दिया और स्वयं दौड़ पड़े, ताकि मरने से पहले उसके पास पहुंच सकें।

पास पहुंचकर उन्होंने देखा कि वह लंबे कद का व्यक्ति था, जो थक चुका था और कठिनाई से सांस ले रहा था। उनकी ओर वह अपलक ताक रहा था। उसके चारों ओर चांदनी छिटक रही थी। जैसे ही बीसलदेव उसके ऊपर झुके, उसने एक लंबी हिचकी ली और दम तोड़ दिया। अब यह जानने का कोई उपाय नहीं रहा कि वह आदमी कौन था और उसे किसने भेजा था? बीसलदेव बेबसी में हाथ मलकर रह गये।

इस घटना से तिलमिलाकर बीसलदेव अपने कक्ष में लौट आये। शीघ्र

ही दीपक जला दिये गए। प्रकाश होने पर पता चला कि कुछ रेशमी पर्दे फट गये हैं। जहां पर आगंतुक का रक्त गिरा था, वहां एक चमकीला धव्वा पड़ गया था। वीसलदेव ने प्रत्येक व्यक्ति को आदेश दिया कि इस घटना की चर्चा किसी से न करें। उस रात वे सो न सके। उन्हें आश्चर्य इस वात पर था कि अजयमेरु में भी देशद्रोही उपस्थित हैं। वीसलदेव की सेवा में जो भी व्यक्ति कुछ दिनों रह जाता, उनके प्रति उसके मन में इतना स्नेह हो जाता था, जिसे शब्दों द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता।

कहीं यह नाथजी का काम तो नहीं ?—एक विचार उनके मन में कौंधा। यद्यपि ऊपरी तौर से तो नाथजी महात्मा वना हुआ था, तथापि था वह चंट, चालाक और षड्यंत्री।

यह सच है कि वीसलदेव ने कुछ नये सुधार किये थे। उन्हें मालूम था कि परंपरागत कर्मकांडों और रीति-रिवाजों में, जिनका लोग युगों से पालन करते आ रहे हों, कोई भी सुधार या परिवर्तन करना वड़ा कठिन कार्य है। ऐसे सुधारों का प्रवंध करने से बढ़कर मुश्किल कोई काम नहीं और उनकी सफलता से बढ़कर संदेहास्पद कोई और वस्तु नहीं, और न उन्हें लागू करने से ज्यादा खतरनाक कोई चीज है। नये सुधारों का प्रणेता उन सभी लोगों को अपना शत्रु बना लेता है, जो पुरानी व्यवस्था के अंतर्गत सुविधाएं भोग रहे होते हैं। नाथजी उन्हीं में से एक था। परंतु उसका विरोध क्या राज्य की आंतरिक नीतियों के कारण था या उसका संवंध किसी बाहरी ताकत से था ? जवतक इस वात का पूरा यकीन नहीं हो जाता, तवतक अत्यंत सावधान रहना जरूरी था।

इस वात का पता लगाने के उपायों के वारे में उन्होंने खूब सोचा-विचारा, परंतु किसी निष्कर्ष पर न पहुंच सके। अंततः उन्होंने निर्णय किया कि घटना-क्रम पर दृष्टि रखी जाय और जव उपयुक्त समय आये, तव कार्रवाई की जाये।

लेकिन और लोगों की राय इससे भिन्न थी। वीसलदेव युवक थे, उनमें प्रचुर मात्रा में युवकोचित उत्साह तथा साहस था, परंतु ऐसे मामलों

में केवल इतने से काम नहीं चलता।

वीसलदेव के चेहरे पर तनाव था, वे उत्तेजित थे, उनकी आंखें जल रही थीं। अगले दिन सुबह वे फिर उसी काम में जुट गए, जिसमें इतने दिनों से लगे हुए थे। वे कितने मानसिक तनाव को झेल रहे हैं, इस बात से उनके कुछ अत्यंत घनिष्ठ व्यक्ति ही परिचित थे। विश्वासघात और जाल-फरेब के बोझिल वातावरण को, जिसमें उन दिनों वे अपने को पा रहे थे, भूलने में उन्हें कई दिन लग गये। परंतु समय अपने बहाव में सबकुछ बहा ले जाता है और अच्छाई के साथ बुराई और बुराई के साथ अच्छाई भी ला सकता है। जब-तब परकोटे पर दम तोड़नेवाले उस आदमी की याद उन्हें परेशान कर देती थी। परंतु वे अपने को सशक्त, चुस्त और आश्वस्त अनुभव कर रहे थे। वे अनागत की प्रतीक्षा कर रहे थे और उसके एक-एक पृष्ठ तथा एक-एक शब्द को गौर से पढ़ जाना चाहते थे।

वे अपने कार्य में इतने व्यस्त हो गये कि राजमती तथा रुपहली झील के तट पर उसके साथ बिताये क्षणों की भी याद उन्हें न रही। तभी दूत एक दिन यह दुःसंवाद लेकर आया कि राजा भोज का स्वर्गवास हो गया। इस संवाद को सुनते ही वन में व्यतीत किये गए क्षणों की स्मृति सहसा उन्हें हो आई। अब उनके लिए क्या करना उचित होगा? राजमती के पिता का देहांत हो गया था, इसलिए क्या यह उचित होगा कि उसके भाई के पास विवाह का प्रस्ताव लेकर किसी पुरोहित को भेजा जाये? और राजमती स्वयं उनके बारे में क्या सोचेगी? वीसलदेव अपने से इस प्रश्न का उत्तर चाहते थे, और वे उत्तर की प्रतीक्षा करने लगे।

□ ६ अधरामृत की अनुभूति

धारानगरी में पहुंचकर राजमती ने अपने मन में एक ओर तो उत्तेजना अनुभव की और दूसरी ओर कुछ-कुछ आशंका भी। धारा उसे कभी इतनी सुंदर नहीं जान पड़ी थी, जितनी अब लग रही थी। हरे-भरे चरागाहों के बीच होकर बहनेवाले क्षणिक जल-स्रोत प्रवाहित हो उठे थे। हरी-हरी बरसाती घास और वनस्पतियों के कारण वे बड़े सुहावने प्रतीत हो रहे थे। संसार उसे उल्लास और आनंद का सागर जान पड़ रहा था। दुनिया कभी इतनी सुंदर और सुखमय हो सकती है, उसने स्वप्न में भी कल्पना नहीं की थी।

परंतु समस्या यह थी कि वह अपने पिता के सामने सारी बातें कैसे कह पाती ? उसे लगा, उसमें अनुभव की कमी है। जंगल में जो कुछ घटित हुआ, उसके विषय में अपने पिता को बताने का साहस वह किसी भी तरह बटोर नहीं पा रही थी।

उसके कानों के सामने काले केश की कुछ लटें लटक रही थीं, जो उसके सौंदर्य को और भी मोहक बना रही थीं। हौले-से मुस्कराकर और अपने कंधे उचकाकर उसने स्वयं से कहा कि मुझे उतावली नहीं करनी चाहिए। बीसलदेव का पुरोहित यदि विवाह-प्रस्ताव लेकर इस बीच न आया तो वह अपने पिता से अवसर निकालकर बात करेगी।

राजमती को बीसलदेव के अधरों की ऊष्णता की अनुभूति अभी भी अपने अधरों पर हो रही थी। अंगुलियों के पोरों से वह अपने होंठों को छूने लगती, मानो वहां किसी चीज ने अपनी छाप छोड़ दी हो।

उसने अपने पिता की मुखाकृति की कल्पना करने की चेष्टा की। वह उनके स्वर से व्यक्त होनेवाले हर्ष की कल्पना बहुत स्पष्टता से कर रही थी, क्योंकि उसने सोचा कि जब पिता को इस बात का पता चलेगा तो वे अवश्य प्रसन्न होंगे। अपनी कन्या के लिए बीसलदेव जैसा योग्य वर उन्हें सरलता से कहां मिल सकता था ? लेकिन उन्होंने जो कुछ हुआ, उसे पसंद

न किया तो क्या होगा? वह कल्पना करने लगी कि वे क्रोधित हो उठे हैं और उससे पूछ रहे हैं कि तुमने यह नासमझी क्यों की और मेरा अपमान क्यों करवाया, और वह अटकते-अटकते उनके प्रश्नों का उत्तर देने की कोशिश कर रही है।...

"मैं क्या करूं? हाय, क्या करूं?"—हाथ मसलकर वह बोल उठी।

राजमती ने यह प्रश्न मानो अंधकार से पूछा था। उसके अनंतर वह अपने पलंग से उठकर खिड़की के पास गई और उस पर लगे पर्दे को उसने एक ओर खींच दिया। खुली खिड़की से वह बाहर देखने लगी। चंद्रमा की रुपहली, रहस्यपूर्ण किरणें उसके कक्ष के नीचे स्थित उद्यान को उजागर किये हुए थीं और ऊपर आकाश में तारे हीरकनियों की भांति जगमगा रहे थे।

कहीं कोई गति नहीं हो रही थी। अपने सामने का सारा दृश्य वह स्पष्ट देख सकती थी—उद्यान के वृक्षों की काली छायाकृति और किले की बुर्जियों के कंगूरे, सब साफ दिखाई दे रहे थे। उसने अपने आरक्त कपोलों पर रात के शीतल मंद मलयानिल का सुखद स्पर्श अनुभव किया। उसने एक बार फिर अपने-आप से पूछा, "मैं क्या करूं?"

राजमती ने यह प्रश्न क्षुब्ध होकर पूछा और फिर खिड़की से हटकर वह अपनी शैया पर आ गिरी और तकिये में उसने अपना मुंह छिपा लिया।

उसे जब गहरी नींद आई तब लगभग उषाकाल हो चुका था। जागृतावस्था में वह जितनी उद्विग्न थी, सुप्तावस्था में उतनी ही निश्चिंत। वह यह सुखद स्वप्न देख रही थी कि वह किसी के साथ है, जिसे वह प्यार करती है, और वह भी उसे प्यार करता है। वह उसका केवल चेहरा ही देख सकी थी, लेकिन इतना जानती थी कि वह उसे प्यार करता है। उसने स्वयं को उसके प्यार की ऊष्मा से रक्षित पाया; क्योंकि जब वह काफी दिन चढ़े सोकर उठी तो वह मुस्करा रही थी और उसकी आंखों में कोमल मधुर भाव तिर रहे थे।

समय गुजरता जा रहा था। शरद-ऋतु भी काफी बीत चली थी, परंतु बीसलदेव के यहां से कोई संदेश नहीं आया। राजमती की मनोदशा गिरती जा रही थी। उसे न अपने पहनने-ओढ़ने के वस्त्रों का ध्यान था, न साज-सिंगार की ओर कोई रुचि। सविता राजकुमारी की यह दशा देखकर बहुत चिंतित थी।

"तुम नहीं जानतीं सविता, किसी पुरुष को प्यार करना कैसा होता है ? कैसी पीड़ा पाल लेती है नारी अपने प्रियतम के लिए ? सारी रात आंखों में काट देना, उसका नाम बार-बार बुदबुदाना क्या होता है, तुम कैसे जानोगी ? नारी अपने प्रियतम से आश्वासन भर चाहती है, फिर तो उसके बाहुपाश में बंधने के लिए वह स्वर्ग तक जाने को प्रस्तुत हो जाती है।"

राजमती का एक-एक क्षण एक-एक घंटे के समान बीत रहा था। वह अपने प्रासाद में एक ओर से दूसरी ओर टहलती रहती। कभी नीचे जाती, कभी ऊपर आती। वह बराबर उद्विग्न रहने लगी थी और एक अंतहीन प्रतीक्षा उसे विह्वल किये रहती।

उसकी रातें जागते बीतती थीं। कितना चाहती थी कि कोई तो उसके प्रिय का संदेश सुनाये; कोई तो यह बताये कि बीसलदेव ने उसे भुला तो नहीं दिया है, और न जीवन-भर के लिए उसे अपने से दूर ही कर दिया है।

राजमती अपने कक्ष में बैठी सामने की ओर टकटकी बांधे देख रही थी। क्या सचमुच वह कुछ देख रही थी या उसकी आंखें शून्य में अटकी हुई थीं ? न उसे रंग-विरंगे बेल-बूटेदार पर्दे दिखाई दे रहे थे, न दीवार पर टंगी तस्वीरें और न खिड़कियों की राह कक्ष के भीतर आती धूप। उसकी आंखों में तो बीसलदेव का उस समय का वह मुखड़ा समाया हुआ था, जब उन्होंने उससे कहा था, "मैं तुम्हें प्यार करता हूं।"...

फिर वह अपने पिता के बारे में सोचने लगी। उसे परिस्थिति का सामना करने के लिए तैयार रहना होगा। और कोई रास्ता है भी तो

नहीं । तभी चंद्रा हांफती हुई वहां आई और बोली, "राजकुमारीजी, जल्दी चलिए, आपके पिताजी ।"...

वह दौड़ती हुई अपने पिता के कक्ष में पहुंची, परंतु वहां सब समाप्त हो चुका था। राजमती इतने दिनों से उनसे जो कुछ कहने का मनसूबा करती रही थी, वह सब अनकहा ही रह गया।

उसके पिताजी की मृत्यु को एक सप्ताह हो गया। प्रासाद के जिस भाग में वह रहती थी, वहां एक प्रकार का सन्नाटा छाया था। प्रासाद के उस भाग के बाहर का आंगन, जिसके फर्श पर चौकोर पत्थर जड़े थे, सूना पड़ा था। वहां कोई चहल-पहल न थी। उद्यान भी संध्या की भांति सुनसान था।

राजमती के दुःख का अंत न था। मन बहुत व्यग्र था। वह अपने भाई से कैसे क्या कहेगी ? मान लो, वीसलदेव को उसे फिर कभी देखने का अवसर ही न मिले ? अब वह समझ गई कि यही वह संत्रास था, जिससे वह इतने दिनों पीड़ित रही। क्या सचमुच उन्होंने उसे त्याग दिया है ?

दिन-भर वह चांदनी में नहायी उस झील के सौंदर्य का ध्यान करती रही थी। उसके चारों ओर की हरियाली भी उसके मन में ज्यों-की-त्यों उभर-उभर आती थी। वह अपने मानव-चक्षुओं से अब भी देख रही थी कि वीसलदेव ने वार-पर-वार करके सोलंकी को किस तरह परास्त किया और कितनी वीरता से वे लड़े थे, एक बार नहीं, अनेक बार उसने आंसुओं को उमड़ने से रोकने के लिए अपने होंठ काट लिये थे। जिस चेहरे को वह प्यार करने लगी थी, उसे पुनः प्रत्यक्ष देखने की पीड़ा उसके ऊपर इतने जोर से हावी हो गई कि वह उसे नकार न सकी।

इससे पहले वह कभी विश्वास नहीं कर सकती थी कि कोई इतनी पीड़ा भी झेल सकता है। ओह, किसी के लिए तड़पना कितना पीड़ाजनक होता है ! साथ रहनेवाली परिचारिकाओं से अपनी भावनाओं को छिपाये रखना अब उसके लिए कठिन हो गया था। यह आशंका निरंतर बनी

रहती थी कि कहीं भाई को उसकी मुखमुद्रा और चाल-ढाल से उसके हृदयगत रहस्य का कुछ आभास तो नहीं हो गया है। जैसे-जैसे दिन बीतते जा रहे थे, उसके हृदय में यह वेदनायुक्त भय समाता जा रहा था कि अब उसे वीसलदेव का संदेश कभी नहीं मिलेगा।

"आप इतना घबरा क्यों रही हैं ? वे निश्चय ही आयेंगे।" सविता उसे दिलासा देती।

"मुझे डर है कि..." इसके आगे वह कुछ कह न पाती। उसकी वाणी थरथरा जाती।

"आपने मन को तो अच्छी तरह टटोलकर देख लिया है न कि आप केवल उन्हें ही चाहती हैं, किसी और को नहीं ?" एक दिन सविता ने उससे पूछा।

राजमती ने आश्चर्य से सविता की ओर देखा और बोली, "निस्संदेह, सविता, मैंने जितने स्पष्ट शब्दों में तुमसे यह बात कही, उतनी स्पष्टता से अबतक किसी से नहीं कही है। तुम केवल प्यार की बात कहती हो, जबकि यह कोरा प्यार नहीं, मैं तो देवता के साक्ष्य में उनसे विवाह भी कर चुकी हूं। उनका सामीप्य पाकर मैं अपने आपे में नहीं रह पाती थी। मेरी सांस फूल उठती थी और अकस्मात् एक अद्‌भुत स्पंदन मेरी नस-नस में दौड़ जाता था।"

"मुझे आशा है, राजकुमारीजी, आप सदा सुखी रहेंगी।"

"कभी-कभी हमें इतना कुछ झेलना पड़ जाता है, जितना झेलने की सामर्थ्य हममें नहीं होती।"

सविता ने सिर हिलाया, "नहीं, ऐसा कभी नहीं होता।" उसने दृढ़ता से कहा, "हर आदमी में इतनी आंतरिक शक्ति होती है कि वह अपने ऊपर आनेवाले किसी भी तनाव को झेलने में समर्थ हो जाता है। आप मेरी बात को गांठ बांध रखिए। आस्था, आशा और प्रेम—ये तीन चीजें हैं, जिन्हें सदा आपको अपने मन में बनाये रखना चाहिए।"

राजमती सोचने लगी, इस जीवन में शांति पाने की आशा उसे छोड़

देनी होगी। जबतक जीवित रहेगी, उसे शांति नहीं मिलेगी और बीसलदेव के साथ रहने का सौभाग्य तो अब दुराशा ही है।

वह चलकर खिड़की तक गई। कक्ष के बाहर सूरज चमक रहा था और शरद-ऋतु की शीतल-मंद हवा वृक्षों के पीताभ-हरित पत्रों को हल्के-हल्के हिलाती हुई प्रवाहित हो रही थी। वह वहां खड़ी मंदिर के ऊंचे कलश को देख सकती थी। मंदिर के कलश के इर्द-गिर्द बहुत से मकानों की मुंडेरें दिखायी दे रही थीं। उसके ऊपर, प्रासाद के छज्जों पर सैकड़ों धूसर, सफेद रंग के कबूतर या तो बैठे गुटरगूं कर रहे थे या अपने पंख फड़फड़ा रहे थे। उनको मंत्रमुग्ध दृष्टि से देखती हुई वह खिड़की के पास काफी देर तक खड़ी रही। थोड़ी देर के लिए वह अपने हृदय की पीड़ा भूल गई। उस क्षण नीलाकाश में उड़ान भरते पक्षियों के साथ अपनी चेतना की एकात्मता का उसे बोध हो रहा था।

वह अपने बगीचे में चली गई। महल के पार्श्व में गुलाब के कुछ पौधे थे, जिनमें फूल आने शुरू हो गये थे। फूलों पर मधुमक्खियां भिनभिना रही थीं। शरद ऋतु के पूरे निखार के पहले ही मधुमक्खियां अपनी आवश्यकता-भर मधु-संग्रह कर लेना चाहती थीं। मधुमक्खियों की भिनभिनाहट के अलावा वहां की हर चीज मौन साधे हुए थी।

चारों ओर सन्नाटा था। उसे लगा कि उसके हृदय में जितना सूनापन है, उसी का प्रतिबिंब प्रकृति में भी दिखायी दे रहा है। उसने अपने को अकेला महसूस किया—चारों ओर निराशा का रेगिस्तान और क्षितिज तक फैला हुआ ऊसर।

तीसरा पहर ढल चुका था और मौसम काफी ठंडा हो गया था। उद्यान के बड़े हौज में कमलिनी उगी हुई थी। उसका जल सूरज की किरणों में चमक रहा था। नील कमलिनी की पंखुड़ियां बंद हो गई थीं। कमलिनी पुष्पों को देखने के लिए हौज की मंडरी पर बैठना उसे हमेशा अच्छा लगता था। कमलिनी के तैरते पत्तों के नीचे इधर-से-उधर आती-जाती सुनहली मछलियों को देखना भी उसे पसंद था।

उसे स्मरण था कि इसी जलाशय के समीपवर्ती खुले मैदान में उसके पिता ने चालुक्यों को पराजित करने के बाद विजय-समारोह आयोजित किया था। देश के कोने-कोने से नर्तक और संगीतज्ञ उपस्थित हुए थे और एक विशाल शामियाने के नीचे रात-भर नृत्य-गीत का कार्यक्रम चलता रहा था। उस समय वह छोटी-सी लड़की थी, फिर भी संगीत ने उसको रोमांचित कर दिया था—कोई-कोई संगीत उसके हृदय में सदैव विचित्र भावों को उद्‌बुद्ध कर दिया करता था। उस दिन अपने कक्ष में वापस आकर वह नाचने लगी थी।

उसे अपनी मां की भी स्मृति थी। लोग कहते थे, उसकी मुखाकृति उसकी मां पर गई है। वह हमेशा अपनी मां की प्रशंसक रही थी। उसकी मां शायद उससे कुछ ज्यादा लंबी थी और उसकी चाल-ढाल में भी कुछ अधिक गरिमा थी।

कदाचित् मां के सौंदर्य का रहस्य उनकी गंभीरता और धीरता में था। वे किसी भी बात से उद्विग्न नहीं होती थीं। जीवन-सागर में पाल ताने हुए पोत की तरह वे सहज गति से संतरण करती थीं। दुःख-सुख को उन्होंने जीवन में समभाव से ग्रहण किया था—न दुःख पाने पर बिसूरती थीं और न सुख पाने पर बौराती थीं। शिकायत-शिकवा का शब्द उनके होठों पर कभी नहीं आया। काश, आज वे जीवित होतीं!

वयस्क होने पर राजमती यह समझने लगी थी कि उसका स्वभाव भी अपनी मां के सदृश ही होना चाहिए था, किंतु कुछ बातों में वह अपनी मां से भिन्न थी। उसका कद-काठी, जो उसके परिवार की विशिष्टता थी, उसका कुलीन रंग-रूप और उसकी चमकीली आंखें—ये सारी चीजें जरूर उसकी मां के अनुरूप थीं। इन्हीं विशेषताओं के कारण तो लोग उसे बालपन से ही 'धारानगरी की पद्मिनी' कहने लगे थे।

जलाशय की पत्थर की मुंडेर पर बैठकर उसने जल में झांका तो उसमें मुश्किल से कोई मछली नजर आई। आज पहली बार उसे यह दिखाई दिया कि जलाशय के पेंदे में सेंवार और काई उग रही है। ऐसा तो, जब

से उसने होश संभाला, कभी नहीं देखा गया था। इसका मतलब यह हुआ कि सारा वगीचा उपेक्षित, वीरान हो रहा है। इसमें आश्चर्य की कोई वात न थी, क्योंकि उसके भाई और भाभी, जो अव राजा और रानी वन गये थे, इस वगीचे में आमोद-प्रमोद के लिए कभी नहीं आते थे। परंतु जव उसके पिता राजा भोज जीवित थे, तव वे इसमें अवश्य घूमने-फिरने आया करते थे और वहां की हर चीज में व्यक्तिगत रुचि लेते थे। अभी कुल दो ही महीने तो हुए उनके स्वर्गवास को, परंतु इस अल्प अवधि में ही उद्यान न केवल श्रीहीन हुआ, सूखने भी लग गया था।

राजा भोज को प्रातःकाल जल्दी उठने की आदत थी। रात को चाहे वे कितनी ही देर से क्यों न सोयें, व्राह्म-मुहूर्त में शैया त्याग देने का उनका नियम था। अपने वहुत-से सामंतों एवं सभासदों की अपेक्षा उनमें स्फूर्ति भी अधिक थी। प्रातःकाल टहलते समय जव वे अकेले होते तो सायंकाल के सैर-सपाटेवाली धीमी चाल से भिन्न गति से चला करते थे। सायंकाल अपने अंतःपुर की महिलाओं तथा अन्य कुटुंवियों के साथ टहलते हुए वे वातचीत करते चलते थे। यदा-कदा चलते-चलते रुक जाते और अपने साथ चलनेवालों में किसी की प्रशंसा करने लगते, या किसी के वाग्विदग्धतापूर्ण कथन का उत्तर उतनी ही प्रत्युत्पन्नमति से देते थे। उद्यान में वे प्रतिदिन अवश्य आते और फूलों का निरीक्षण करना न भूलते थे।

राजमती इन वीती वातों को सोचना नहीं चाहती थी, ऐसी वातों को परिहार्य तथा अमहत्वपूर्ण मानकर इनसे वचने की चेष्टा भी करती थी, परंतु कभी-कभी ऐसा करना उसके लिए अत्यंत दुष्कर हो जाता था। स्मृतियों की वाढ़ आकर उसके मन को समो लेती थी। उसके चारों ओर की हर चीज उसे अपने यशस्वी पिता और महान राजा भोज की याद दिलाये विना नहीं रहती थी।

सविता राजमती को ढूंढ़ती हुई उद्यान में आ पहुंची। वह लगभग दौड़ती हुई आई थी। उसने कहा, "आपके भाई राजा उदयादित्य और महारानी आपको अपने निजी कक्ष में स्मरण कर रहे हैं।"

राजमती का हृदय तेजी से धड़कने लगा। वह समझ गई कि इस बुलाहट का संबंध उसके भविष्य से है। वे मुझसे पूछेंगे तो मैं क्या कहूंगी—वह कोई निर्णय नहीं कर पाई।

अपने भाई के निजी कक्ष में प्रविष्ट हुई तो वह अत्यंत निराश मनःस्थिति में थी। कक्ष कुछ बड़ा न था। उसकी छत से फानूस लटक रहे थे, फर्श नीलम पत्थर का बना था, जिसमें बीच-बीच में सोना जड़ा था और सोने के कारण वह चमक रहा था। उदयादित्य उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। उसके हाथ में एक कुंडलाकृति कागज था—शायद किसी राजा के द्वारा भेजा गया संदेश-पत्र।

वह इतने अविश्वसनीय रूप से सुंदर दिखायी दी कि उसका भाई पत्र को हाथ में लिये-लिये एकटक उसकी ओर देखता ही रह गया, मानो उसने पहले उसे कभी न देखा हो।

"यह चौलुक्य राजा कर्ण का पत्र है। प्रश्न बहुत गंभीर है। उसने तुमसे पाणिग्रहण का प्रस्ताव किया है, अन्यथा आक्रमण करने की धमकी दी है।"

"मैं उससे विवाह नहीं कर सकती, नहीं कर सकती।"

उसकी काली-कजरारी आंखों से आंसू की बूंदें गुलाबी गोरे गालों पर बहती हुई टपकने लगीं। इतने दिनों से जिस पीड़ा को उसने किसी तरह अपने हृदय में दबा रखा था, उसका बांध सहसा टूट गया। आखिर वह रहस्य को कबतक गोपन रखती ?

संध्याकाल की सूर्य-किरणें खुली खिड़की से कक्ष में आ रही थीं। वे राजमती के केश की सुंदर लटों को और भी चमकीला बना रही थीं और उसकी लंबी-काली बरौनियों में गुंथे आंसुओं पर पड़कर लघु-इन्द्रधनुष का सौंदर्य उत्पन्न कर रही थीं।

आंसुओं के तूफान के कारण राजमती की वाणी अवरुद्ध होती हुई मौन में परिणत हो गई। आंसुओं को पोंछने के लिए उसने अपना आंचल टटोला, जो उसके सुगठित स्कंध को आवृत करता हुआ नीचे की ओर लहरा रहा था।

उदयादित्य ने एक क्षण के लिए अपनी बहन की ओर घूरकर देखा। उसे उसके साहस पर जैसे अविश्वास हो रहा हो।

"तुम इतनी परेशान क्यों हो रही हो ? यह तो तुम जानती ही हो कि कर्ण चौलुक्य-जैसा शक्तिशाली व्यक्ति तुम्हें दूसरा नहीं मिलेगा।"

"ठीक तो कह रहे हैं। पता नहीं, वह जो कह रही हैं, उसे स्वयं समझती भी हैं या नहीं।" रानी ने पति की हां-में-हां मिलायी।

"ईश्वर के लिए तुम क्यों नहीं समझ रही हो कि तुम्हारी इस अस्वीकृति का क्या परिणाम निकलेगा ?" उदयादित्य ने कहा, "इसका परिणाम यह होगा कि या तो मैं मार डाला जाऊंगा या अपने राज्य से भगा दिया जाऊंगा। पिताजी शक्तिशाली अवश्य थे, परंतु उन्होंने अपने कई शत्रु पैदा कर लिये थे। राजमती, एक बार सोचो कि तुम्हारी इस अस्वीकृति के क्या परिणाम होंगे। हम लोग जंगल-जंगल की खाक छानते फिरेंगे और निर्वासित जीवन व्यतीत करेंगे।"

राजमती को वह दिन याद हो आया, जिस दिन उसके पिता की मृत्यु हुई थी। उस दिन जब वह उनके कक्ष में गई तो उसने देखा था कि वे शांतिपूर्वक अपनी शैया पर उठंग लेटे हुए थे। राजप्रासाद में एक भी व्यक्ति ऐसा न था, जिसे मृत्यु का स्वागत करने की राजा भोज की मानसिक तत्परता को देखकर विस्मय न हुआ हो। राजा के सभी प्रतिष्ठित और गणमान्य अधिकारी एवं नागरिक उस कक्ष में उपस्थित थे। उदयादित्य और उसकी पत्नी भी वहीं थे।

वृद्ध राजा की आंखें प्रतिक्षण मद्धिम होती जा रही थीं, फिर भी उन्होंने अपने धड़ को थोड़ा-सा उचकाकर, अपनी शैया के चतुर्दिक खड़े लोगों को संबोधित करके कहा था, "मेरे साथियो, मैं आपकी सेवाओं से अत्यन्त संतुष्ट हूं। मुझे खेद है कि आपकी सेवाओं का जितना पुरस्कार मैंने आपको दिया, उससे अधिक मैं नहीं दे पाया।"

वहां जितने भी लोग खड़े थे, उनके चेहरे शोकाकुल हो गये थे। ऐसा लगा कि सबके भीतर एक ही प्रेरणा काम कर रही हो, क्योंकि सभी ने एक

स्वर से कहा था, "नहीं अन्नदाता, हम जितने के योग्य थे, उससे कहीं अधिक आपने हमको पुरस्कृत किया है।"

राजा भोज के मुखमंडल पर एक क्षण के लिए संतोष की रेखा उभरी, किंतु वे पुनः खिन्न और गंभीर हो गए थे, "मेरा अनुरोध है आप सबसे कि आपने जिस निष्ठा से मेरी सेवा की उसी निष्ठा से उदयादित्य की भी कीजियेगा। उसे आप सबकी सहायता की आवश्यकता होगी। चारों ओर शत्रु घात लगाये बैठे हैं। जबतक आप सब लोग राज्य की देखभाल न करेंगे, अकेला उदयादित्य सब शत्रुओं से पार नहीं पा सकेगा।"

फिर उन्होंने उदयादित्य और राजमती को अपनी शैया के समीप आने का आदेश दिया और उदयादित्य का हाथ पकड़कर राजमती के सिर पर रख दिया था।

"मैं कदाचित् आज की संध्या के बाद जीवित न रह सकूं, क्योंकि मृत्यु की सांस को अपने बहुत निकट अनुभव कर रहा हूं।" राजा भोज ने कहा था, "राजमती ही एकमात्र ऐसी है, जो तुम्हारी अपनी है। यह तुमसे छोटी भी है। तुम दोनों एक-दूसरे से कोई बात छिपाना मत। अपनी तरह ही अपनी छोटी बहन से स्नेह करना।"

और अंत में राजा भोज ने वहां उपस्थित लोगों की ओर देखकर कहा था, "मेरे मित्रो, मैं आप सबसे विदा लेता हूं। आप देख रहे हैं कि एक राजा अपने जीवन-प्रदीप के बुझने की प्रतीक्षा कर रहा है और दूसरा राजा नये उगते सूर्य की तरह क्षितिज से ऊपर उठ रहा है। अपने देश के प्रति अपने कर्तव्य का पालन करते रहें। धारा चिरंजीवी हो।"

तीसरे पहर तक उनके प्राण-पखेरू उड़ गये थे।

पहले तो राजमती को कुछ भय महसूस हुआ, लेकिन अब अचानक उसने पाया कि उसका भय दूर हो गया है। उसकी काली आंखों में भय का लेश तक न था। उसके भिचे हुए होंठ उसके दृढ़ संकल्प की सूचना दे रहे थे। पिता की मृत्यु के बाद से वह अपने को जिस असहायता और परावलंबिता की स्थिति में पा रही थी, उसको उसने झटक फेंका था।

उदयादित्य ने त्यौरी चढ़ाकर उसकी ओर देखा। भर्त्सना के शब्द उसके होठों पर आ गये; परंतु जब उसने राजमती के चेहरे के भाव और उसकी आंखों में अवज्ञा की झलक देखी तो वह सहम गया और कटु शब्द बोलते-बोलते रुक गया।

"क्या वह बौना कभी मुझे छू भी सकता है?" राजमती लगभग चिल्लाकर बोली, "मैं बीसलदेव की पत्नी हूं, अजयमेरु की रानी।" इन शब्दों को उच्चारित करते हुए उसका हृदय गर्व से फूल उठा था।

उदयादित्य को सहज ही आश्चर्य हुआ। कुछ सोचता हुआ वह बोला, "मैं नहीं समझता कि तुम्हें अपने चारों ओर की परिस्थितियों का ज्ञान है भी या नहीं। मेरे विचार में तुम कल्पना-लोक में विचर रही हो।"

"बिलकुल नहीं। अपने पुरोहित को भेजकर पता लगा लीजिए न। मैंने पिताजी से सब बातें कह देने का विचार कर लिया था, परंतु अवसर मिलने से पहले ही वे हमें छोड़कर चले गये।"

अपने भाई और भाभी के सम्मुख राजमती खड़ी थी। उसकी ठोड़ी उठी हुई थी, उसकी आंखों की दृष्टि स्थिर और उसकी वाणी में संकल्प की दृढ़ता थी। उसके मुखमंडल पर पहले जो कारुणिक और अनुनयपूर्ण मुद्रा रहती थी अब उसका कहीं नाम-निशान तक न था। उसको देखकर एक रानी का संभ्रम होता था।

उदयादित्य और उसकी रानी, दोनों ही विस्मित होकर राजमती की ओर देखने लगे। उदयादित्य ने पुनः अपनी बहन को संदेहात्मक दृष्टि से देखा। तभी राजमती ने अपने भाई के गले में बाहें डाल दीं, ठीक वैसे ही जैसे वह अपने पिता के गले में डाल दिया करती थी। उदयादित्य और वह अपने बचपन में इसी तरह गलबहियां डालने के अभ्यस्त थे। इस तरह उसने अपने भाई को उस नैकट्य की अनुभूति करा दी, जिसे पिछले कुछ वर्षों में वह भूल गया था।

उदयादित्य कुशाग्र बुद्धि का चतुर राजा था। परंतु आलसी और आमोदप्रिय भी कम न था। यही कारण था कि परिस्थिति उसके काबू से

बाहर होती जा रही थी। अगर वह एक बार साहस कर सकता तो परि-स्थितियों से निपटना उसके लिए कठिन न था।

एक क्षण के लिए वह किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया; किंतु जब उसने अपनी बहन की ओर देखा, जिसका मस्तक गर्वोन्नत था और जिसकी आंखें अब भी आंसुओं से डबडबा रही थीं, तब उसका विवेक जागृत हो गया। शांत मनोदशा में अपनी स्थिति पर विचार करने का अवसर पाकर वह नये सिरे से क्रोधित हो उठा। परंतु इस बार उसे इस बात पर क्रोध आया कि आखिर वह राजमती पर क्रुद्ध क्यों कर हुआ। दहाड़कर बोला, "मैं अधम चौलुक्य को अच्छा सबक सिखा दूंगा, ताकि वह सदा के लिए भौंकना भूल जाय।"

□ १० सुजाता देवदासी बनी

अजयसागर पर सूर्य की किरणें चमचमा रही थीं और अन्नासागर झील के शांत-स्थिर जल पर हंसों के जोड़े इधर-से-उधर शानदार ढंग से तैर रहे थे। किनारे-किनारे बेंत के पौधे उगे थे, जिनके बीच में सुंदर पंखोंवाली बत्तखें विश्राम कर रही थीं। छोटे-छोटे पक्षी झाड़ियों में चह-चहा रहे थे। इस दृश्य को देखकर किसी का भी हृदय प्रसन्न हुए बिना नहीं रह सकता था। एक स्त्री पश्चिमी घाट पर बैठी अपने बच्चे के साथ खेल रही थी। वह घुटनों के बल बैठी थी और बच्चे ने उसके गले के गिर्द अपनी एक बांह डाल रखी थी। बच्चे ने किलकारी भरी, "मां, देखो, कितनी सुंदर-सुंदर चिड़ियां हैं और कितने मीठे-मीठे गीत गा रही हैं। सुंदर चिड़ियां, मीठे गीत।"

बीसलदेव अपने गवाक्ष में खड़े इस दृश्य को देख रहे थे। यद्यपि बाह्य रूप से वे उस रात के तलवारवाले भयंकर कांड को भुला चुके थे, तथापि

अभी तक यह प्रश्न उनके मस्तिष्क को उलझन में डाले हुए था कि आखिर उनकी हत्या के षड्यंत्र का मुख्य सूत्रधार कौन है ? घूम-फिरकर उनका संदेह नाथजी पर स्थिर हो जाता था और उन्हें इस वात पर अचंभा भी होता कि नाथजी उनकी हत्या कराने की नीचता पर क्यों आमादा हैं ?

झील की ओर से अपनी दृष्टि हटाकर उन्होंने गवाक्ष के पीछेवाले छायावृत्त कक्ष की ओर देखा। उस समय अंधकार के कारण वह कक्ष छोटा दिखायी दिया था, परंतु अव चूंकि दिन था और खिड़कियां भी खुली थीं, इसलिए वह काफी वड़ा लग रहा था और उसे देखकर भय का संचार भी नहीं होता था।

सच पूछा जाय तो यह कक्ष और यह गवाक्ष ऐसे मुख्य स्थल थे जहां, जव से अजयसिंह चौहान ने अपना दुर्ग निर्मित किया था, एक शासक के वाद दूसरे शासक ने, एक पीढ़ी के वाद दूसरी पीढ़ी ने, अपने अवकाश का समय विताया था। इस कक्ष के साथ कितने ही प्रवाद और कितनी ही किंवदंतियां जुड़ी हुई थीं, जिनसे पता चलता था कि यहां पर कितने-कितने महत्त्वपूर्ण निर्णय किये गए थे। वीसलदेव ने कक्ष के भीतर एक दृष्टि डाली और पुनः अपने विचारों में खो गए।

यह सच है कि नाथजी ने राज्य के कई स्थानों में कई मंदिर वनवाये थे। उसने प्रत्येक मंदिर से संलग्न कई मठ भी निर्मित करवाये थे, जिनमें उसके विद्वान् किंतु आलसी शिष्य रहा करते थे। अपने एक-दो मठों के साथ सांठ-गांठ करके उसने वीसलदेव को प्रभावित करने की चेष्टा भी की थी।

अगर यह मान लें कि उन पर आक्रमण करनेवाला व्यक्ति नाथजी ही है, तव तो इसका मतलव यह हुआ कि वह कोई गहरी चाल चल रहा है। अवश्य वह कोई ऐसा खेल खेल रहा है, जो उनकी समझ के अनुसार, किसी वड़े उपद्रव या वड़े खतरे का पूर्वाभास है।

उस दिन जव वीसलदेव ने किसी कार्यवश रणवीर को वुलवाया था तव उन्हें वताया गया कि वह नाथजी के प्रासाद में गया हुआ है। इस वात से

नाथजी पर उनका संदेह और भी दृढ़ हो गया।

ऐसे व्यक्ति जब अपने कर्तव्य की सीमा को लांघ जाते हैं तो धर्म को निंदा का पात्र बना देते हैं। बीसलदेव सोचते रहे कि रणवीर का नाथजी से क्या संबंध हो सकता है ? और क्या नाथजी रणवीर के माध्यम से ही तो इतनी सारी बातें नहीं जान गया है ?

आघात एक विचित्र वस्तु है। कुछ लोगों पर इसका प्रभाव इस रूप में पड़ता है कि वे बेहोश हो जाते हैं, चीखने-चिल्लाने लगते हैं या अन्य प्रकार के संवेगात्मक लक्षण प्रकट करते हैं; किंतु कुछ लोगों पर इसका प्रभाव भिन्न प्रकार का होता है, आघात खाकर वे अधिक सक्रिय हो जाते हैं। मगर ऐसे लोग अपवाद-स्वरूप ही होते हैं।

अब क्या किया जाय ? अपराधी का पता कैसे लगाया जाय ? यदि पता न लगाया गया, तो वह उनके प्राण लेने का पुनः प्रयत्न कर सकता है और संभव है, अगली बार उसे सफलता भी मिल जाय—बीसलदेव ने सोचा और उनके होंठ भिंच गये। एक चमत्कार शायद तिल को ताड़ बना देता है, परंतु इसके बिना हमारी गति भी तो नहीं—उन्होंने आगे सोचा।

ऊहापोह वे अवश्य कर रहे थे, परंतु संकट से जूझना उनका वास्तविक स्वभाव था। किसी कोने में अपने को दुबका रखने के बजाय मैदान में शत्रु का सामना करने और उस पर विजय प्राप्त करने का अत्यानंद उठाने की उनकी सहज प्रवृत्ति थी। विजय चाहे शारीरिक हो या मानसिक, उसका आनंद तभी है जब किसी बराबरी के शत्रु पर उसे प्राप्त किया जाय।

आज बीसलदेव बहुत अशांत थे। पिछले दशहरे पर रणवीर उनकी सेवा में आया था। उसी दिन तो शक्ति की अधिष्ठात्री देवी दुर्गा ने महिषासुर का वध किया था। इसलिए राजपूत लोग प्रातःकाल दुर्गा की पूजा और तीसरे पहर एक भैंसे की बलि चढ़ाकर प्रतीकात्मक रूप से महिषासुर का वध करते हैं। उनके बल की परख इस बात से होती है कि

खड्ग के एक वार से भैंसे का सिर काटा जाय। गत वर्ष रणवीर भी दशहरे की शोभायात्रा में सम्मिलित हुआ था और जब भाले के छेदे जाने के वाद भैंसा भाग छूटा तो रणवीर अपने घोड़े पर सवार होकर भैंसे के समीप जा पहुंचा था और अपनी तलवार के एक ही वार से उसने उसका सिर काट डाला था। उसके इस कार्य ने वीसलदेव को इतना प्रभावित किया कि उसे उन्होंने अपनी सेना में रख लिया।

रणवीर ने अपने पराक्रम का परिचय आखेट में भी दिया। धीरे-धीरे वह वीसलदेव का विश्वासपात्र वन गया और उनके अन्तरंग व्यक्तियों में उसकी गणना होने लगी। नगर के सभी नागरिक जानते थे कि वह राजा का एक प्रतिभाशाली, कुशाग्र वुद्धि सभासद है और उनका मित्र भी। क्या यह आदमी सचमुच नमकहराम हो सकता है ?

इस रहस्य का पता तो कोई ऐसा व्यक्ति ही लगा सकता है, जो नाथजी से किसी-न-किसी रूप में संवंधित हो। सहसा वीसलदेव चिल्ला उठे, "नहीं, यह असह्य है। मैं इस वात की डींग हांकता रहा हूं कि मुझे अपने राज्य के वारे में राई-रत्ती हाल मालूम है। क्या यही प्रमाण है उसका ?"

फिर दशहरा आ गया। सव लोग भैंसे का शिकार करने के लिए गये और रात में एक विशेष दरवार हुआ, जिसमें सभी उच्च पदाधिकारी, मन्त्रिगण और स्वयं राजा भी उपस्थित थे। प्रसिद्ध नर्तकी मोतीवाई का नृत्य था।

अपनी ऊपरी आंखों से तो वीसलदेव नृत्य देख रहे थे, किंतु उनके अंतःचक्षु कुछ और ही खोज रहे थे। इस समय उनकी भृकुटि तनी हुई थी, वे मन-ही-मन वहुत संतप्त अनुभव कर रहे थे और जीवन-मरण के संघर्ष में उलझे थे। अचानक मोतीवाई पर उनकी दृष्टि गई, और सहसा उनके होंठों पर मुस्कान खेल गई, जैसे सावन की वदली के वीच कहीं सूरज चमक उठा हो। वे ईश्वर से प्रार्थना कर रहे थे कि कोई चमत्कार ऐसा हो जाय, जिससे उनको अपनी समस्या को सुलझाने में मदद मिल सके। शायद ईश्वर ने उनकी प्रार्थना सुन ली थी।

जब दरबार खत्म हुआ तो उन्होंने चुपके से मोतीबाई को अपनी निजी कक्ष में बुला लिया और कहा, "क्या तुम मेरा कोई हित-साधन करोगी ?"

"क्या मुझे इस प्रश्न का उत्तर देना होगा ? आपके आदेश मेरे लिए प्राणों से भी अधिक मूल्यवान हैं।"

"लेकिन तुम्हें साहस और बुद्धि से काम लेना होगा। सबसे बढ़कर तुम्हें अपनी ही आंतरिक प्रेरणा का सहारा लेना होगा।"

"मुझे किसी बात का डर नहीं है।"

"अच्छी बात है, तो मैं यथासंभव सीधे-सादे ढंग से तुम्हें बताने की चेष्टा करूंगा कि मैं तुमसे क्या कराना चाहता हूं।" बीसलदेव ने मोतीबाई से कहा।

पहले उन्होंने मोतीबाई को अपने ऊपर रात में तलवार फेंके जाने की घटना के विषय में बताया और फिर कहा, "यदि कोई आदमी मुझे मार डालना चाहता है, तो स्पष्ट ही वह किसी शत्रु के उकसाने पर ऐसा कर रहा है, और उस स्थिति में वह राजद्रोही है। उसका हमें पता लगाना है, क्योंकि हमारा राज्य खतरे में है।"

"यह तो बिलकुल साफ है। अपने देश के लिए मैं कुछ भी करने को तैयार हूं।"

"मैं इस बात को सरल-से-सरल रूप में और कम-से-कम शब्दों में रख रहा हूं। अब यह बताओ कि नाथजी के विषय में तुम्हारा क्या विचार है ?" उन्होंने उससे पूछा।

"मैं समझती हूं कि वह एक महत्त्वाकांक्षी व्यक्ति है, परंतु इस सीमा तक नीचता पर उतरेगा, इस संबंध में मैं निश्चयपूर्वक नहीं कह सकती।"

"तुम ठीक कहती हो।" बीसलदेव ने कहा, "जिन लोगों का उसके साथ संबंध है, केवल वे ही लोग इस विषय में कुछ जानने की स्थिति में हो सकते हैं, और चूंकि आदिकाल से ही स्त्रियां पुरुषों की विश्वासपात्र

रहती आई हैं, इसलिए वे ही इस कार्य को कुशलता से पूरा कर सकती हैं।"

"आपका मतलब है कि मैं नाथजी के निकट संपर्क में आऊं और उनका विश्वास प्राप्त करूं?" मोतीवाई का स्वर गंभीर था। वीसलदेव की मर्मभेदी दृष्टि के सम्मुख भी मोतीवाई की पलकें झपकी नहीं थीं, यह बात उन्हें अच्छी लगी।

"इस वात के प्रमाण मिल रहे हैं कि महमूद गजनवी ने हर राज्य में अपने समर्थक नियुक्त कर दिये हैं। यदि नाथजी उसकी शतरंज का मुहरा वना है तो वह जरूर कोई ऊंचा दांव खेलना चाहेगा।"

"यह तो वहुत भयानक वात है।"

"यही तो मैं तुमसे कह रहा हूं। तुम पुरुषों को अपनी अंगुलियों पर नचा सकती हो। तुम मंदिर में नृत्य भी करती हो। यद्यपि नाथजी से आशा की जाती है कि राजपुरोहित होने के नाते वह शारीरिक वासना से अपने को वचाए रखे, तथापि मुझे सूचना मिली है कि उसे महिलाएं अच्छी लगती हैं और नगर के वाहर से उसके पास कन्याओं को लाया जाता है।"

"क्या आप समझते हैं कि ऐसी स्थिति में वह मुझसे खुल सकेगा? मुझे नगर में वहुत लोग जानते हैं। मेरा सारा जीवन धनाढ्य और सुखी नागरिकों पर निर्भर है। मैं वलिदान के लिए प्रस्तुत हूं, यहां तक कि अपनी वेटी तक को इस पवित्र उद्देश्य के लिए वलिदान कर सकती हूं। उसे वहुत कम लोगों ने देखा है। भाग्य ने साथ दिया तो शायद वह कुछ सुराग लगाने में सफल हो जाय।" मोतीवाई ने कहा।

मोतीवाई की इस भावावेशपूर्ण घोषणा को सुनकर वीसलदेव ने उसकी ओर प्रशंसात्मक दृष्टि से देखा, "मोतीबाई, मैंने जितना समझा था, तुम उससे अधिक देशभक्त हो। सफलता इस वात पर निर्भर करती है कि तुम्हारी वेटी यह जानते हुए कि उसे क्या करना है, कृतसंकल्प होकर अपने कार्य में जुट जाय। तभी सफलता उसके चरण चूमेगी। भाग्य के भरोसे वात नहीं वनती। आदमी को दूरदर्शितापूर्वक, एक जुआरी की सहज

बुद्धि से, अवसर का लाभ उठाने के लिए चौकस रहना चाहिए।"

वीसलदेव ने मोतीवाई की छोटी-छोटी अंगुलियों पर अपना हाथ रख दिया। वे गरम थीं और उनमें स्पंदन था। उन्होंने यह भी देखा कि उसके कपोल तीव्र भावावेग के कारण आरक्त हो उठे हैं। वोले, "तुम्हारी वेटी पर किसी को संदेह नहीं हो सकेगा।"

"परंतु आपके साथ संपर्क वनाये रखने का भी कोई उपाय सोचना होगा। अपनी वेटी से मिलने के लिए तो मैं समय-समय पर मंदिर में जाती रहूंगी।"

"आनंद हम लोगों का गोइंदा रहेगा। मैं किसी अन्य व्यक्ति पर विश्वास नहीं कर सकता।"

"यदि मेरी वेटी किसी तरह नाथजी के साथ घनिष्ठ संवंध वना ले तो उसे क्या करना होगा?"

"मैं चाहता हूं कि वह हर वात की सूचना देती रहे। वह जो भी वात सुने, उसके वारे में हमें वताए। कौन-कौन व्यक्ति नाथजी से मिलने जाते हैं और वहां क्या-क्या होता है, आदि सभी वातों पर उसे अपनी दृष्टि रखनी होगी और हमें सूचित करते रहना होगा। कौन-सी चीज हमारे लिए महत्त्व रखती है और कौन-सी नहीं, यह जांचना हमारा काम होगा, उसका नहीं।"

"ऐसा ही होगा।" मोतीवाई ने कहा।

"लेकिन अव तुम यहां ज्यादा देर तक मत रुको, नहीं तो सारे नगर में यह चर्चा का विपय वन जायेगा।" वीसलदेव ने कहा, "अगर कोई तुमसे पूछे कि इतनी देर राजा के पास क्या कर रही थीं तो कह देना कि कुछ पुरानी रागिनियां सुना रही थी।"

मोतीवाई जव दुर्ग से निकली तो काफी रात जा चुकी थी। शरद-ऋतु की ठंडी रात में घरों से निकलनेवाला धुंआ भी उस समय वादल की तरह जमकर वातावरण में तैरने लगा था।

अगली सुवह मोतीवाई ने अपनी कन्या सुजाता को मंदिर के लिए

अर्पित कर दिया—सुजाता देवदासी वन गई। मोतीवाई समय-समय पर वहां की घटनाओं के वारे में वीसलदेव को सूचना देती रहती थी। तभी धारा से एक दिन कुछ दूत आये, जिन्होंने वताया कि उदयादित्य ने कर्ण चौलुक्य के विरुद्ध युद्ध में वीसलदेव से सहायता मांगी है।

कर्ण चौलुक्य ने उदयादित्य पर आक्रमण कर दिया था। यदि एक पखवाड़े में उसके पास सहायता न पहुंची तो वह युद्ध में हार जायगा।

वीसलदेव ने तुरंत तैयारी करने का आदेश दिया। पच्चीस हजार अश्वारोही सैनिक उदयादित्य के सहायतार्थ उसी क्षण रवाना हो गये।

□ ११ काला भुजंग

उज्जयिनी के परमार क्षत्रियों ने नवीं शती में धारानगरी राज्य की स्थापना की थी। धारानगरी के सिंहासन पर कई यशस्वी राजा वैठे। राजा भोज उनमें से एक थे। उनके विषय में असंख्य आख्यान प्रचलित हैं। कहते हैं, कोई आदमी उनके दरवार से खाली हाथ नहीं लौटा। रात को वे वेश वदल कर नगर में घूमा करते और अपनी प्रजा की स्थिति के विषय में स्वयं जानकारी प्राप्त करते थे।

उनके चाचा का नाम मुंज था, जिन्हें चौलुक्यों ने हराकर वंदी वना लिया था। उनके साथ चौलुक्यों ने दुर्व्यवहार किया, अतः जव भोज सिंहासनासीन हुए तो उन्होंने चौलुक्यों पर आक्रमण कर उन्हें पराजित कर दिया। यही कारण था कि कर्ण चौलुक्य प्रतिशोध का बहाना ढूंढ़ रहा था।

कुछ अन्य शत्रु भी थे, जो राजा भोज के राज्यकाल में चुपचाप रहे।

भोज को यह ज्ञात था कि यद्यपि उन्होंने अपने देश को महान् बना दिया है और धारानगरी को सुख-समृद्धि प्रदान की है, तथापि कुछ लोग उनसे ईर्ष्या करते हैं और उनके राज्य पर लोलुप-दृष्टि लगाये बैठे हैं। इसलिए उन्होंने एक सशक्त सेना का संगठन किया था।

उदयादित्य का समय आमोद-प्रमोद में अधिक बीतता था। धीरे-धीरे राजा भोज के समय की अनुशासित धार-सेना, उनकी मृत्यु के कुछ ही समय बाद, उतनी चुस्त न रही और न उतनी शक्तिशाली ही।

जिन लोगों ने राजा भोज के समय धारानगरी को उत्कर्ष के चरम-बिंदु पर पहुंचते देखा था, उन्होंने उनकी मृत्यु के पश्चात् होनेवाले परिवर्तनों को भी—चाहे वे कितने ही छोटे और नगण्य रहे हों—देखा। दोनों स्थितियों का अंतर स्पष्ट था। वेश्यालय तो पहले भी थे, जो गुप्त रूप से चलाये जाते थे, किंतु अब गली-कूचों में निकलते समय कोई भी स्त्रियों को खिड़कियों पर खड़े देख सकता था। वे अपने वस्त्रों के प्रति लापरवाह रहतीं और राह-चलतों को इंगित कर बुला लिया करती थीं।

साथ-ही-साथ सेना की कार्यकुशलता भी क्षीण होती गई। जो लोग सैन्य-सेवा से निवृत्त हो गये, उनके स्थान पर दूसरे सैनिकों की नियुक्ति नहीं की गई और न शस्त्रागार को ही नवीनतम शस्त्रों से सुसज्जित किया गया। जिस सेना का नेतृत्व अब उदयादित्य के हाथ में था, उसकी अपनी कुछ पुरानी विशेषताएं तो अवश्य बनी हुई थीं, परंतु वास्तव में वह अपने अतीत की छाया-मात्र रह गई थी। वह इस योग्य तो थी कि राजधानी की कुछ समय तक रक्षा कर सके, परंतु शत्रु पर आक्रमण करने की सामर्थ्य उसमें नहीं रह गई थी।

सेना की भले ही यह दशा हो गई थी, लेकिन धारानगरी का दुर्ग अब भी शत्रुओं के लिए चुनौती बना हुआ था। ऐसा लगता था, मानो वह चौलुक्यों के आक्रमण-दलों को घृणा की दृष्टि से देख रहा हो।

बीसलदेव की अश्वारोही सेना सरपट चलती हुई इतनी शीघ्रता से आई कि शत्रु-सेना के पहुंचने से ज्यादा दिन पीछे नहीं रही। बीसलदेव

के सैनिकों के शुंडाकार लौह-शिरस्त्राणों पर ढलते सूरज की किरणें पीछे से पड़ रही थीं और उन पर रुपहली कलई चढ़ाती प्रतीत होती थीं एवं अश्वारोहियों की आकृति को काली छाया में परिणत कर रही थीं।

चौलुक्य-सेना की व्यूह-रचना से सौ-एक गज के फासले पर पहुंचकर बीसलदेव की सेना ने अपनी चाल धीमी कर दी। ऐसा जान पड़ता था, मानो शिकार पर घात करने से पहले बाघ अपने शरीर को सिकोड़ रहा हो। पीली धूल का गुबार उड़कर आसमान में शामियाने की तरह छा गया था और मोर के सतरंगी पंख की तरह पीछे की ओर फैल गया था। इससे एक लाभ यह हुआ कि शत्रु-सेना बीसलदेव के सैनिकों की संख्या का सही अनुमान न लगा सकी। थोड़ा ठिठककर बीसलदेव के दुर्दम्य सैनिक पूरे वेग से घोड़ों को भगाते हुए पुनः आगे बढ़े और उनके पहले हल्ले में ही चौलुक्य सेना की रक्षा-पंक्ति टूट गई। बीसलदेव के अश्वारोहियों ने भाले तान कर भयंकर वेग से अपने अश्वों को रेल दिया।

आनंद बीसलदेव के पार्श्व में चल रहा था। उसने रणभेरी बजाने-वाले को सिर हिलाकर संकेत किया। धनुर्धरों ने धनुष की प्रत्यंचाएं चढ़ा लीं। मध्य भाग और दोनों पार्श्व के अश्वारोहियों ने अपने भालों से प्रहार करने आरंभ किये और फिर चौलुक्य सैनिकों के संभावित प्रहार से बचने के लिए अपने को ढालों से ढंक लिया।

जिस तरह पानी की तेज धारा में भीगे हुए कुत्ते शरीर को झकझोर कर अपने रोएं झाड़ लेते हैं, उसी तरह चौलुक्य-सेना बीसलदेव की सेना-रूपी तेज जल-धारा से घबरावर, बचने का कोई मार्ग पा, बीसलदेव की सेना पर पलट पड़ी। बीसलदेव के भाले के फलक से छिदने से एक क्षण पहले तक चौलुक्य-सैनिक मनुष्य के रूप में पहचाने नहीं जा सकते थे। उनके गोल-गोल पांडूर चेहरे, भयानक आंखें और चीखते-चिल्लाते मुंह, लंबी-पतली मूंछें, सफेद पगड़ियां और छोटी-गोल ढालें—सब मिलाकर उनके पूर्ण मानव होने में संदेह पैदा कर देती थीं। वे गोल बनाकर एका-एक बीसलदेव पर टूट पड़े। कुछ तो अपने ही वार के धक्के और अपने

पीछेवाले सैनिकों के दवाव के कारण वीसलदेव के भाले की नोक पर अनायास जा गिरते थे। कुछ भालों के प्रहार को दुबककर बचा जाते या भालों को एक ओर धकेलकर अपनी लंवी, छोटी तलवारों को ताने हुए अजयमेरु की सेना पर टूट पड़ते थे।

वीसलदेव के अश्वारोहियों ने ढालों की सपाट दीवार को गिरा दिया, जिससे अपनी तलवारों का खुलकर प्रयोग कर सकें। वीसलदेव की रक्षा-पंक्ति रणनीतिवश थोड़ा पीछे हट गई। कुछ समय तक वीसलदेव के ठीक सामने किसी को हिलते-डुलते और पैंतरा वदलते शरीरों और अर्धवृत्ताकार नाचती तलवारों के सिवा कुछ भी दिखायी नहीं दिया। तभी अचानक शत्रु-सेना का दवाव कम हो गया। खरखराते गलों से युद्धनाद करते हुए भी चौलुक्य-सैनिक पीछे हटने लगे थे।

वीसलदेव को समझते देर न लगी कि उनके सैनिकों की अजस्र वाण-वर्षा के ही कारण चौलुक्यों के आक्रमण की गति मंद पड़ गई है। उन्होंने ऐसे चौलुक्य योद्धाओं की वाढ़ रोक दी थी, जो कभी पीछे पैर रखना जानते ही नहीं थे। जिस तरह चींटों के झुंड को पीछे हटा देना असंभव होता है, उसी तरह चौलुक्य योद्धाओं को पीछे धकेल देना एक दुष्कर कार्य था। चींटों की ही तरह वे आक्रमण करने के लिए वार-वार लौट आते थे और तवतक ऐसा करते रहते थे जवतक अपने संख्या-वल से प्रतिपक्षी को दवोच न लेते, या स्वयं मौत के घाट उतार न दिये जाते। इसलिए कह सकते हैं कि वीसलदेव को विजय प्राप्त नहीं हुई थी, मात्र सांस लेने का अवसर मिला था। चौलुक्यों की संख्या भी तो वीसलदेव की सेना से लगभग दूनी थी।

चौलुक्य-सैनिक अजयमेरु की सेना के वाणों की प्रहार-सीमा से दूर चले गये थे। दूरी से देखने पर वे मनुष्यों की एक छोटी-सी गांठ के समान लगते थे। उनके सरदार अपने रौबीले चेहरे से पहचाने जा सकते थे, वे सैन्यपंक्ति के मध्य में खड़े होकर आपस में कुछ परामर्श कर रहे थे, और शेष सैनिक अपने हाथों में छोटे-छोटे धनुष-वाण लिये हुए थे। वीसलदेव की

सेना ने आदेश पाते ही फिर बाण-वर्षा आरंभ कर दी। उनके धनुर्धर घोड़ों पर से उतर गये, ताकि जमीन पर खड़े होकर अपने लंबे धनुषों को पूरी तरह खींच सकें और बाणों को पूरे वेग से फेंक सकें। उज्ज्वल प्रभात में धूल, पसीने और खून की मिली-जुली सड़ांध उठने लगी थी।

चौलुक्यों ने तो समझ रखा था कि इतनी ज्यादा दूरी के कारण अजयमेरु के सैनिकों के बाण उन तक पहुंच ही न सकेंगे। परंतु हुआ उनकी संभावना के विपरीत। अजयमेरु के सैनिकों के तीरों की बौछार ने चौलुक्यों को बींध दिया। तब कुछ चौड़ाई में फैलकर चौलुक्यों ने पुनः आक्रमण किया। उन्होंने बिना रुके, भागते-भागते, अपने धनुषों से छोटे-छोटे जो तीर छोड़े वे अजयमेरु की सेना को कोई क्षति पहुंचाये बिना उनकी ढालों से टकराकर निष्फल हो गये। एक योद्धा चीख पड़ा और आनंद की बगल में आ गिरा। उसका घोड़ा आतंक से भयभीत होकर गुलांटें खाने लगा। चौलुक्य सेना बीसलदेव के अश्वारोहियों पर पूरी तरह झपटती, उसके पहले ही बीसलदेव ने नयी मोर्चेबंदी का हुक्म दिया। आदेश पाकर उनका सैन्य-दल चौड़ाई में फैल गया। चौलुक्यों का सामना करने के लिए बीसलदेव के सैनिक घोड़े कुदाते हुए सौ गज पीछे चले जाते और तब पलटकर जबर्दस्त मार करते और फिर धीरे-धीरे पीछे हटते हुए अपने आक्रमण का प्रभाव देखने की चेष्टा करते थे।

चौलुक्यों का साहस भंग हो गया था, परंतु जंगल में फंसे भेड़ियों की दुष्टता और दुर्दांतता के साथ वे प्रतिरोध करते जा रहे थे, सिर्फ भेड़ियों जैसी चालाकी उनमें नहीं थी। पार्श्व भाग से आनेवाले तीरों की लगातार मार खाकर उनके दोनों पक्ष छलनी हो गये थे। अब वे किटकिटाकर पूर्व की ओर खड़ी अजयमेरु की सेना पर चढ़ दौड़े, जो बरछे संभाले हुए उनका स्वागत करने के लिए तैयार खड़ी थी। जब पूर्व दिशा से उनपर बाणों की बौछार हुई तो वे पश्चिम की ओर मुड़ गये। उदयादित्य ने भी दुर्ग का फाटक खुलवा दिया और अपने सैनिकों के साथ बाहर निकलकर चौलुक्यों पर पीछे से हमला कर दिया। सूर्यास्त के पहले-पहले लड़ाई खत्म हो गई।

कर्ण चौलुक्य अपने कुछ अनुगामियों के साथ बचकर निकल भागा था।

वीसलदेव और उदयादित्य—दोनों राजा साथ-साथ चलते हुए दुर्ग में प्रविष्ट हुए। दोनों की सेनाएं उनके पीछे-पीछे आ रही थीं। दुर्ग के भीतर प्रजा की भारी भीड़ उनके आगमन की प्रतीक्षा कर रही थी। किसान अपने रंग-बिरंगे परिधान धारण करके आये थे, सामंतों ने रेशमी और जरीदार वस्त्र पहन रखे थे, सैनिकों ने चमचमाते अस्त्र-धारण कर रखे थे और पुरोहितों के वस्त्र सुनहले थे।

लंबे-लंबे डंडों में पिरोयी हुई ढेर-की-ढेर रंगीन पताकाएं हवा में इठला-इठलाकर लहरा रही थीं और धूप में चमचमा रही थीं। रणभेरियों की महीन आवाज को दबाती हुई जयजयकार की हर्षध्वनि वायुमंडल को गुंजित कर रही थी।

उस रात समस्त धारानगरी उत्सव मनाती रही। आतिशबाजी छोड़ी गई। जहां-तहां भीड़ जमा हो जाती थी। इस प्रकार के उल्लास के अवसरों पर धनी-मानी लोग जनता के मनोरंजन के लिए ऐसे नृत्यों का आयोजन करते थे, जिनमें लोग निःशुल्क भाग ले सकें।

रात्रि का प्रथम प्रहर व्यतीत हो चुका था। वीसलदेव ने झरोखे से बाहर देखा तो पछुवा हवा चलने लगी थी। उन्होंने अपने चेहरे पर उसके झोंके महसूस किये। उन्होंने एक उसांस भरी। वे उस उत्कट संवेदनशीलता का अनुभव कर रहे थे, जो किसी कार्य को सफलतापूर्वक संपादित कर देने के बाद, किसी व्यक्ति में उत्पन्न हो आती है। जब व्यक्ति का अहं तुष्ट हो जाता है तब उसकी आत्मिक आवश्यकताएं सिर उठाने लगती हैं और एक सहज प्रेरणावश अपनी संतुष्टि चाहती हैं।

वीसलदेव अकेले शिव के मंदिर की ओर चल पड़े। जब वे मंदिर के भीतरी मंडप में पहुंचे तो उन्होंने देखा कि कोई श्वेत आकृति देव-प्रतिभा के सम्मुख खड़ी है। उनको उस आकृति को पहचानने में कोई कठिनाई नहीं हुई। राजमती शिव की प्रतिमा के सम्मुख हाथ जोड़े प्रार्थना की मुद्रा में खड़ी थी। वीसलदेव उसके पीछे निश्चल जा खड़े हुए।

राजमती दिन-भर घायल सैनिकों की सेवा-सुश्रूषा में लगी रही थी। यद्यपि यह काफी थकी हुई थी, फिर भी जब मंदिर के प्रांगण में प्रविष्ट हुई तो उसके मन में यह अनुभूति हुई कि जरूर कोई अद्भुत घटना घटनेवाली है।

उसने ज्योंही अपनी आंखें खोलीं, राजा बीसलदेव को अपने पीछे खड़ा पाया। उन्होंने एक लंबा ज़रीदार अंगरखा पहन रखा था। कमर में तलवार का कमरपट्टा बंधा था, परंतु उस समय उसमें तलवार नहीं थी। राजमती के हृदय में बीसलदेव के दर्शन-मात्र से जो आनंद तरंगित हुआ, उसे संयमित न कर पाने के कारण वह उनकी ओर उत्सुकतापूर्वक मुड़ी। दोनों की आंखें चार हुईं। दोनों के हृदय में भावना का ऐसा ज्वार उठा, जिसके सम्मुख शब्दों का कोई महत्त्व नहीं रह जाता। उनकी सांसें तेज हो गई थीं। दोनों को ही अपने-अपने भीतर एक लपलपाती अग्निशिखा-सी उठती प्रतीत हुई। सारा वातावरण एक अनोखे चुंबकीय आकर्षण से व्याप्त हो गया था।

"तो यह आप हैं। मुझे अपनी आंखों पर विश्वास नहीं हो रहा कि यह सच है या मैं स्वप्न देख रही हूं।" राजमती ने चुटकी ली और फिर अपनी भावनाओं को छिपाने का प्रयत्न करते हुए उसने विनोदपूर्वक कहा, "आपको देखकर बड़ा अच्छा लगा। लेकिन सच-सच बताइए, आपको अब भी मेरी स्मृति..."

"राज, कृपाकर ऐसा मत कहो। मैं तो स्वयं अपने व्यवहार पर लज्जित हूं।" वे और कुछ कहते, उसके पहले राजमती उनकी ओर बढ़ आई।

बीसलदेव ने उसे अपने दृढ़ आलिंगन में भर लिया। दोनों एक-दूसरे से लिपट गये। राजमती के मुंह से कोई शब्द न निकल सका। बीसलदेव के आनंददायी स्पर्श ने उसे मूक कर दिया था। उसे अपना समूचा अस्तित्व रोमांचक आनंद में सराबोर होता प्रतीत हुआ।

अचानक उन्होंने अपने पीछे किसी के लौटते हुए डगों की आवाज

सुनी। फौरन उनकी आंखें मंदिर के प्रवेश-द्वार की ओर उठ गईं। उन्होंने देखा कि एक बड़ा काला नाग फन फैलाये उनकी ओर रेंगता आ रहा है। तेज सर्पिल चाल से चलता हुआ वह वीसलदेव के पैरों के पास आ गया। सांप को अपने इतने करीब देखकर भी वीसलदेव जरा भी नहीं घबराये, शिव की पिंडी को नहलाने के लिए वहां दूध से भरा एक कटोरा रखा था। वीसलदेव ने वह कटोरा सांप की लपलपाती जीभ के ठीक नीचे लाकर रख दिया। जैसे ही सांप अपने सामने रखे कटोरे में से दूध को अपनी जीभ से धीरे-धीरे चाटने लगा, मौका पाकर वीसलदेव और राजमती मंदिर के द्वार में से निकल भागे।

वीसलदेव जब राजप्रासाद में पहुंचे तब भी उनका मानसिक तनाव दूर नहीं हुआ था। वे यह सोचने की कोशिश कर रहे थे कि मंदिर में सांप किसने फेंका होगा ? यदि वह व्यक्ति स्थानीय है तो उसे यह कैसे मालूम हुआ कि मैं किस समय कहां जा रहा हूं ? अगर वह व्यक्ति अजयमेरु का निवासी है तो जरूर मेरा निकटस्थ होना चाहिए।

जब वे मंदिर से लौटे थे तो रणवीर प्रासाद के मुख्य द्वार पर उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। वीसलदेव की आंखें अनायास उन दोनों के जूतों की ओर चली गईं थीं। आनंद के जूते तो साफ थे, परंतु रणवीर के जूतों पर कीचड़ का एक छोटा धब्बा था। उन्हें याद आया कि मंदिर के सामने कीचड़ था। उनका माथा ठनका। वे तनिक चौंके, लेकिन तुरंत उन्होंने स्वयं पर नियंत्रण पा लिया। रणवीर पर वे कितना विश्वास करते थे। ऐसा आदमी अगर विश्वासघात करे तो धक्का पहुंचना स्वाभाविक था। रणवीर सांप को अपने साथ ही लाया होगा। एक तरह से अच्छा ही हुआ कि उसने सांप को मंदिर में छोड़ा, अगर कहीं अन्यत्र छोड़ा होता तो क्या उनके प्राण बच पाते !

उन्हें रणवीर के चेहरे और उसपर उठते-मिटते भावों का भी ख्याल आया। कब उसका चेहरा शांत था, कब उसपर हृदय की भावाभिव्यक्ति

करनेवाली मुस्कराहट थी, और कव उस पर आंतरिक व्यग्रता के उड़े-उड़े भाव थे ! यों रणवीर शारीरिक शक्ति के साथ-साथ वौद्धिक शक्ति से भी परिपूर्ण था; परंतु जो लोग अपने को अधिक बुद्धिमान समझने का दंभ करते हैं वे कभी-कभी ऐसी गलतियां भी कर जाते हैं, जिनके कारण सारा गुड़ गोबर हो जाता है और उनका पर्दाफाश हुए बिना नहीं रहता।

वीसलदेव ने मामले की तह तक पहुंचने और इस षड्यंत्र में रणवीर के नेता का पता लगाने का फैसला किया। उनका प्राण लेने में रणवीर का तो कोई स्वार्थ सिद्ध हो नहीं सकता। पता लगाना ही होगा कि वह किसके इशारे पर राजद्रोहात्मक कार्य कर रहा है। स्पष्ट था कि वीसलदेव को प्रतीक्षा करनी होगी और संभलकर दांव चलना होगा। जल्दवाजी करने में वाजी के हाथ से निकल जाने का डर था।

□ १२ राजकीय विवाह

अब धारानगरी राज्य की स्वतंत्रता पर कोई तात्कालिक संकट नहीं था। नगर में पूर्ण शांति और निश्चितता थी, क्योंकि चालुक्यों के आक्रमण का भय दृढ़तापूर्वक सदैव के लिए समाप्त कर दिया गया था। उदयादित्य के पराक्रम के संबंध में लोगों को जो संदेह होने लगा था, वह भी दूर हो गया था। उसने अपने पराक्रम का परिचय दे दिया था। अजयमेरु की सेना-सहायता भी उसे ठीक अवसर पर प्राप्त हुई, जिससे उसका वड़ा हित-साधन हुआ। उस सेना की सहायता से ही वह शत्रु के आक्रमण को पीछे धकेल सका और चालुक्यों को इतनी करारी चोट पहुंचा सका कि अनेक वर्षों तक उनका धारा की तरफ मुंह करने का साहस न होगा।

देश-भर में संतोष और सुख का वातावरण था। सफलता और आत्म-विश्वास की भावना ने राजा उदयादित्य के मन को नये उत्साह से भर

दिया था। उसके मन में यह विचार आना स्वाभाविक था कि क्यों न राजमती और वीसलदेव के विवाह-कार्य को अभी ही संपन्न कर दिया जाय ! राजमती पहले ही सारी वातें उसके सामने प्रकट कर चुकी थी। अव वीसलदेव उसका अच्छा सहायक और मित्र था। ऐसी मित्रता के वंधन को दृढ़ करना समझदारी की ही वात थी। फौरन राज्य में इस आशय की घोपणा कर दी गई कि राजकुमारी राजमती की सगाई वीसलदेव के साथ हो गई है।

विवाह के समारोह में अभी कुछ विलंव था, फिर भी सारी प्रजा हर्षोन्मत हो उठी थी। अपने आनंदातिरेक को लोगों ने अनेक रूपों में व्यक्त करना आरंभ कर दिया था। पहले से ही सुंदर धारानगरी को खूव सजा दिया गया। सारे वातावरण में रंगीनी भर गई। हर्षनाद तथा उत्सव की उमंग वायुमंडल को गुंजित करने लगी।

उत्सवों और समारोहों का ऐसा सिलसिला शुरू हुआ, जिनका अंत होने में ही नहीं आता था। नगर के आवाल-वृद्ध नर-नारी अत्युल्लास की उमगती लहरों में गोते लगाने लगे। बच्चे भी नाना प्रकार के खेल-तमाशों में अपना दिल वहलाने लगे। उनकी किलकारियों और खुशियों से वातावरण और भी आनंदप्रद हो उठा था।

विवाह-संवंधी राजकीय उद्घोषणा का स्वागत दोनों राज्यों में हार्दिक उत्साह के साथ किया गया। दूतों के माध्यम से निमंत्रण भेजे जाने लगे। ये दूत वहुत पटु थे और जानते थे कि आगंतुकों के प्रति कैसा व्यवहार करना और सम्मान प्रदर्शित किया जाना चाहिए। गुजरात से लेकर गोदावरी तक के प्रदेशों के शासकों को निमंत्रण-पत्र भेजे गये और सम्मिलित होने की उनकी प्राप्ति-स्वीकृतियां भी मिल गई थीं।

उस मध्यकाल में युद्ध और प्रतिद्वंद्विताएं सामान्य घटनाएं थीं। मालवा और कल्याणी के चालुक्यों के वीच शत्रुता चल रही थी, हालांकि दोनों ही परमारों के पुराने शत्रु थे। वीच-वीच में, कुछ समय के लिए, उनके झगड़े खत्म हो जाते थे, और किसी-न-किसी वात को लेकर पुनः उठ खड़े होते

थे। परंतु अजयमेरु की सेना के रणकौशल और वीसलदेव के पराक्रम ने आसपास के राज्यों पर ऐसा सिक्का जमाया कि वीसलदेव से मैत्रीपूर्ण संवंध स्थापित करने के लिए सभी राज्यों में परस्पर होड़-सी लग गई। फिर उदयादित्य की राजधानी में यह जो शानदार अवसर आया तो उससे कुछ दिनों के लिए शांति सुनिश्चित हो गई।

उत्सव के कार्यक्रमों की तैयारियां तेजी के साथ हो रही थीं। प्रमुख समारोहों के लिए एक क्षेत्र निश्चित कर दिया गया था, जिसे साफ-सुथरा बनाने और सजाने-संवारने की चेष्टा हो रही थी। धार्मिक नियमों और देश के सामाजिक रीति-रिवाजों के अनुसार ही विवाह के समस्त विधि-विधानों को संपन्न करने का निश्चय किया गया था।

मुख्य आकर्षण-केंद्र वह स्थल था, जहां राजपुरोहित वैदिक विधि से वर-वधू का पाणिग्रहण-संस्कार करानेवाले थे। एक विशाल शामियाना वहां खड़ा किया गया था, जिसमें लाल और पीले ज़रीदार कपड़ों से अनेक मंडप वनाये गये थे। शामियाने को थामनेवाले लंवे-लंवे खंभों को भी चारों ओर उत्तम वस्त्रों से लपेटकर खूव सजाया गया था। मंडप में मखमल के नीले, हरे वड़े-वड़े पर्दे लटक रहे थे और उन पर फूलदार वेल-वूटों की सजावट की गई थी। सारी साज-सज्जा में परस्पर विरोधी रंगों का मोहक प्रभाव देखते ही वनता था।

विवाह-वेदिका के एक ओर संगीतज्ञों के वैठने का प्रवंध किया गया था। विवाह के समय वैदिक मंत्रोच्चार तथा स्तोत्रों के गायन के साथ संगत करने के लिए वीणा, मृदंगम तथा मादल आदि वाद्यों का वृंद गठित कर दिया गया था। विवाह-मंडप के वीच में विभिन्न आयु-वर्ग और सामाजिक स्तर की महिलाओं के वैठने का प्रवंध था। इन महिलाओं को वैवाहिक रीतियों तथा परंपराओं का भलीभांति ज्ञान था। उनका शारीरिक सौंदर्य तथा उनके वस्त्राभूषणों की चमक-दमक उस स्थल को अप्सरा-लोक का रूप दे रही थी।

विवाह-मंडप से अपेक्षाकृत कुछ दूर एक विशाल स्वागत-मंडप वनाया

गया था, जहां विभिन्न स्थानों से पधारे अतिथियों को उनके पदानुसार ठहराने का समुचित प्रबंध था। वहां उनके मनोरंजन का भी समुचित प्राव-धान था। ऐसी व्यवस्था की गई थी कि जैसे ही अतिथि पधारें, सुन्दरी कन्याएं अपनी निर्दोष मुस्कान से उनकी अभ्यर्थना करें। उन कन्याओं के हाथों में थालियां रहेंगी, जिनमें इत्र और ललाट पर लगाने के लिए चंदन होगा। शुभ अवसरों पर चंदन का टीका लगाने की प्रथा बहुत प्राचीन-काल से जो चली आ रही है।

मंडप के प्रवेश-द्वार से लेकर मंडप के बीच तक एक चौड़ा पथ चला गया था, जिस पर पांवड़े बिछे थे और उसके दोनों ओर कदली-स्तम्भों की पंक्ति थी। बीच-बीच में पवित्र जल से भरे कलश रखे थे, जिन पर आम्र-पल्लव और मंगलसूचक नारियल सुशोभित थे। प्रवेश-द्वार पर एक शानदार मेहराब बनाया गया था, जिसमें प्राचीन मूर्ति-शिल्प की अनुकृतियां स्थापित की गई थीं, जिसके कारण वह मेहराब बहुत प्रभावशाली दिखाई दे रहा था। प्रवेश-द्वार के एक पार्श्व में मंच पर संगीतज्ञों की एक मंडली बैठी शास्त्रीय वाद्यवृंद के द्वारा स्वागत-गीत बजा रही थी।

रथों, अश्वों और हाथियों की एक लंबी पंक्ति धीरे-धीरे राजप्रासाद के तोरण द्वार तक चली आ रही थी। वहां उदयादित्य के महामात्य तथा अन्य मंत्रिगण आगंतुक अतिथियों का स्वागत कर रहे थे। जब अतिथि भीतर चले जाते तो महिलाएं और पुरुष अलग-अलग दलों में बंट जाते थे। महिलाएं दायीं ओर जाती थीं और पुरुष बायीं ओर। उदयादित्य और उनकी रानी दोनों पार्श्वों में अतिथियों के स्वागतार्थ खड़े थे। अतिथि वहां से चलकर सफेद संगमरमर के चौड़े चमकीले बरामदों को पार करते हुए एक विशाल प्रशाल के प्रवेश-द्वार पर पहुंचते थे।

राजप्रासाद के इस विशाल प्रशाल में कुशंडि का होम-कुंड प्रज्वलित था। वैदिक रीति के अनुसार वैवाहिक शुभ कृत्यों के अवसर पर सोम देवता और सविता की पुत्री सूर्यदेवी का आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए येह हवन-कुंड प्रज्वलित किया गया था। सोम और सूर्य का दिव्य विवाह (जिससे

संबंधित श्लोक ऋग्वेद में मिलते हैं) एक पवित्र प्रतीक है, जो मानवीय वर-वधू के आदर्श परिणय का प्रतिनिधित्व करता है। दिव्य विवाह की छाया मानवीय विवाह को पवित्रता और मांगलिकता प्रदान करती है।

राजकुमारी राजमती और राजा वीसलदेव को, जो इस समय वधू तथा वर के वस्त्रों में सजे थे, विवाह-मंडप में लाया गया। वहां सुगंधित धूप तथा अगरवत्तियां जल रही थीं, जिनके कारण सारा वायुमंडल सुवासित हो रहा था। वहां घी के एक सहस्र दीपक जल रहे थे, जिनसे सारा मंडप प्रकाशित हो रहा था। उस उज्ज्वल प्रकाश में वर-वधू की शोभा देखने योग्य थी। मानवीय गुणों के साथ उनमें दिव्य गरिमा का सुन्दर सम्मिश्रण हो रहा था। मांगलिक देवता वृहस्पति के वरद प्रभाव के अंतर्गत विवाह-संस्कार संपन्न हुआ। देवता का आशीर्वाद पाकर वर-वधू अपने नवीन जीवन-पथ पर आरूढ़ हुए। उचित अवसर पर परिचारिकाओं तथा घर की महिलाओं ने शंखध्वनि की। शंख की गंभीर ध्वनि ने दंपति को उनके विवाह-बंधन की महत्ता और गरिमा का वोध कराया और समस्त वातावरण को पवित्र एवं निनादित कर दिया।

प्रसन्न वदन, सुंदर, सुगठित देहयष्टिवाली महिलाएं गाती-वजातीं छोटी-छोटी टोलियों में विवाह-मंडप में एकत्र थीं। उन्हें देखकर ऐसा लगता था, मानो रंग-विरंगे फूलों के गुलदस्ते सजा दिये गए हों। वे जव मधुर वाणी में आपस में वातें करतीं और उनके मुख से वीच-वीच में हंसी की फुहारें छूटतीं तो लगता था, मानो संगीत की मधुर स्वर-लहरी थिरक उठी, या कहीं छोटी-छोटी घंटियां टुनटुना रही हों। उल्लसित स्त्रियां अपने सौंदर्य और बुद्धि-वैभव तथा वाग्वैदग्ध्य से समारोह में भाग लेने के लिए आये हुए युवा अतिथियों का मन मोह रही थीं। युवा दर्शक भरसक प्रयत्न करते दिखायी देते कि कोई उन्हें सुंदरियों के प्रति आकर्षित न समझें, परंतु जाने-अनजाने वे उन ललनाओं के ललित लाघव का शिकार हो ही जाते थे। पुरुषोचित संकल्प के वावजूद वार-वार वे महिलाओं की टोलियों के समीप खिच आते और तव उन वेचारों की शामत आ जाती

थी। प्रमदाएं उन्हें अपनी मीठी ठिठोलियों और विनोदात्मक व्यंग्य-वाणी का निशाना बनाने लगती थीं। तब यह पता लगाना कठिन हो जाता था कि मोहिनियों के मुखारविंद से केवल शब्द उच्चारित हो रहे हैं या संगीतामृत का माधुर्य निःसृत हो रहा है। ऐसा था उन कोमलांगिनियों का हर्षोल्लास और इतनी मोहक थी उनकी हंसी-ठिठोली कि उनके मुख में सुकथित निरर्थक परिहास भी संगीत के स्वर-सामंजस्य से परिपूर्ण जान पड़ते थे।

सहसा कुछ युवतियां तथा प्रौढ़ाएं गरवा नृत्य करने लगीं। गुजरात की नारी इसी नृत्य के माध्यम से अपना हर्षोल्लास व्यक्त करती आई है। गरबे की ताल-लय के साथ दर्शक भी झूमने लगे। बेचारे युवकों पर तो जैसे बिजली ही गिरी, नारी-सौंदर्य के जादू ने मानो उनके प्राण ही हर लिये। परंतु उनके पराजय में भी विजय का माधुर्य समाया था। मन-ही-मन वे अपने विजेताओं को मौन स्वर से धन्यवाद दे रहे थे। सम्मोहित कर बंदी बना लेनेवाले उस दृश्य से भागने का भी उनका कोई इरादा दिखाई नहीं देता था। चतुर्दिक मिथ्या मर्यादा एवं कुंठा को तिलांजलि देने की प्रवृत्ति दृष्टिगत थी। विवेक और तर्क के लिए वहां कोई गुंजाइश नहीं बची थी। दोनों ही पक्ष आनंद और उल्लास के जाल में उलझ गये थे। सारा वातावरण आमोदमय हो गया था।

लग्न-विधि गोधूलि-वेला के लिए निश्चित थी—जब संध्या अपने परिधान समेटकर विदा हो रही होती है और रात्रि अपनी सुहाग-बिंदी लगाकर नील गगन पर आविर्भूत होने को होती है। यह वह समय होता है जब अस्तंगामी सूर्य, केसर या रक्तचंदन के प्रलेप की भांति प्रतीत होता है और आकाश में तारे जगमगाने नहीं लगते हैं; जब जंगल से चरकर लौटती हुई गायों के खुरों से उठी धूल आसमान में छा जाती है। यही समय है, जिसे परंपरागत विश्वास ऋद्धि-सिद्धि से जोड़ता है; यही समय है जब सूर्य और चंद्र दोनों का मिलन होता है। निश्चय ही यह वेला नव-दंपति के ग्रंथि-बंधन को सार्थकता प्रदान करनेवाली होती है।

विवाह-संस्कार के नियमानुसार वर-वधू ने अग्नि के चारों ओर घूम-कर सप्तपदी की रस्म पूरी की। यह एकता के बंधन में बंध जाने का प्रतीकात्मक संस्कार है। पति और पत्नी अपने दीर्घ जीवन में साथ-साथ चलते हैं, इसी की पूर्वकल्पना दांपत्य-जीवन के प्रारंभ में इस रोमानी रीति से की जाती है। 'संगच्छध्वं' का पवित्र संकल्प और उसका आचरण-पक्ष काव्यात्मक रूप से एक सार्थक क्षण में एक सार्थक विधि के द्वारा प्रति-बिंबित कर दिया जाता है।

उस अत्यंत गरिमामय समारोह की छाप राजमती के मन पर बहुत गहरी पड़ी। आनंदातिरेक में वह इतनी मगन हो गई कि यह भान ही नहीं रहा कि धरती पर चल रही है या आसमान से उड़ रही है। भीतर से वह अत्यधिक प्रसन्न थी, लेकिन ऊपर से पूर्णतः प्रशांत।

वर और वधू की मुखाकृति में कुछ ऐसी कमनीयता, किंतु साथ ही दृढ़ता और दीप्ति भी थी कि जिन्होंने उन्हें उस समय देखा, उन्हें यही लगा कि एक वास्तविक जीवन का दंतकथा में परिणत हो जाना इसी को कहते हैं। सबके अंतर्मन से यही शुभाकांक्षा निकल रही थी कि राजा-रानी सदा सुखी रहें।

आमंत्रित अतिथि इस असमंजस में थे कि वर और वधू में से वे किसको अधिक सुंदर बतावें। कभी वे वर के सौंदर्य की प्रशंसा करने लगते और कभी वधू के सलोनेपन की। सौंदर्याकर्षण में दोनों ही समान थे।

उस क्षण स्वर्गिक आशीर्वाद से अभिषिक्त राजमती अलौकिक गरिमा से मंडित लग रही थी। उसके मन में जो पवित्र भाव थे, उन्हीं का प्रतिबिंब उसके मुखमंडल पर विचित्र कांति के द्वारा व्यक्त हो रहा था। सुंदर सजीले वस्त्रों और भुजाओं के केयूर से लेकर पैरों के पाजेब तक नख-शिख के आकर्षक आभूषणों ने उसके सौंदर्य में चार चांद लगा दिये थे। उसकी चूड़ियां, कंगन तथा गले का हार दमकते स्वर्ण से निर्मित थे और उनमें मोती, लाल, हीरे और पन्ने आदि रत्न जड़े होने से दीप्ति प्रस्फुटित हो रही थी; परंतु उसका सर्वोत्तम आभूषण थी उसकी शालीनता, और वह यह

भी जानती थी कि सौंदर्यशाली होते हुए भी सुंदर कैसे दीखा जाता है।

सहसा सबकी आँखें उस खुली पालकी की ओर उठ गईं, जिसे सुनहले काम की धोतियां पहने भारी डील-डौल के दो व्यक्ति अपने कंधों पर उठाये चले आ रहे थे। पालकी में एक गुड़िया-सी कोमल लड़की बैठी हुई थी। उसे देखते ही सभी दर्शकों ने ताली बजाकर उसका स्वागत किया। लड़की ने अपने शरीर पर मयूर-पंखों से निर्मित पोशाक पहन रखी थी। वह धारानगरी की प्रसिद्ध नर्तकी सुरुचि थी।

दोनों कहारों ने पलकी को मंडप के बीच में रख दिया और वे छाया में ओझल हो गए। पालकी में से निकलकर लड़की दो कदम आगे बढ़ी। अब पूर्ण शांति थी। केवल वीणा पर मधुर रागिनी बज रही थी और उसे संगत देने के लिए एक संगीतज्ञ ढोलक पर हल्की-हल्की थपकी दे रहा था।

लड़की अपने हाथ को गले तक ले गई और एक डोरी का फंदा उसने खींचा। तत्काल मयूर-पंख चौड़े पंखे के रूप में उसकी पीठ पर फैल गये। वह उन्हें अपने पीछे तबतक धीरे-धीरे आवर्तित करती रही, जबतक वह पंखा मयूर-पंख की तरह खड़ा न हो गया। वीणा और ढोलक के स्वरों में आरोह आता गया और गति तथा लय तीव्र होती गई।

लड़की के शरीर का निचला भाग ताल-लय के साथ चक्कर खाने लगा। उसने मयूर-पंखों को पुनः अपने अगल-बगल और पीछे लहराना शुरू किया और उसके नितंब भी संगीत को लय के साथ वर्तुलाकर हिलने लगे। उसका कटि-प्रदेश से ऊपर का भाग गतिहीन था। मयूर-पंख पुनः फरफराये और इस बार उसके पैर नृत्य की ताल पर ठुमकी देने लगे और कंधों में भी गति आ गई। क्रमशः उसके शरीर का प्रत्येक भाग अलग-अलग समय पर संगीत की लय के साथ अपने कंपन की लय मिलाने लगा—तेज और अधिक तेज। दर्शक खुशी से उछल पड़े। तत्पश्चात् वह अपने घुटनों के बल बैठ गई। जैसे-जैसे वाद्ययंत्रों की लय वायुमंडल में विलीन होती गई वह अपने शरीर को अंतिम बार मरोड़ देकर नमस्कार की मुद्रा में हो गई। 'सुंदर-सुंदर' की ध्वनि से सारा मंडप गूंज उठा।

मधुर संगीत के कारण तो वातावरण प्रेम और सौंदर्य की भावना से अनुगुंजित हुआ ही, उत्सव को शान-शौकत और नाना प्रकार के सुस्वादु व्यंजनों से युक्त भोज भी धारानगरी के निवासियों को चिरकाल तक स्मरण रहा। केवल धारावासियों को ही क्यों, धारा से ईर्ष्या करनेवाले लोगों को भी उत्सव की याद वर्षों तक बनी रही।

खान-पान और नृत्य-गान का समारोह आधी रात तक चलता रहा। राजपथ तथा अन्य मार्गों पर जो तोरण-द्वार बनाये गए थे, उन्हें कई दिनों तक ज्यों-का-त्यों रहने दिया गया। छाया के फूलों के जो पौधे स्थान-स्थान पर अस्थायी रूप से लगाये गए थे वे भी खूब टिके, केवल उनके फूल मुरझा गये थे। रंग-बिरंगे फोते टूट-टूटकर हवा में लहराते रहे। जिन खुले स्थानों तथा चौराहों पर आतिशबाजी हुई थी वहां राख की ढेरियां लगी रहीं।

□ १३ शब्दातीत बंधन

दूसरे दिन सवेरा हो जाने के बाद भी राजमती और बीसलदेव उसी कक्ष में थे, जिसमें उन्होंने अपनी सुहागरात बितायी थी।

पिछली रात मंडप में राजमती थोड़ा ऊबने लगी थी और उसे यह विचार उद्विग्न करने लगा था कि नाच-गान और आनंदोल्लास के इस उत्सव का कभी अंत होगा भी या नहीं। उसे जो पाना था, वह पा चुकी थी और अब उसका मन दांपत्य की अधिष्ठात्री देवी उमा का पूजन करने के लिए अकुला रहा था। अंत में नगर के साहूकारों की पत्नियां उसे और बीसलदेव को संभा-मंडप में से उठाकर उमा-पूजन के लिए उनके शयनागार में ले आई थीं। हास-केलि की रोमांचकता के बीच पूजा-विधि निपटाकर श्रेष्ठि-

पत्नियाँ दोनों को परिचारिकाओं के सिपुर्द कर लौट गईं थीं।

परिचारिकाओं ने फेरे के समय पहने हुए उसके वस्त्रों के साथ हीरे-जवाहरात का मुकुट भी उसके सिर से उतार दिया। उसकी ओढ़नी भी आहिस्ता से हटा दी गई। ऐसा लगा, मानो गुलाव के फूल की वाहरी पंखुड़ियाँ एक-एक कर अलग की जा रही हों और तेज महक के साथ अनावृत कली प्रकट हो गई हो। अंततः उन्होंने मोमवत्तियां और दीपक वुझा दिये, केवल एक फानूस शैया के समीप जलता हुआ छोड़ दिया गया। इसके वाद वे कक्ष से वाहर निकल आईं और दरवाजे पर उपस्थित रहकर राजमती के आदेश की प्रतीक्षा करने लगीं।

कक्ष में धुंधला-सा प्रकाश था, छायाओं की अधिकता थी, और बीसलदेव की प्रतीक्षा करते हुए राजमती को ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानो वह ऐसे पवित्र-प्रेम से घिरी है, जो अन्य वंधुओं के प्रेम के रूप में सदियों से प्रतिविंवित होता रहा है।

नंगे पैरों, पंजों के वल चलती हुई, वह कमरे को पारकर अपनी कोमल सेज तक गई और उसमें जा घुसी। प्रतीक्षा के वे कुछ क्षण राजमती को ऐसे लगे, मानो प्रतीक्षा में उसका सारा जीवन ही बीत गया हो।

आखिर बीसलदेव आये और पलंग पर उसकी वगल में वैठ गये। अव चूंकि वे इतने समीप थे, चेहरे पर पड़ते हुए फानूस के प्रकाश में उसने देखा कि जितनी कल्पना की गई थी, वे उससे भी अधिक सुंदर हैं। उनकी आंखें असाधारण थीं—न तो भूरी, न काली, वरन लंवी वरौनियों से ढंकी नीलाभ रंग को विकीरित करती हुई। जब वे आंखें विस्फारित करके देखते थे तो उनसे एक प्रकार की द्युति निकलती थी। उनके वाल काढ़ने का ढंग भी उसे अच्छा लगा। उनके हाथ भी उसे सुंदर लगे और यह तो उसे पहली बार ही पता चला कि किसी के हाथ भी इतने लंबे और सुंदर हो सकते हैं। उन्होंने जो अंगूठी पहन रखी थी वह भी सुंदर थी। उस पर एक तांत्रिक रेखाकृति बनी थी, कदाचित सौभाग्यकारिणी और उसके बीच

में एक नीलमणि जड़ा हुआ था।

अपने प्रिय को इतना समीप पाकर वह मुंह से कुछ न कह पाई, कंठ में वाणी जैसे लुप्त हो गई थी और वास्तव में तो उसे शब्दों की अब आवश्यकता ही कहां रह गई थी! उसने जैसे ही अपनी बाहें पसारीं, उसकी आंखें चमक उठीं, मानो गगन के तारे कौंधे हों !

उसकी अंगुलियों ने बीसलदेव की अंगुलियों का स्पर्श किया और एक रागिनी चुपचाप बज उठी। फिर वह रागिनी धीरे-धीरे तरंगायित होती हुई लालसा के संगीत में बदल गई और एक सुखकर पीड़ा बन गई। जीवन के संगीत में परिवर्तित हो जाने का वह उद्दाम उत्स था, जो भाव की स्वर लहरी में प्रवाहित होने लगा था। राजमती की अंगुलियां अब बीसलदेव की अंगुलियों से गुंथ गईं थीं और हृदय-वीणा के तार अधिक तीव्रता से झनझनाने लगे थे।

"इतने दिनों तक मैं तुम्हारे बिना रह कैसे सका ?" बीसलदेव ने अस्फुट स्वर में कहा।

राजमती जानती थी कि बीसलदेव भी उसके लिए उतने ही तड़पते रहे हैं, जितनी वह। यद्यपि एक-दूसरे के विषय में जानने-पूछने को बहुत कुछ था, परंतु उस प्रथम स्पर्श के साथ ही सबकुछ जान गये और कुछ भी जानना-पूछना शेष न रहा। अपने प्रिय के बाहुपाश में होने का सुख इतना अधिक था कि राजमती और कोई आकांक्षा कर ही नहीं सकती थी।

"तुम प्रसन्न तो हो न, प्रिये ?" बीसलदेव ने पूछा।

"मुझे पता नहीं था कि इतनी प्रसन्नता भी हो सकती है इस दुनिया में।" राजमती ने उत्तर दिया।

"उस रात मुझे सहसा महसूस हुआ कि मुझे जंगल में जाना चाहिए। जानती हो, उसके बाद क्या हुआ ?" बीसलदेव ने पूछा और फिर बोले, "मैंने झील पर एक परी को भ्रमण करते देखा। वह इतनी मोहक थी कि सोचा, उस-जैसी कमनीय स्त्री को पाना मेरे लिए कभी भी संभव नहीं होगा।" राजमती की आंखें चूमने के बाद उन्होंने आगे कहा, "अब

मुझे उस परी को मंदिर तक ले चलना चाहिए।"

वे उठे और उन्होंने दीपक बुझा दिया। उषा का मद्धिम उजाला कमरे में भर गया।

वीसलदेव ने खिड़की से वाहर खुले में देखा और वे कुछ सोचने लगे—शायद उदयादित्य के वारे में या रणवीर के वारे में।

"वीसल !" राजमती ने धीरे से पुकारा, मानो वीणा झंकृत हो उठी। उसकी इस पुकार में एक हताश अनुनय छिपी हुई थी। बीसलदेव ने उसे अपनी भुजाओं में ले लिया।

उन्होंने कहा, "कुछ वर्ष पहले एक साधु ने मेरी हस्तरेखाएं देखी थीं और उसने भविष्यवाणी की थी कि एक दिन मुझे एक युवती मिलेगी, जिसमें वाग्विदग्धता के साथ-साथ सुंदरता भी होगी। आज लगता है, मेरे जीवन का वह धन्य दिन आ गया।"

"नहीं !" राजमती वोल उठी, "न तो मुझमें वाग्विदग्धता है और न सौंदर्य ही।"

"तुम शायद नहीं जानती कि कभी-कभी परियों की कहानियां भी सच हो जाया करती हैं।" एक गहरी सांस लेते हुए वीसलदेव ने कहा।

"खासतौर से उस समय, जव आप जंगल में झील के किनारे चले जायं।" राजमती मुस्कराहट विखेरते हुए वोली।

सूर्य अव अपनी प्रथम स्वर्णिम किरणों को पारदर्शक आकाश की दिशा में उन्मुख करने लगा था।

"हम लोग यहां से कव विदा होंगे ?" सहसा राजमती ने पूछा।

"कल सुबह ही क्यों न चलें ?" उन्होंने उत्तर दिया और आगे बोले, "तुम यहां खुश नहीं जान पड़तीं।"

राजमती ने इसका जवाब नहीं दिया। परंतु कुछ न कहकर भी वह अपनी भावना को अवगुंठन में न रख सकी। चालुक्यों के भय की तो कोई वात अव थी नहीं। सिर्फ़ यही विचार उसके मन में था कि यहां वह राजप्रासाद के एक भाग में अवांछित और उपेक्षित-सी पड़ी रहेगी। तभी दोनों

की दृष्टि मिली। राजमती को यह देखकर अचंभा हुआ कि किसी आदमी की आंखें इतनी सहानुभूति का संचार भी कर सकती हैं और इतनी गंभीर तथा निर्वैयक्तिक भी रह सकती हैं ! वह उठकर झरोखे पर गई। सूर्य वृक्षों की चोटियों पर एक पीली आभा-मात्र बनकर रह गया था। जहां-तहां वसंत ऋतु में फूलनेवाले पौधे फूलों से लदे हुए थे। मधुमास की गरिमा का दर्शन करते हुए उसने अनुभव किया कि स्वयं उसके जीवन में भी मधुमास आ गया है। किसी पुरुष को प्यार करने और बदले में उस पुरुष द्वारा प्यार किये जाने की, उसके स्पर्श से रोमांचित होने की अभिलाषा वह अपने मन में संजोये हुए थी, जो आज पूर्ण हुई। अब उसके अंतर की नारी अपने लिए अपने निजी नीड़ का निर्माण चाहती थी, मात्र एक राजा की बहन बनकर भाई के प्रासाद में जीवन बिताना नहीं चाहती थी।

अपनी भावनाओं में मग्न, कहीं न देखते हुए भी वह एकटक देख रही थी कि सहसा धूप की एक किरण तीर की तरह आकर उसे लगी और एक सुखद ऊष्मा उसके नख-शिख में तरंगित हो उठी। नीचे उद्यान में रंग-बिरंगे फूलों की बारात सजी थी। सब रंगों के फूल वहां अपनी बहार लुटा रहे थे। उसे लगा, फूलों से लदा यह उद्यान ही उसकी सारी चिंताओं का समाधान है, एक ऐसा संकेत है कि अब आगे उसका सब कल्याण ही होगा।

क्षण-भर को उसकी दृष्टि अतीतमुखी हो गई। पीछे छूटे हुए जीवन-पथ पर जिस पुरुष से भी उसका परिचय हुआ था वह किसी-न-किसी रूप में निर्बल और प्रभावहीन लगा था। परम शक्तिशाली और स्वामी बनने की क्षमतावाला एक यही मिला, पूर्ण पुरुष, जिसे देखते ही हृदय अनुगत हो गया और अंतर की राजमहिषी जिसकी बांदी बनने के सौभाग्य से गौरवान्वित हो उठी।

उसके अन्तःकरण में बड़ा ही उत्तेजनात्मक, रोमांचक और अवर्णनीय रूप से अद्भुत भाव उदित हुआ, क्योंकि वह उस पुरुष से जिस बंधन में

बंधी थी वह शब्दातीत था और तन के साथ मन और प्राणों को और आत्माओं को भी संयुक्त करने वाला था।

□ १४ रणवीर उर्फ महबूब खां

विक्रम संवत् १०८३ बीत चुका था। अब नये वर्ष में किसी अघटित के घटित होने की प्रतीक्षा व्यग्रता से की जा रही थी। बीसलदेव कुछ समय पहले धारा से लौट आये थे। जो उलझन उनके मन में कई दिनों से चली आ रही थी, उसका कोई समाधान अबतक दिखायी नहीं दिया था। रात काफी गुजर चुकी थी। वे अपने कक्ष में बैठे थे। सामने गवाक्ष था, जिसके सामने झील लहरा रही थी।

सहसा दरवाजा खुला और शीघ्रता से बंद भी हो गया। बीसलदेव ने दरवाजे की ओर देखा और महसूस किया कि कोई कमरे के भीतर आया है और लगता है कि जोर से दौड़ता हुआ आया है, वह डरा हुआ है, क्योंकि हांफ रहा है और उसकी सांसें उखड़ी-उखड़ी हैं।

वे बोलने जा ही रहे थे कि उन्हें एक लघु आकृति कमरे के फर्श पर चलकर अपनी ओर आती हुई दिखायी दी। कमरे के एक कोने में एकाकी दीपक जल रहा था। दीये के मंद प्रकाश में वह आकृति उन तक पहुंचने के लिए मानो रास्ता टटोलती जा रही थी। समीप आकर वह आकृति उनके पैरों के समीप गिर पड़ी। फिर आंसुओं के कारण लगभग असंबद्ध वाणी में क्रंदन करती हुई यों बोली, "श्रीमान...मैं इसे सहन...नहीं कर सकती ...ना, अब मुझसे...बिलकुल सहा नहीं जाता।"...

बोलनेवाली स्त्री थी। बीसलदेव ने उसे पहचाना। वह सुजाता थी। सांस लेने के लिए थोड़ी रुककर वह आगे बोली, "मैं सोने के लिए...अपने कमरे में जा चुकी थी...और शायद मुझे नींद आ गई थी...लेकिन सोये

अधिक देर न हुई होगी...कि अचानक मेरी नींद किसी आहट के कारण खुल गई।...मैंने देखा, वहां एक आदमी...कितनी भयंकर बात थी !... उसका चेहरा मेरे चेहरे के...पास था...और जब मैं चिल्लाने को हुई... तो उसने लबादे में से अपना हाथ बाहर निकाला...और मेरा मुंह बन्द कर दिया। उसने मुझे अपने नीचे दबोचे रखा...इतने जोर से कि मैं हिल-डुल नहीं सकती थी...और जब मैंने पूरा जोर लगाकर उसके चंगुल से छूटकर उठने की कोशिश की...तब उसने कहा, "देख लिया न तुमने कि तुम कितनी असहाय हो और पूरी तरह मेरे कब्जे में हो। इससे तुम्हें यह शिक्षा मिल जानी चाहिए...कि आनन्द-जैसे आगंतुकों से न मिला करो।"

"मैं घबरायी कि अब मेरा अंत आ गया है।...मुझे सपने में भी ख्याल न था कि कोई मेरी गति-विधि पर नजर रखे हुए है और मुझ पर जासूसी की जा रही है।..."

सुजाता की आवाज यहां थम गई और वह सिसक उठी। एक क्षण बाद वह फिर कहने लगी, "मैं खूब छटपटायी...और उस दुष्ट की पकड़ से अपने को छुड़ाने की मैंने पूरी चेष्टा की,...लेकिन वह बहुत बलिष्ठ था। वह मुझसे बोला...और जिस ढंग से उसने कहा, उससे उसकी पाशविकता का ही परिचय मिलता था।

"मैं तुम्हें जान से नहीं मारना चाहता।...तुम बला की खूबसूरत हो... तुम्हारे-जैसी स्त्री को मारना नहीं चाहिए,...लेकिन मैं तुम्हें मार-पीटकर सारी हेकड़ी निकाल दूंगा।...तुम्हारा साहस तोड़ने का मैंने संकल्प कर लिया है।...तुम किस खूंटे के सहारे कूद रही हो, मैं खूब जानता हूं... तुम्हारी सारी अकल मैं ठिकाने लगा दूंगा...और तुम्हें ऐसी बना दूंगा, जैसा कि किसी भी देवदासी को होना चाहिए—अर्थात् अपने स्वामी की आज्ञाकारिणी। समझ गईं न ?"

सुजाता का स्वर भर्रा गया, उमड़ते आंसुओं को रोकने का प्रयत्न करते हुए वह बोली, "वह तिरस्कारपूर्वक हंसा।...उसने मुझे जोर से

भींच दिया...और फिर...फिर वह बोला, 'मैं तुम्हारी पिटाई तो बाद में करूंगा, अभी तो तुम्हें चूमना चाहता हूं।'

सुजाता ने एक गहरी सांस ली। अबतक वह अपनी बहुत कुछ पीड़ा आंसुओं की राह बहा चुकी थी, इसलिए थोड़ा शांत हो गई थी। अपनी बात को जारी रखते हुए उसने आगे कहा, "उसने अपना हाथ मेरे मुंह पर से हटाया और मेरे ऊपर झुक गया। मैं ऐसी स्थिति में थी कि हिल-डुल नहीं सकती थी, फिर भी मैंने अपना सिर उसकी आंखों पर दे मारा। मैंने करारी चोट की थी। मुझसे ऐसे व्यवहार को उसे बिलकुल आशा न थी।... फिर उसने शराब भी बेहद पी रखी थी।...मेरे चोट करते ही उसके पांव फिसले।...

"कुछ क्षण वह पलंग के साथ घिसटा, फिर गिर पड़ा। मैं उसके चंगुल से छूट चुकी थी। किसी तरह उसको धकिया कर मैं वहां से उठी और भागी। उसने अपना हाथ फैलाकर मुझे रोकने की चेष्टा तो की, लेकिन मैं उसकी पकड़ में न आई। सारे गलियारे और फिर रास्ते-भर दौड़ती हुई, मैं आपके पास आयी हूं।"

वह सांस लेने के लिए रुकी और फिर बोली, "मैं आपका सौंपा हुआ काम पूरा न कर सकी, इसका मुझे खेद है; लेकिन अब मैं उस जंगली के पास जाने के बजाय मर जाना ज्यादा पसंद करूंगी।"

बीसलदेव के पैरों के पास जड़वत पड़ी हुई वह अपनी आंखें खोलते भी सहम रही थी। तभी उसने बीसलदेव का हाथ अपने सिर पर महसूस किया।

"नाथजी के बारे में भूल जाओ। तुम अब उसके पास नहीं जाओगी। लेकिन तुमने वहां जो कुछ भी देखा और सुना है वह सब मुझे साफ-साफ और विस्तार से बताओ।" बीसलदेव ने कहा।

नाथजी सत्तर वर्ष का बूढ़ा था। उसके सिर के सारे बाल सफेद हो चुके थे, दाढ़ी और मूंछें भी सफेद हो गई थीं, मुंह में दोनों ओर की दाढ़ें टूट चुकी थीं; लेकिन विषय-लोलुपता वैसी ही प्रखर और कामुकता उतनी

ही प्रचंड थी। उसकी आंखों से वासना झलकती रहती थी। उसके अनुचर उसके लिए निस्तब्ध रात्रि में बाहर से कम उम्र की लड़कियां लाया करते थे। कभी-कभी वह किसी देवदासी पर लट्टू हो जाता तो कीमती गहने आदि का प्रलोभन देकर उसे पाने की कोशिश करता था। अगर वह उसकी बातों में न आती तो बलात्कार करते भी नहीं हिचकिचाता था।

सुजाता ने बीसलदेव के मुंह की ओर देखा। राजा के चेहरे पर ऐसी शालीनता और सज्जनता थी, जैसी उसने किसी और आदमी के चेहरे पर नहीं देखी थी। उसने कहा, "मैं आपको सब बता दूंगी श्रीमान्, वह सब-कुछ, जो मैंने वहां देखा और सुना है।"

उसने एक क्षण के लिए अपनी आंखें झुका लीं। उसके काले केश बिखरे हुए थे। आंसुओं के कारण उनकी लंबी बरौनियां अभी भी गीली थीं। वह एक नन्हें देवदूत की तरह लग रही थी। उसने धीमे, मधुर स्वर में कहना आरंभ किया, "महमूद हिंदुस्तान पर हमला करने की तैयारी कर रहा है। यह तो निश्चित रूप से पता नहीं चल सका कि वह किस तरफ से हमला करेगा, लेकिन उसके आने की बात पक्की है।"

बीसलदेव स्तब्ध रह गये। उन्होंने सुजाता के कंधे पर अपना हाथ रख दिया।

"कैसे मालूम हुआ तुम्हें ?" उनकी आवाज कठोर हो गई थी।

सुजाता ने उत्तर नहीं दिया तो बीसलदेव ने और भी कठोर स्वर में कहा, "उत्तर दो, सुजाता। तुम्हें सारी बातें मुझे बतानी होंगी।"

"महमूद की योजना यथासंभव एक लाख सेना के साथ भारत पर आक्रमण करने की है। उसकी सेना हिंदु (सिंधु) नदी के पश्चिमी तट पर एकत्र होगी। उसने चपटे पेंदेवाली नावें वहां जमा करने का आदेश दे रखा है। इस तरह की नावें खासतौर से उसीके लिए बनवाई जा रही हैं।"

"तुम निश्चयपूर्वक कह सकती हो कि यह सब सच है ?"

"एकदम सच। मैंने स्वयं अपने कानों से सुना है।"

"किसके मुंह से, कब और कहां सुना तुमने ? मेरे प्रश्न का साफ़-साफ़

उत्तर दो।" वीसलदेव ने कहा।

"जो संदेशवाहक दो दिन पहले कबूतर लाया था, उसीने यह सब कहा था।" सुजाता ने अपनी आंखें मूंद लीं और चित्त को एकाग्र करने की चेष्टा में भौंहों को किंचित् सिकोड़ा, फिर बोली, "नाथजी ने पूछा था, 'मुझे क्या मिलेगा?' दूत ने कहा था, 'महमूद उदार है। तुम्हें तुम्हारा इनाम मिलेगा।"

"लेकिन उनकी बातचीत तुम्हारी समझ में आई कैसे?" वीसलदेव ने टोका।

सुजाता बोली, "दूत हमारी ही भाषा में बात कर रहा था, यद्यपि उसकी भाषा भौंडी, बेहूदी और अटपटी थी।"

"आगे उसने क्या कहा?"

"मैंने जो पहले शब्द सुने," सुजाता ने धीमे-से कहा, "वे दूत के मुंह से निकले थे। उसने कहा था—'आखिरी चोट के लिए तैयार रहो'।"

"कहती चलो।" वीसलदेव ने उसे उत्साहित किया।

सुजाता ने धीमे-धीमे अपनी बात जारी रखी, "नाथजी ने जानना चाहा कि आक्रमण कब होगा। इस पर दूत ने उत्तर दिया—बहुत जल्दी। योजना है कि एक लाख सैनिकों को जमा किया जाय। वे सब सपाट पेंदे की तीन हजार नावों में सवार होकर नदी पार करेंगे। घोड़ों और बड़े-बड़े गोफनों को ढोने के लिए बड़ी-बड़ी नौकाएं होंगी।"

वीसलदेव के हाथ की पकड़ सुजाता के कंधे पर कड़ी पड़ गई। वे बोले, "अभी-अभी जो कुछ तुमने बताया, क्या इसकी चर्चा किसी और से भी की है? क्या आनंद को भी बता चुकी हो?"

उसने सिर हिलाकर इनकार किया।

"तो सौगंध खाओ कि तुम इसके बारे में किसी से एक शब्द भी नहीं कहोगी, अपनी मां से भी नहीं।"

"कदापि नहीं कहूंगी।" उसने उत्तर दिया।

"यह कबूतरोंवाली बात क्या है? जैसा मुझे मालूम है, नाथजी के

पास पहले ही वहुत से कवूतर हैं।" वीसलदेव ने जानना चाहा। नाथजी का नाम लेते समय उनके स्वर में कड़वाहट और तीखापन आ गया था।

"वह संदेश भेजने के ही लिए कवूतरों को पालता है। संदेश किसे भेजता है, यह मुझे नहीं मालूम। कवूतर कम न हो जायं, इसलिए समय-समय पर उसके पास नये-नये कवूतर आते रहते हैं।"

एक क्षण के लिए वीसलदेव के चेहरे पर परेशानी झलकी। फिर वे उठ खड़े हुए। उनकी त्यौरी चढ़ गई थी।

"तुमने वहुत अच्छा काम किया है, सुजाता। मुझे जितनी आशा थी, उससे भी बढ़कर तुमने अपना कर्त्तव्य निभाया है। अव मुझे यह वताओ कि नाथजी के पास कौन लोग आते-जाते हैं ?"

"मैं इस संवंध में निश्चयपूर्वक तो कुछ कह नहीं सकती महाराज, क्योंकि नाथजी से मिलने-जुलनेवाले लोग प्रायः काफी रात गये ही आते थे। लेकिन कभी-कभी मैं टोह लेने के लिए खासतौर से जागती रहती थी। मुझे सिर्फ दो ही नाम मालूम हो सके हैं—एक है रणवीर और दूसरा सागरसिंह।

कुछ टुकड़े तो तस्वीर में अच्छी तरह जम रहे हैं, वीसलदेव ने सोचा, लेकिन यह रहस्य तो वना ही रहा कि इन लोगों को निर्देश कहां से प्राप्त होता है? संभव है कि इन्हें निर्देश देनेवाला व्यक्ति महमूद का ही कोई आदमी हो।"

"मैं अव तुम्हें तुम्हारी मां के पास भिजवा देता हूं। तुमने वास्तव में अद्भुत काम किया है।" उन्होंने सुजाता से कहा।

"लेकिन मैं तो देवार्पण हो चुकी हूं। अव मैं अपनी मां के पास कैसे रह सकती हूं।" सुजाता वोल उठी।

उन्होंने उसके कंधे पर से अपना हाथ हटा लिया और दरवाजे की तरफ मुड़े। ठीक उसी समय राजमती ने कक्ष में प्रवेश किया। सुजाता के अंतिम शब्द उसके कान में पहुंच चुके थे। वीसलदेव के हाथ उठाते ही राजमती ने सुजाता के कंधे पर हाथ रख दिया और उससे कहा, "तुम

मेरे पास रहोगी।"

वीसलदेव ने आनंद को बुला भेजा और यह तय पाया कि नाथजी को रणवीर और सागरसिंह सहित बंदी बना लिया जाय। सागरसिंह वीसलदेव का एक वरिष्ठ सेनापति था।

"पूछताछ में कड़ाई करने पर नाथजी सब उगल देगा। वह आकाश छूने की कोशिश करनेवाला बौना है, जरा-सा खोदते ही भहरा जायेगा।" आनंद ने सुझाया, "मुझे पूरा विश्वास है कि वह सब कुछ स्वीकार कर लेगा और जितना जानता है, बता देगा।"

नाथजी तो केवल माध्यम था। वह किसी से संदेश प्राप्त करता और रणवीर तक पहुंचा देता था। उससे केवल इतनी सूचना प्राप्त हो सकी कि महमूद भारत पर आक्रमण की योजना बना रहा है। वह पहले ही हिंदु नदी के पश्चिमी तट पर अपना जमाव कर चुका था, और अब वह वहां अपनी फौज इकट्ठा करके आगे बढ़ने की योजना बना रहा था। यों तो उसे अपनी जीत का पूरा विश्वास था, परंतु हो सकता है कि संख्याबल के बावजूद उसे सफलता न भी मिले, और इसीलिए वह अपनी विजय के लिए दुहरी मोर्चाबंदी कर रहा था। वह इस देश के शक्तिशाली राजाओं का पूरी तरह विनाश कर देना चाहता था, ताकि भारत की लूट का उसका रास्ता हमेशा के लिए निष्कंटक हो जाय।

अजयमेरु में रणवीर ही महमूद की ओर से कार्य करनेवाला प्रमुख व्यक्ति था और वहां की सारी गतिविधियों का संचालन-सूत्र उसी के हाथ में था। लेकिन वह घाघ नहीं था। शारीरिक यातना के आगे वह अधिक देर तक अपना मुंह बंद न रख सका। तीस-पैंतीस वर्ष के उस आदमी को अजयमेरु में किसी ने इससे पहले नहीं देखा था। आने के पहले उसकी मूंछें मंगोल किस्म की थीं और सिर के बाल बायीं तरफ एक पतली सीधी लकीर से दो भागों में बँटे थे; परंतु दशहरे की शोभायात्रा में जब उसने घोड़े पर सवार होकर भाग लिया तो कोई उसे पहचान न सका कि वह कौन है और कहां का रहनेवाला है। अब उसके बाल ललाट पर से पीछे की ओर मुड़े हुए

थे, बायीं ओर से दायीं ओर को कढ़े हुए नहीं थे और उसकी मूंछें भी राजपूत-शैली में छंटी हुई थीं। वह था रणवीर उर्फ महबूब खां। उसे शहाबुद्दीन नामक व्यक्ति से संपर्क रखने के लिए कहा गया था।

शहाबुद्दीन महमूद का मुख्य गुप्तचर-अधिकारी था, जिसका प्रधान कार्यालय इन दिनों काबुल में था। कबूतर उसी के पास संदेश पहुंचाते थे। उद्देश्य स्पष्ट था। रणवीर को नाथजी की सहायता से ऐसे लोगों को छांटना था, जो देशद्रोह करने के लिए प्रस्तुत हों। उन लोगों के जिम्मे नये शस्त्रास्त्रों के निर्माण-कार्य में बाधा पहुंचाने और आक्रमण के समय सैनिकों का साहस भंग करने का काम भी था।

"जबतक इन नागों को बिल के बाहर निकालकर कुचला नहीं जाता, हम कुछ न कर सकेंगे।" बीसलदेव ने आनंद से कहा।

अब जरूरत इस बात की थी कि शहाबुद्दीन का पता लगाकर उसका खात्मा किया जाय। यह काम आनंद को सौंपा गया।

□ १५ आनंद बनाम अफजलखां

वह न खड़ा हो सकता था, न बैठ सकता था, न लेट ही पाता था। पिंजड़ा बस इतना ही बड़ा था कि उसमें पैर सिकोड़कर और सिर झुका-कर किसी तरह बैठ सके। वहां प्रकाश बिल्कुल नहीं था। अपनी आंखों पर बहुत जोर डालकर भी उसे कुछ दिखायी नहीं देता था। दीवार में ऊंचाई पर एक दरार थी, जिसमें से एक तारा इस समय नजर आ रहा था। कल रात भी उसे यह दिखायी दिया था। दिन में अवश्य सूरज की आभा उस कक्ष में पहुंचती थी, परंतु स्वयं सूर्य के दर्शन उसे नहीं हुए थे। उसने अनु-मान किया कि पूरे एक दिन से वह यहां इस हालत में पड़ा है।

कावुल में एक अच्छी वात यह थी कि चारों ओर से वंद इस जगह में मुंदे रहने के वावजूद उसे गरमी महसूस नहीं हो रही थी। लेकिन हवा वदवू से भरी थी। अपने दुखते हुए फेफड़े के भीतर अपनी क्रुद्ध सांसें भरने की आवाज उसे सुनायी दे रही थी। वह इतना थक गया था कि उसकी ज्ञानेंद्रियों की सारी अनुभूति मर गई थी, केवल पीड़ा की अनुभूति अवशिष्ट थी।

पत्थर का फर्श नम था। शायद उसके नीचे कहीं पानी था। उसने नम जगह से अपने को हटाने के लिए पूरा जोर लगाया, लेकिन उसके जोड़-जोड़ वेजान हो गये थे। उसने अपने हाथों और घुटनों के बल उठने की कोशिश की तो पिंजड़े के नीचे सलाखों से उसका सिर टकराया और कुहनी में खरोंच आ गई। अंधेरे में क्रोध में उवलते हुए पशु की तरह पैर मोड़कर वह नीचे दुवका वैठा था।

जव आनंद उस घर में पहुंचा तो उसे यह आशा नहीं थी कि वह शत्रु के जाल में इस तरह फंस जायगा। क्या उसके साथ धोखा हुआ है? यदि हां, तो किसने किया? किसी को यह मालूम नहीं था कि उसके जिम्मे कौन-सा काम है। बीसलदेव ने दूसरों को भ्रम में डालने के ही लिए सवके सामने उसे फटकारा और अपमानित किया था। उसने राजा से साफ-साफ कहा था कि मुझे पद-भार से मुक्त कर दिया जाय, ताकि मैं अपने गांव जा सकूं। नाटक इतनी अच्छी तरह खेला गया था कि राजा के अत्यंत विश्वास-पात्र भी जान नहीं पाये थे कि वह हेतुपूर्वक किया गया स्वांग था।

नाथजी के मंदिर की देख-रेख का काम उसने महेंद्र को पहले ही सौंप दिया था। महेंद्र के जिम्मे यह काम था कि वह नाथजी द्वारा लिखे गये झूठे संदेश प्राप्त करे और पखवारे में एक वार उन्हें शहावुद्दीन के पास भेजता रहे, ताकि उसे किसी तरह का संदेह न होने पावे। उसने यह संदेश भी भेजने का प्रबंध कर दिया था कि महवूव अफजल को कावुल भेज रहा है और वही उसे विस्तार में सारी वातें वतायेगा।

आनंद तक्षशिला के लिए रवाना हो गया। वहां वह कुछ दिन गुप्त

रूप से रहा। इस बीच उसने अपनी दाढ़ी बढ़ा ली और अपना परिचय अफजल खां के रूप में देने लगा। किसी को इस बात की जानकारी न थी कि वह अफजल खां नहीं, आनंद है और तक्षशिला से काबुल आया है। तक्षशिला में किसी भी परिचित से उसकी भेंट नहीं हुई थी। उसने अपना सिर जरा-सा हिलाया, क्योंकि दर्द की लहरों ने उसके विचारों को निगल लिया था। उसने अपने सिर को पुनः लटक जाने दिया और गले से आती-जाती सांस की रगड़ से होनेवाली घरघराहट को सुनता रहा।

जब वह जीने की ओर देखते हुए शहाबुद्दीन के मकान में घुस रहा था कि वे लोग दबे पांव पीछे से आये और उस पर वार कर दिया। अवश्य ही वे लोग पहले से उसके आगमन की प्रतीक्षा कर रहे होंगे। उसने सिर घुमाकर उन्हें देखने की चेष्टा की थी। उनमें से दो आदमियों की शक्लें तो उसे धुंधले रूप में अबतक याद थीं। इसके बाद उनके वार से वह मुंह के बल औंधा गिर पड़ा था। फिर उसे पता नहीं कि किस तरह लाकर पिंजड़े में बंद कर दिया गया।

कुछ समय के लिए जब उसे होश आया था तो अपने को ठुड्डी के नीचे पैर सिकोड़ कर बैठे हुए पाया था। ठीक उसी स्थिति में वे उसे छोड़ गये थे। उसने कोशिश की कि दिमाग में कोई भी ख्याल न आवे। उसका सिर अब भी चक्कर खा रहा था और सारी देह दर्द के मारे दुःख रही थी। कल जब से उसे इस कालकोठरी में ठूंसा गया था, उसने कुछ नहीं खाया था, और न उसे पीने को पानी ही मिला था। कल के बारे में उसे सिर्फ एक ही चीज याद थी, और वह थी दीवार में कहीं ऊंचे दरार में से झांकता एक अकेला तारा।

पहले उसने पिंजड़े की छत को अपने कंधों के जोर से उखाड़ने की कोशिश की थी, लेकिन वह बहुत ही ठोस ढंग से जड़ा हुआ था। सारी जगह पूरी तरह बंद जान पड़ती थी। उसने उस संकरे पिंजड़े में अपने शरीर को ऍंठ-मरोड़कर यह जांचने की कोशिश की थी कि कहीं कोई कमजोर जगह है या नहीं ? अपनी अंगुलियों के पोरों से उसने फर्श को

एक-एक अंगुल जगह ठोककर देख लिया था। फर्श के एक पत्थर में उसके अंगूठे की मोटाई के बरावर छोटे-छोटे कई गोल छेद थे। उसकी मध्यमा अंगुली जितनी दूर जा सकती थी, उससे भी अधिक गहरे किसी औजार से छेद करके उन्हें वनाया गया था। उन छिद्रों के द्वारा उस कालकोठरी में शीतल हवा छन-छनकर आ रही थी। जव उसने छेदों की झांझरी पर अपना मुंह रखकर नीचे झांकने की चेष्टा की तो उसे कुछ दिखायी तो न दिया, किंतु नीचे वहते हुए जल की मर्मर ध्वनि अवश्य सुनायी दी। शायद वह कावुल नदी थी और वह उसी मकान में कैद था, जिसमें घुसने की उसने कोशिश की थी।

कालकोठरी के एक कोने में मिट्टी के वर्तनों के छोटे-छोटे टुकड़ों की एक ढेरी पड़ी थी। उसने उन टुकड़ों को जोड़-जोड़कर पूरे वर्तन का आकार वनाने की चेष्टा की और इस तरह अपने मन को लगाये रखा।

शुरू-शुरू में तो उसने यही आशा की थी कि कुछ देर उससे पूछताछ करने और यातना देने की कोशिश की जायगी, परंतु जैसे-जैसे पहर-पर-पहर वीतते गये, उसे लगने लगा, मानो वह जिंदा ही दफना दिया गया है और लोग उसे भुला वैठे हैं। उस एकांत कालकोठरी में उसका समय वीतता गया। न किसी के कदमों की आहट सुनायी दी, न किसी की बोली सुन पड़ी और न ऊपर से किसी प्रकार की आवाज ही आई।

शहावुद्दीन के मकान का पता लगाने में उसे कुछ दिन लग गये थे। एक-दो दुकानदारों से उसने शहावुद्दीन के वारे में पूछताछ की थी, शायद इसी कारण लोगों को उसपर संदेह हो गया था। जिस तीव्रता से उस पर आक्रमण किया गया था, वह उसे अभी तक याद था, आक्रमण-कारियों के शरीर से तेज वदवू निकल रही थी। चोट लगने पर जो तीव्र पीड़ा उसे हुई थी, उसका स्मरण भी उसे था। गिरने की सनसनाहट, सख्त, वेडौल पत्थरों से टकराकर शरीर के जगह-जगह छिल जाने की पीड़ा और फिर उसका बेहोश हो जाना—सभी एक-एक कर उसे

याद आ रहा था। उन लोगों ने उसकी तलवार को म्यान से निकालकर अपने कब्जे में करने की तकलीफ भी नहीं की थी। उसका खंजर अभी भी उसके अंगरखे की वांह में छिपा हुआ था। वह जरा-सा उछला और उस शीतल अंधकार में अपने शरीर को सिकोड़े पड़ा रहा। उसे यह वड़ा यंत्रणापूर्ण लग रहा था कि कावुल में अपने काम का श्रीगणेश उसने अच्छा नहीं किया।

अचानक उसे यह प्रेरणा हुई कि यहां से वचकर निकल भागने की कोई जुगत करनी चाहिए। वह घुटने मोड़ कर वैठ गया, पिंजड़े की ऊपर वाली छत के सीखचों से उसने अपने कंधे अड़ा दिये और वार-वार ऊपर की ओर धक्का मारने लगा। उसकी चमड़ी छिल गई और जोर लगाने से रीढ़ की हड्डी तक चरमरा उठी। अगर वह पिंजड़े की छत को किसी प्रकार उखाड़ पाता तो वह आसानी से खड़ा हो सकता या वैठ सकता था। किसी चीज की चूल ढीली करने की कोई गुंजाइश उसे नहीं मिली। पसीने से तर होता और दुश्मनों को कोसता हुआ भी वह अपनी कोशिश में जुटा रहा। इस वार पीठ के वल होकर मुड़े हुए पैरों की पूरी ताकत से उसने ऊपर की ओर जोर लगाया और इस तरह पिंजड़े की छत को उखाड़ने की जी-तोड़ कोशिश की। पहले की अपेक्षा इस वार जोर तो अच्छा लगा, लेकिन कोई चीज टस-से-मस न हुई।

अकस्मात् उसे ख्याल आया कि क्यों न पत्थर के चौके के जोड़ों को कुरेदा जाय? यह काम अधिक कठिन नहीं था। उसने अंगुलियों को मोड़कर मटियाले फर्श को थपथपाया और ऐसा करते हुए उसे पत्थर के चौकों के वीच एक जोड़ मिल गया। अपना खंजर उसने हाथ में ले लिया और उससे जोड़ को खुरचने लगा।

काम वड़ा वेतुका था। जरा भी हिलने-डुलने लायक जगह नहीं थी। अपने हाथों-पैरों को मोड़कर वह सिकुड़ा हुआ वैठा था। उसे बंदी बनाने-वाले बहुत दूर न होंगे और पत्थर पर खंजर की कुरेदन उन्हें सुनायी दे जायगी। जोड़ को खोदना कड़े परिश्रम का काम था। वहुत जल्दी उसका

दम फूल आया। वहुत सावधानी के साथ वह अपने काम में जुटा रहा। कुछ देर की चेष्टा के वाद उसने पत्थर के एक चौके की बाह्याकृति स्पष्ट कर ली, जिसकी लंवाई-चौड़ाई हाथ-हाथ-भर की थी। धीरे-धीरे जोड़ ढीला पड़ने लगा और खंजर उसके भीतर घुसता गया। वह दम लेने के लिए अपने नितंवों के वल वैठ गया और अंगुलियों के पोरों से उसने अपने ललाट पर झलक आया पसीना पोंछ डाला।

अव एक-एक पल कीमती था। हो सकता था कि पत्थर का चौका उठाने से पहले ही कोई आ धमकता और उसके काम में रुकावट डाल देता। उसने चौके के जोड़ को चारों ओर से कुरेद डाला, उसमें लगे पलस्तर को उखाड़ फेंका और दरार में खंजर की नोंक घुसेड़कर पत्थर को उठाने की कोशिश की। लेकिन पत्थर जरा हिला तक नहीं, शायद उतना ढीला नहीं पड़ा था, जितना उठाने के लिए जरूरी था।

उसने थोड़ा विश्राम किया। ऊपर से कोई आहट नहीं आ रही थी। कुछ देर वाद वह फिर अपने काम में जुट गया। इस वार उसने चौके को चारों तरफ से खोदना शुरू किया और जव उसके ढीला हो जाने का विश्वास हो गया तो धीरे से उठाने की कोशिश की। उसकी खुशी का पार न रहा, क्योंकि पत्थर पलास्तर में से उखड़ गया था। उसने चौके को उठाकर सीधा खड़ा कर दिया और रोक के लिए फौरन घुटना लगा दिया। उसे यह डर तो था ही कि कहीं चौका जोर की आवाज के साथ वापस नीचे न गिर पड़े। नीचे वहती हुई नदी को स्पर्श करके ठंडी नम हवा ऊपर को आने लगी थी। उसने वड़ी कृतज्ञता के साथ उसको अपने फेफड़ों में भर लिया।

वह केवल तेजी से वहते पानी की आवाज ही सुन सकता था। कोठरी में इतना अधिक अंधेरा था कि नीचे पानी दिखाई नहीं देता था। छेद के किनारे वैठकर उसने अपने पैर नीचे लटका दिये थे। फिर एक गहरी सांस लेकर वह आहिस्ते से पानी में उतर गया। पानी अधिक गहरा नहीं था, केवल उसके सीने तक आ रहा था, परंतु नदी के तल में कीचड़ था, जिसमें उसके पैर धंस गये।

उसने कान लगाकर सुनने की चेष्टा की। कहीं कोई आहट नहीं थी। वह जल्दी-जल्दी आगे बढ़ा और खुले में आ गया। अब वह नदी के दोनों किनारों की टिमटिमाती रोशनी को देख सकता था। यहां पानी कुछ अधिक गहरा था। वह पानी के बहाव के साथ आगे निकल गया। प्यास के मारे उसका गला सूख रहा था। उसने जी भरकर पानी पिया। तैरते-तैरते जब वह एक ऐसे घाट पर पहुंचा, जहां नदी के बाहर कुछ सीढ़ियां ऊपर की ओर जा रही थीं तो वह लगभग थक चुका था। शायद यह उस मुहल्ले का धोबी घाट था। जिस स्थान से वह तैरकर आया था, उससे यह घाट कितनी दूर था, यह अनुमान करना उसके लिए कठिन था। वह तैरकर किनारे पहुंचा और थकान से चूर पहली ही सीढ़ी पर गिर पड़ा। उसके शरीर में शक्ति नाम को भी नहीं रह गई थी।

काफी देर सीढ़ी पर निढाल पड़े रहने के बाद वह उठ खड़ा हुआ। सीढ़ियां चढ़ते हुए तारों-भरी रात की झिलमिलाहट में नदी के दोनों किनारों को वह देख सकता था। उसने शीतल हवा में जोर-जोर से गहरी सांसें लीं। उसके बायीं तरफ कुछ ही दूरी पर शायद वह मकान था, जिसमें उसे कैद किया गया था। नदी के तट पर अंधेरा छाया हुआ था। रात अधिक हो जाने से तटवर्ती अधिकांश घरों के चिराग़ गुल कर दिये गए थे और धुंधलके में उन मकानों की छतें बड़ी रहस्यमय लग रही थीं।

वह एक क्षण को रुका और फिर नगर की गलियों में से धीरे-धीरे गुजरता हुआ उस मकान की ओर चल दिया, जहां अपने ख्याल से वह पिछली शाम गया था। खाना पकाने की गंध से मिश्रित धुआं, जो घरों से निकलकर गलियों में आकर ठहर गया था, उसके नथुनों में समाने लगा। उसे बड़े जोर की भूख लगी थी, लेकिन यह समय भूख की बात सोचने का नहीं था। उसके बायें पैर में दर्द हो रहा था, इसलिए वह चलते समय थोड़ा लंगड़ाने लगा था। सैनिक होने के नाते उसने शिकार और शिकारी की कलाएं सीख रखी थीं। वह बहुत आहिस्ते-आहिस्ते दबे पांव चल रहा था। संकरी गली के पार पहुंचकर वह बायीं ओर मुड़ गया। अब वह दूरी सूचक

चिह्नों को पहचान सकता था। यहां से कुछ ही दूर उस धनी आदमी की जमींदारी थी, जिसमें एक आरामदेह सराय और भारतीय तथा फारसी माल वेचने की दुकानें थीं। अगले नुक्कड़ पर उसने गली के अंधेरे हिस्से को पार कर लिया।

दो आदमी उसका न जाने कव से पीछा कर रहे थे। अव वे इतना निकट आ गये थे कि वह उन्हें स्पष्ट देख सकता था। वे ऊंचे डील-डौल के मोटे-तगड़े आदमी थे। कभी वे ओट में हो जाते, कभी सामने आ जाते थे। तो उन्हें मालूम हो गया है कि वह निकल भागा है ! उसने तो सोचा था कि जब दुवारा शहाबुद्दीन के घर में घुसेगा तो लोग मारे आश्चर्य के ठगे-से रह जायंगे।

शहावुद्दीन का मकान वहां से अव कुछ ही कदम पर था। चरवी और लहसुन के भूने जाने की तेज गंध का झोंका उसकी नाक में घुसा। उसने वंशी की आवाज भी सुनी। शायद यह इस बात का संकेत था कि कोई आदमी दरवाजे पर आ रहा है। उसे याद आया, वंशी की आवाज उसने पिछले दिन भी सुनी थी।

उसका पीछा करनेवाले लोगों के कदमों की आवाज कंकरीली सड़क पर ज्यादा साफ और करीब होती जा रही थी। इससे उसे प्रसन्नता ही हुई। कालकोठरी की यातना भोग चुकने के बाद अपने को बंदी बनानेवालों के प्रति उसका मैत्री भाव न रह गया था, परंतु वह ऐसा कोई काम भी नहीं करना चाहता था, जिससे शहाबुद्दीन से उसकी भेंट के मार्ग में रोड़ा अटके। वह मकान के दरवाजे के पास पहुंचकर अंधेरे में खड़ा हो गया और उन दोनों आदमियों की प्रतीक्षा करने लगा। दोनों पीछा करनेवाले उसके बिल्कुल निकट आ गये और उन्होंने गली में भागने का रास्ता रोक दिया। जिस मकान में उसे घुसना था उसका दरवाजा सपाट खुला पड़ा था। अंधेरे के बावजूद दोनों के डीलडौल में उसे कोई संदेह नहीं रह गया था। दोनों ही हृष्ट-पुष्ट और लंब-तड़ंग थे।

उसने धीरे से लेकिन डपटते हुए उनसे कहा, "चले जाओ, चले जाओ !"

"अजनवी, क्या तुम चाहते हो कि तुम्हें तड़पा-तड़पाकर मार डाला जाय ?"

"तुम लोग हो कौन ?"

"तुम्हें चूहेदानी में वंद करनेवाले। क्या फिर वहीं जाना चाहते हो या उससे भी वदतर जगह ?"

आनंद ने आकस्मिक आक्रमण से वचने के लिए अपनी तलवार म्यान में से निकाल ली और चुनौती भरे स्वर में वोला, "कोशिश कर देखो।"

"वड़े जिद्दी मालूम पड़ते हो और वेवकूफ भी !"

इस वीच आनंद ने मोर्चेवंदी के लिहाज से स्थिति का अंदाज लगा लिया था। संकरी गली में वस इतनी-सी गुंजाइश थी कि एक वार में केवल एक ही आदमी उससे लड़ सकता था। आनंद ने अपने स्नायुओं में एक प्रकार का दवाव महसूस किया। राहत के लिए वह अपनी जगह से दो कदम पीछे हट गया और सोचने लगा कि अभी लड़ना ठीक रहेगा या इन लोगों को अपना परिचय देना ?

परिचय देना ही ठीक समझा। वोला "हिंदुस्तान से महवूव ने जिस अफजल को भेजा है, उसका नाम सुना है तुमने ? मैं आका के लिए खवर लेकर आया हूं।"

नाम लेना था कि उन पर जादू का-सा असर हुआ। वे कुछ देर उसे घूरते रहे। फिर दोनों ने एक-दूसरे की ओर देखा, उनकी आंखों में दुविधा का भाव था। तव उनमें से एक ने, जो शायद नायक था, दूसरे से कुछ कहा और थोड़ा रुककर आनंद को और गौर से देखते हुए वोला, "जाओ, अंदर चले जाओ।"

०

□ १६ शहाबुद्दीन की बेटी

खिड़की के पास खड़े होकर उसने देखा कि सूरज कुहरे की चादर को चीरकर आखिरकार बाहर आ ही गया है। काबुल के काले पत्थर के बने मकान, काबुल की पहाड़ियों की ढलवां चट्टानें, जो एक जगह नीली और दूसरी जगह काली या गुलाबी दिखायी देती थीं और उन पर खड़ी सघन वृक्षावलियां, जिन पर मानो मरकत की कूंची फेर दी गई हो—ये सब चीजें चमचमा उठी थीं। दिन बड़ा सुहावना था, इसलिए उसने स्वयं से कहा कि हर चीज दुरुस्त होने जा रही है।

उसी समय कबूतरों का एक झुंड अपने पंख फड़फड़ाता हुआ उधर से निकल गया, उनकी अर्धवृत्ताकार सुशोभन उड़ान ने सारे आकाश को कुछ देर के लिए तमसावृत कर दिया था। इस दृश्य ने उसे लुभा लिया और कबूतरों को उड़ाने के प्रति प्रशंसा के भाव से भर दिया। ये कपोत देश-विदेश से समाचार लाया करते थे।

आनंद को अफजल के नाम से शहाबुद्दीन के घर में रहते हुए कई दिन हो गये थे, परंतु गृहस्वामी से उसकी भेंट केवल एक ही बार हो पाई थी। उस रात वे दोनों आदमी उसके दोनों ओर संतरी की तरह खड़े हो गये थे और उन्होंने आदाब बजाते हुए कहा था, "हम आपके फरमाबरदार ताबेदार हैं, मगर आपको अपने हथियार बाहर ही छोड़ जाने होंगे।"

"तुम्हारी यह जुरंत ! जानते हो, मैं कौन हूं ? मुझे अपने मालिक के पास ले चलो।"

"पहले अपने हथियार तो हमारे हवाले कीजिए, जनाब।"

बड़े प्रशाल में रोषपूर्ण तर्क-वितर्क के स्वर गूंज उठे थे। उनके स्वरों से भी अधिक तीव्र एक स्वर दहाड़ उठा था, "इसे आने दो।"

उसको तुरंत भीतर ले जाया गया था। बारजे में कोई दरवाजा न था, सारा बारजा खुला था। उस तक जानेवाले गलियारे में घुप अंधेरा

था। वह शीघ्रता से चला। उसके विषय में यह बताया गया था कि वह महबूब की ओर से संदेश लेकर आया है, इसलिए उसकी आतुर प्रतीक्षा की जा रही थी।

भीतर अत्यंत शांति थी। शमादान में तेज रोशनी देनेवाली मोमबत्तियां जल रही थीं। कमरे में बुखारा के कालीन पर पालथी मारे एक वृद्ध व्यक्ति बैठा था, जो देखने में सम्माननीय जान पड़ता था। उसकी दाढ़ी सफेद हो चुकी थी। भौंहें थी ही नहीं। आंखें साधारण रूप से दूर-दूर थीं; कोई आदमी उसकी दोनों आंखों को एक साथ मुश्किल से ही देख पाता था। दृष्टि स्थिर, अचंचल और दूसरों के अंतर में पैठने की क्षमतावाली थी। जब किसी चीज पर टिक जाती तो ऐसा लगता था, मानो उसे निगल जायंगी या उसका पूरा अक्स अपने भीतर उतार लेंगी।

ज्योंही शहाबुद्दीन के सामने पेश किया गया, उसने आनंद को अपने आगे आकर बैठने के लिए कहा। बारजे को लाक्षा-निर्मित पात्रों, प्राचीन भारतीय तक्षण-शिल्प के नमूनों और रेशमी साटन आदि से सुरुचिपूर्ण ढंग से सजाया गया था। आनंद के पीछे की ओर का दरवाजा, जो शायद शयन-कक्ष में खुलता था, ठोस लकड़ी का बना था और उसमें हाथी दांत के बेल-बूटे बने हुए थे। जरदोजी के काम का एक पर्दा उसके ऊपर लटक रहा था।

आनंद को भीतर लाने वाले दोनों आदमी उसे वहां तक पहुंचाकर तुरंत बाहर चले गये थे। गरम-गरम कॉफी से भरी चीनी मिट्टी की एक नीली प्याली शहाबुद्दीन की कुहनी के पास रखी थी, जिसमें से वह बिना आवाज किये कॉफी पी रहा था। उसने आनंद से कॉफी पीने को नहीं पूछा।

"तुम जल्दी ही तंदुरुस्त हो गये लगते हो, यह बड़ी अच्छी बात है।"

"जब आप जानते थे कि मैं आपके ही पास आ रहा हूं तो मुझे इतनी सांसत में क्यों डाला गया ?"

"यह मैं कैसे जानता कि महबूब ने जिस आदमी को भेजा, वह तुम्हीं हो ? यहां तो जो भी बिना इजाजत भीतर आने की कोशिश करता है, उसके साथ ऐसा ही सलूक किया जाता है।"

आनंद सिर झुकाकर चुप हो गया था। इस दलील के आगे वह कहता भी क्या ?

"मैं कई दिनों से तुम्हारा इंतजार कर रहा था। हमारा अजीजमन महबूब खुद क्यों नहीं आया ?"

आनंद ने अपने भीतर एक कंपन का अनुभव किया था। कहीं शहाबुद्दीन को महबूब के बारे में मालूम तो नहीं हो गया ? फिर उसने सोचा था, जब ऊखली में सिर दिया तो मूसलों से क्या डरना ! उसने गोलमोल जवाब दिया था, "वे खुद नहीं आ सके, क्योंकि आ नहीं सकते थे। वजह आप जानते ही होंगे।" आनंद को पता था कि मुक्त रहने तक महबूब सारी घटनाओं का विवरण शहाबुद्दीन को भेजता रहा था। अपनी ओर से कुछ भी छिपाना उसने उचित नहीं समझा था।

वह बड़ी देर तक बातें करता रहा था। हर घटना का वर्णन उसने पूरी ईमानदारी और सच्चाई से किया था। जब उसने बताया कि उदयपुर के राणा किसी काले चूर्ण के विस्फोटक गुणों का परीक्षण कर रहे हैं तो शहाबुद्दीन की काली आंखों में कुछ क्षण के लिए शोला-सा जल उठा था। कानों के पास उसके जबड़े की पेशियां आपस में चढ़ गई थीं। ऐसा लगा था, मानो उसने सुनकर दांत पीसे हों।

"हां, हमारे पास भी यह काली बुकनी है। उसे हम उस वक्त इस्तेमाल करते हैं जब इस घाटी में किसी दुश्मन को आने से रोकना चाहते हैं। उस हालत में हम इस बुकनी की मदद से बड़ी-बड़ी चट्टानों को उड़ा देते हैं।"

आनंद घुमा-फिराकर एक ही बात को दुहराता रहा था, जबकि शहाबुद्दीन ने मुश्किल से ही कुछ शब्द कहे थे। आनंद ने अपने तक्षशिला जाने की बात नहीं बतायी, शेष यात्रा-वर्णन ब्यौरेवार सुना दिया था। उसने यह भी बतला दिया था कि यहां आने पर उसके साथ कैसा व्यवहार किया गया था। जितनी देर तक आनंद बातें करता रहा, शहाबुद्दीन की काले शीशे-सी चमकती आंखें एक क्षण के लिए भी उसके चेहरे से नहीं हटी थीं।

"यहां आने के बाद तुम्हें बहुत दिक्कतें उठानी पड़ी हैं। बेहतर है, तुम

कुछ आराम कर लो।" हाथ के एक इशारे से उसने आनंद को वहां से चले जाने को कहा। जिन दोनों आदमियों ने उसे वहां तक पहुंचाया था, वे उसे वापस ले जाने के लिए सहसा भूतों की तरह उपस्थित हो गये थे।

जब वे उसे उसके लिए निर्धारित कक्ष की ओर ले जा रहे थे, शहाबुद्दीन ने चिल्लाकर उसे वापस बुलाया। एक भिन्न प्रकार की आवाज सुनकर आनंद को आश्चर्य हुआ था। वह स्वर एक सेनापति का था, "बेशक, तुम जहां चाहो, घूम-फिर सकते हो, मगर दिन के वक्त कहीं मत जाना। एक नया चेहरा देखकर लोगों को शुबहा हो सकता है।"

आनंद को बात अच्छी लगी थी, क्योंकि उसके अनुकूल थी। उसे डर भी था कि काबुल में उसका कोई परिचित न मिल जाय। मिल जाता तो भंडा ही फूट जाता।

इतने दिन विश्राम करने के पश्चात् आनंद शारीरिक और मानसिक दृष्टि से अपनी पूर्व स्थिति में आ गया था। कुछ दिनों के तक्षशिला-प्रवास और काबुल तक की यात्रा ने उसका सारा मोटापा झाड़ दिया था, इससे उसकी दृढ़ मुखाकृति कुछ खूंख्वार-सी लगने लगी थी, लेकिन इसके साथ ही उसकी त्वचा अधिक स्वस्थ होकर और गहरा रंग पा गई थी। आंखें पहले की ही भांति पैनी थीं और कुल मिलाकर उसके सौंदर्य को विशेष क्षति नहीं पहुंची थी।

दिन-भर निठल्ला रहने से वह अधीर होता जा रहा था, और उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए क्या करे? न उसके पास यह जानने का ही उपाय था कि भारत से कबूतर क्या खबरें ला रहे हैं। यह डर भी भीतर-ही-भीतर कुतरता रहता था कि अगर शहाबुद्दीन को महबूब की गिरफ्तारी के बारे में मालूम हो गया, तो उसका जीवित लौटना असंभव हो जायगा।

इस समय सवेरे-सवेरे इन्हीं विचारों में डूबते-उतराते उसने अपने कमरे का दरवाजा खोला। खाना पकने की तेज गंध उसकी नासिका में

समा गई। वह छोटे गलियारे में से होता हुआ घूसर पत्थरों के चौकों से जटित सुविधा-संपन्न रसोईघर में जा पहुंचा और वहां रखी लकड़ी की एक भारी-भरकम वेंच पर वैठ गया। फिर वह यह सोचकर खड़ा हो गया कि कोई यह न सोच ले कि वह इतनी जल्दी अपने को इस घर का प्राणी समझने लगा है। उसने वड़े गौर से रसोईघर की एक-एक चीज को देखा। वेदागदार कढ़ाहों और देगों, काठ के वेंटवाले चाकुओं और लंवे चमचों में भी उसने कोई नुक्स निकालने की कोशिश की। एक तरफ उसने मसालों से भरी वनियां देखीं। वह उस जगह आया जहां कतार में वहुत-से पीपे सजे थे। उनमें से एक का ढक्कन उठाया और उसमें रखे खाद्य पदार्थ को दूर से ही सूंघा। उसे उसकी महक इतनी अच्छी लगी कि चखने का लोभ संवरण न कर सका और ढूंढ़कर एक चम्मच ले आया। ठीक तभी अपने पीछे उसे एक आवाज सुनायी दी, "क्या खाना निकालने जा रहे थे ?"

आनंद ने घूमकर तीव्र दृष्टि से आगंतुक की ओर देखा। वह एक छरहरे वदन की लड़की थी, जिसका चेहरा सौंदर्य की कांति से दमक रहा था, आंखें गहरी थीं और केश काले। अपने चेहरे पर पड़े वुर्के को उसने कमरे में आने से पहले ही उलट दिया था। भारतीय रेशम की वनी उसकी कुर्ती कसी हुई थी और कठोर कुच सामने की ओर उभरे हुए थे। अपने गले में उसने सोने की एक सादी जंजीर पहन रखी थी और नाजुक कलाई में सोने का ही एक सादा दस्तवंद।

खिड़कियों से छनकर आती हुई धूप उसके चमकीले चेहरे को और भी प्रभायुक्त और सौंदर्य को दिव्यता प्रदान कर रही थी। आनंद इस सौंदर्य की प्रतिमा को मंत्र-मुग्ध देखता रह गया।

"...मैं...मैं ? ओह..." पीपे पर ढक्कन को पूर्ववत रखते हुए कुछ सहमी-सहमी मुस्कान के साथ वह वोला, "नहीं, मैं तो इसे देख-भर रहा था।"

"तशरीफ रखिए, जनाव ! अगर आपका कोई दूसरा इरादा न हो तो..."

"नहीं, मेरा कोई दूसरा इरादा नहीं है। लेकिन क्या कोई आदमी…"

"अगर आप अपनी आवाज थोड़ी धीमी रखेंगे, तो कोई आदमी यहां नहीं आयेगा।" उसने एक चम्मच लेकर पीपे में से गरम शोरबा निकाला और लकड़ी के एक प्याले में परोसकर आनंद के सामने रख दिया। फिर एक दूसरी बेंच खींचकर वह आनंद के सम्मुख बैठ गई।

वह धीरे-धीरे शोरबे को घूंट-घूंटकर पीता और मन में यह विस्मय करता रहा कि आखिर यह लड़की कौन है ?

"आप जानना चाहेंगे कि मैं कौन हूं। मैं नफीजा हूं, शहाबुद्दीन साहब की बेटी।"

"कहां तुम और कहां मैं ? क्या तुम्हारे वालिद, हमारा इस तरह मिलना पसंद करेंगे ?"

"बेशक नहीं, हालांकि उन्होंने मुझे काफी आजादी दे रखी है।"

"तो यह तुमने पकाया है ?" पीपे की ओर संकेत करते हुए आनंद ने कहा, "वाकई, बहुत जायकेदार बना है। इस तरह का शोरबा मैंने पहले कभी नहीं चखा था।"

"नहीं, इसे पकाया है मेरी बूढ़ी धाय ने, जो यहीं रहती है। मेरे पिता जवान थे, तभी से वह हमारे घर में बच्चों की देख-भाल करती रही है। वह बहुत अच्छी बावर्चिन भी है।"

आनंद ने सिर हिला दिया और चम्मच को प्याले में रखते हुए बेंच पर एक ओर सरका दिया, फिर बोला, "लेकिन तुम खूबसूरत हो।"

नफीजा ने अपनी लंबी काली बरौनियों से उसकी ओर एक मदभरा कटाक्ष किया और दोनों हाथों को अपने घुटनों पर रख लिया।

यद्यपि आनंद को बहुत-सी सुंदरियों से मिलने का अवसर मिला था, लेकिन आज तक किसी ने उसके हृदय में कोई संवेदना नहीं जगायी थी। स्त्रियों के प्रति वह हमेशा उदासीन और भावनाशून्य ही रहा था। आज उसने अपने भीतर आश्चर्यजनक परिवर्तन अनुभव किया। उसे लगा, वह इस लड़की के सम्मोहन में खिंचा जा रहा है। उसे अपना यह व्यवहार

कुछ अजीव-सा मालूम हुआ, अपने ऊपर क्रोध आया और झुंझलाहट भी हुई। इस नवजात भावना से संघर्ष करने का वह पूरी शक्ति से प्रयत्न करने लगा।

उसने पहले तो प्याले में रखे चम्मच की ओर देखा और फिर नफीजा के आश्चर्यजनक रूप के सुंदर हाथों को। अव वात आगे कैसे वढ़ाई जाय, यह न समझ पाने के कारण उसने चम्मच से वेसुरे ढंग से लकड़ी के प्याले को ठोकना शुरू कर दिया। लेकिन अपनी इस भोंड़ी हरकत पर जैसे ही उसका ध्यान गया, उसने चम्मच को प्याले में वापस रख दिया।

"शुक्रिया !" उसने निरुद्देश्य भाव से उसकी ओर देखा।

वे कुछ देर तक इसी तरह खलनेवाली चुप्पी साधे बैठे रहे और एक-दूसरे के हाथों को निरखते रहे। कुछ क्षण पश्चात आनंद ने नफीजा के चेहरे की ओर देखा। वह उसे पहले से कहीं अधिक सुंदर दिखायी दी। उसकी देह-यष्टि थी ही ऐसी कि जिस भी पुरुष को वह अपनी गहरी नीली आंखों से एक वार देख लेती, उसी के हृदय में स्पंदन होने लगता था।

अगले ही क्षण, उसे इस तरह गुमसुम बैठे रहने की अशिष्टता का अहसास हो गया। उसने शीघ्रता से अपना मुंह फेर लिया। फिर खड़ा होकर वोला, "अब मुझे चलता-फिरता नजर आना चाहिए।" यह कहते हुए वह नफीजा की ओर देखकर मुस्कराया। उसकी मुस्कान में माधुर्य था। इसके वाद विना कुछ वोले वह वहां से चलने को उद्यत हुआ।

वह उसके साथ-साथ दरवाजे तक आई और जवतक उसने गलियारे का छोटा रास्ता पार नहीं कर लिया, उसे देखती हुई वहीं खड़ी रही। अपने कमरे के दरवाजे पर पहुंचकर आनंद ने एक बार उसे मुड़कर देखा और देखता ही रह गया।

उसके चेहरे की ओर देखते हुए नफीजा को बार-बार यह कुतूहल हो रहा था कि इस मर्द के चेहरे में ऐसी क्या बात है, जो यह औरों से विलकुल जुदा लगता है ?

यह सच था कि वह देखने में सुंदर था, लेकिन इससे भी 'अधिक उसमें कुछ था। उसकी आंखों में आम मर्दों-जैसा छिछोरापन नहीं, वल्कि

एक तरह की संजीदगी और कुछ विचित्रता भी थी। कुल मिलाकर ऐसा आभास होता था, मानो वह अपने को संयमित रखने की चेष्टा कर रहा हो।

"उसके मन में जरूर कोई रहस्य है, जिसे वह छिपा रहा है।" नफीजा ने अपने आपसे कहा। अपने इस सहज-बोध को वह किसी तर्क से अवश्य प्रमाणित नहीं कर सकती थी, लेकिन उसे देखते ही एक वात का निश्चय उसको हो गया था कि यह आदमी धोखा नहीं देगा।

उसने यह प्रदर्शित करने के लिए अपने हाथ से एक शोभन इंगित किया कि वह अपनी सुंदरता की मनमोहिनी शक्ति से अपरिचित नहीं है। इसके वाद वह प्रशाल की ओर चल दी और आंखों से ओझल हो गई। आनंद अपने कमरे के दरवाजे पर खड़ा-खड़ा उसकी ओर एकटक देखता रहा। वह एक हल्की, कोमल, मंद हँसी हँसा और फिर उसने अपना दरवाजा वंद कर लिया।

अपने कमरे के सुरक्षित आश्रय-स्थल में आकर वह पलंग पर वैठ गया। अपनी ठुड्डी को दोनों हाथों के वीच थामे वह सोचने लगा—मुसलमान अपनी औरतों के वारे में वहुत सावधानी वरतते हैं, फिर क्या कारण है कि शहावुद्दीन की वेटी उससे मिलने के लिए इतनी स्वतंत्रता के साथ आ सकी? इसमें शहावुद्दीन की तो कोई चाल नहीं? क्या उसने शहावुद्दीन का इतना विश्वास संपादन कर लिया कि उसे अपनी वेटी को उसके पास भेजते कोई हिचक नहीं हुई? कहीं उसने उसे अपना दामाद वनाने का इरादा तो नहीं कर लिया है? अगर उसने नफीजा की शादी उससे करनी चाही, तो क्या होगा? नहीं वह औरतों के फेर में नहीं पड़ेगा। जिस उद्देश्य को लेकर वह यहां आया है, उसकी पूर्ति में शिथिलता और प्रमाद कदापि क्षम्य नहीं हैं। उसे कोई उपाय सोचना ही होगा। इसी तरह के विचारों में वह वहुत देर तक खोया रहा।

कभी उसे अपने उद्देश्य का ख्याल आता और कभी मन नफीजा के रूप-सौंदर्य में भटक जाता, यहां तक कि उसका मन बहुत अशान्त हो गया और वह अपने विस्तर से उठ खड़ा हुआ। आखिर उसने निश्चय किया कि

वह शत्रु की बेटी के आगे अपना हृदय नहीं हारेगा; उसे अपने आपको इस्पात की तरह कठोर बनाना ही होगा। वह अपने देश के साथ विश्वास-घात कैसे कर सकता है ? जिन बातों का पता लगाने के लिए वह इतनी दूर आया है, उसके लिए जो भी संभव है वह करेगा। किसी को, यहां तक कि अपनी कोमल भावनाओं को भी वह बाधक नहीं बनने देगा।

उसने अपने अतीत पर दृष्टिपात किया। कितना सुखी था वह बचपन में। नन्हें साथियों के साथ खूब खेलता-खाता रहता था। मां के प्रति असीम श्रद्धा थी उसकी। वह थी भी विशेष प्रकार की नारी, उसमें गजब की सुंदरता थी। रात को उसके बिस्तर पर आकर बैठ जाती, उसका सिर अपनी गोद में ले लेती और लोरी गाकर सुनाती थी। बड़ा हो जाने पर अब भी उदास हो जाता था तो मां उसे सांत्वना दिया करती थी। वह उसे धीरज बंधाती और समझाती कि परेशानियों से घबराना नहीं चाहिए, उन्हें दूर करने का उपाय सोचना चाहिए।

वह उद्विग्न मन खिड़की के पास खड़ा हो गया और बाहर देखने लगा। सामने मटमैले रंग का एक बड़ा पुराना-सा मकान और उसके पार्श्व में काबुल नदी का चौड़ा पाट चांदी की तरह चमचमा रहा था।

बड़ा होने और काम-धंधे में लग जाने के बाद आनंद के जीवन में स्त्रियां आने लगीं, जिनके बारे में उसने कभी गंभीरता से नहीं सोचा। परंतु इस नफीजा में न जाने ऐसा क्या था कि उसे देखते ही मन में प्रेम की हिलोर उठने लगती थी।

□ १७ सरकिया खेल

राजमती को वह दिन याद हो आया, जब वधू के रूप में उसने अपने महल को पहले-पहल देखा था। रेगिस्तान पार करने के बाद वे लोग एक

हरी-भरी उपत्यका से गुजरे थे। नगर के निकट आने पर राजमती ने अपने चेहरे पर झील की ठंडी हवा का सुखद स्पर्श अनुभव किया था।

जैसे ही उनका काफिला करीब आया, बड़ी-बड़ी नुकीली कीलें जड़ा, किले की सदर ड्योढ़ी का विशाल द्वार खुल गया। ड्योढ़ी की बुर्जियों पर लंबे-चौड़े पर्दों-जैसी पताकाएं उसके स्वागत में फहरा रही थीं। सुंदर, सफेद अंगरखे पहने और सुनहली जरी के कमरबंद बांधे पहरेदार वहां तैनात थे। उन्होंने अपने सिर पर लहरियों और चुनड़ी के साफे बांध रखे थे, जिनका पीछे की ओर लटकता लंबा छोर मंद पवन में फरफरा उठता था। जब राजमती का रथ उनके पास से गुजरा तो सभी के सिर सम्मान में झुक गये।

हल्के पीले रंग के संगमरमरी खूबसूरत चौड़े जीने की सीढ़ियां चढ़कर वह ऊपर पहुंची। जीने की खिड़कियां अना सागर झील की ओर खुलती थीं। लंबे बरामदे को पारकर वह एक बड़े प्रकोष्ठ में प्रविष्ठ हुई। शानदार बागीचे के सुंदर दृश्य को देखकर वह चकित रह गई। बागीचा तो उसके पीहर के महल में भी था, परंतु उसकी बनावट कुछ और ढंग की थी। उसे ऐसी जगह लगाया गया था, जहां अनौपचारिक रूप से घूमा-फिरा जा सकता था। परंतु इस बागीचे का राजसी ठाठ था। करीने से कटे-छंटे बाड़े, हरी-भरी झाड़ियों को काट-तराश कर बनाये गए मोर और बागीचे की निर्दोष संरचना बागवानी और कटाई-छंटाई की कला का एक चमत्कार ही थी।

वह बीसलदेव के साथ बाहरवाले चबूतरे पर गई और दोनों वहां चंदोवे के नीचे, जहां संगमरमर का एक खूबसूरत नाक्काशीदार फव्वारा था, काफी देर तक बैठे रहे। चबूतरे के नीचे से हर समय स्फटिक, निर्मल जल की फुहारें छटती रहती थीं। किले की दीवार के उस पार मंदिरों के शिखर दिखायी पड़ते थे। उनमें बजती हुई घंटियों की आवाज सुनाई पड़ रही थी।

राजा बीसलदेव से विवाह हुए अभी कुछ ही महीने हुए थे, लेकिन

इस बीच उसे पता चल गया था कि रानी के नाते उसके बहुत सारे कर्त्तव्य हैं। बीसलदेव अपनी सेना को सुसज्जित करने में लग गये थे, परंतु वह भी खाली नहीं बैठी थी। राज्य के द्वारा किये जानेवाले प्रजा के कल्याण-संबंधी कार्यों की देखभाल का जिम्मा उसने ले लिया था। चिकित्सालयों की देखरेख के साथ-साथ मंदिरों की व्यवस्था भी वही करती थी। विद्वानों की सुख-सुविधा, उनके भरण-पोषण का वह विशेष ध्यान रखती थी। अपनी प्रजा के पारिवारिक झगड़ों का निपटारा भी करना पड़ता था।

इस प्रकार राजमती राज्य के शासन की बागडोर संभाले हुए थी, और बीसलदेव अपना सारा ध्यान सेना को सबल बनाने की ओर लगाये हुए थे। समर-विज्ञान, रण-कौशल और सैनिक अनुशासन सदा से उनके प्रिय विषय थे। वे जानते थे कि जिन राजाओं ने भोग-विलास के विषय में अधिक सोचा और अस्त्र-शस्त्रों के विषय में कम, उन्हें अपने राज्यों से हाथ धोना पड़ा था।

राजमती के आने और राज-प्रबंध में हाथ बंटाने से उन्हें सैनिक तैयारियों के लिए काफी समय मिलने लगा। वे अपने सैनिकों के शारीरिक और बौद्धिक प्रशिक्षण में जुट गये। राजनीति का यह सूत्र उन्हें बहुत पहले ही हृदयंगम हो गया था कि युद्ध-काल की अपेक्षा शांति-काल में युद्ध-कला के प्रशिक्षण पर अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए।

अपने सैनिकों को भली प्रकार संगठित और प्रशिक्षित करने के अतिरिक्त वे कई बार शिकार खेलने के लिए निकल जाते थे। इस तरह वे अपने शरीर को कठिनाइयां झेलने का अभ्यस्त बनाते और साथ ही व्यावहारिक भूगोल की, जैसे पहाड़ी ढलानों, घाटियों और दूर-दूर तक फैले रेगिस्तान की जानकारी भी प्राप्त करते थे। रेगिस्तान के किसी खास हिस्से को पार करने में कितना समय लगता है, इसकी जांच भी वे करते थे। वे यह जानते थे कि कोई राजा जबतक अपनी सेना का संचालन अपने हाथ में नहीं रखता और श्रेष्ठ युद्ध-कौशल के लिए अपने सैनिकों का सम्मान-भाजन नहीं

बनता, तबतक अपने सिंहासन पर निश्चिंत होकर नहीं बैठ सकता। उसे अपना सिंहासन के छिन जाने की आशंका बराबर बनी रहेगी। अब चूंकि समय और अवसर दोनों ही मिल गये थे, वह किसी भी प्रकार के संकट का सामना करने के लिए अपने को तैयार करने में जुट गये थे।

बीसलदेव का अस्तबल बहुत बड़ा था। वह सख्त पत्थर का चौकोर अहाता था, जिसकी छत कई खम्बों पर टिकी थी। उस अहाते में घोड़े की लीद, पेशाब, घास-फूस, चमड़े और मोम की दुर्गंध निरंतर भरी रहती थी। उस अस्तबल में चार नये घोड़े हाल ही में आये थे। उन पर अरबी साईस खरहरा कर रहे थे। एक दास उनके शिरदामों को साफ कर रहा था। वे शिरदाम बड़े भड़कीले थे, उनमें सोने की चमचमाती पट्टियां लगी थीं और उनके ऊपर लाल रंग की कलंगी शोभा पा रही थी। घोड़े बहुत सुंदर, हट्टे-कट्टे और बलिष्ठ थे। उन पर अधिक सवारी की गई हो, ऐसा नहीं जान पड़ता था। उन्हें किसी अरब देश के शाह ने राजा बीसलदेव को भेंट किया था। बीसलदेव ने भी बदले में अपनी ओर से एक उतनी ही आकर्षक भेंट भेजी थी।

अस्तबल का निरीक्षण करके बीसलदेव राजमती के उद्यान में आये। उद्यान के परकोटे के भीतर बहुत शांति थी। बीसलदेव द्वारा इन दिनों की जानेवाली युद्ध-संबंधी तैयारियों की तुलना में यह शांति सुखकर और प्रियकर थी। वहां का एकांत उन्हें अच्छा लगता था। जब-तब वे राजमती के साथ वहां कुछ समय बिताकर अपने तन-मन को विश्राम दे लिया करते थे।

अकसर राजमती उनके पांवों के पास बैठ जाती, हवा में उसके बाल उड़ते रहते और पहेलियों, बुझव्वलों तथा कथा-कहानियों के द्वारा वह उनका मनोरंजन किया करती।

परंतु आज उन्हें और काम भी था। जो दूत अरबी घोड़ों को लेकर आया था, उसे उनके सामने उपस्थित किया गया। दूत ने बहुत भ्रमण किया और अनेक देश देखे थे।

बीसलदेव ने उसे देखा और मुस्कराकर बोले, "कृपया बैठ जाइए।

लम्बा सफर करने की वजह से आप थक गये होंगे, अपने को तरोताजा कर लीजिए।"

दूत ने झुककर अभिवादन किया और मुस्कराया, किंतु वह बैठा नहीं।

"महमूद के क्या हालचाल हैं ? उसके नये अभियानों के बारे में क्या आपने कुछ सुना है ?" बीसलदेव ने पूछा।

"राजाधिराज महमूद तो असल में लुटेरा है। आपको विजेताओं के रण-कौशल से युद्ध-नीति का अध्ययन करना चाहिए।" दूत ने उत्तर दिया।

बीसलदेव दूसरे लोगों की बातों को बड़े गौर से सुनते थे। दूत अपने ज्ञान का प्रदर्शन करना चाहता था। उसने बीसलदेव को मोड़िया और फारस के धनुर्धरों के विषय में बताया और मिसाइया की घुड़सवार-सेना के बारे में भी जानकारी दी। उसने कहा कि वहां के घोड़े ऊंचे डील-डौल और मजबूत काठी के होते हैं। किसियाइयों, असीरियाइयों, खुरासानियों और अबीसीनियाइयों की अपनी-अपनी विशेषताओं पर भी उसने प्रकाश डाला। उसने बताया कि किसियाई और असीरियाई सैनिक जब कांस्य-शिरस्त्राण में, लोह-कीलों से जड़ित गदाओं को धारण कर के निकलते हैं, तब उनकी शोभा देखने योग्य होती है। खुरासानियों के धनुष-बाणों और उनकी ललकारों के सामने बड़ी-बड़ी शत्रु-सेनाओं के छक्के छूट जाते हैं। शेर और चीते की खाल पहने हुए अबीसीनियाइयों के तीरों का निशाना अचूक होता है। उसने अपने शहंशाह की भी प्रशंसा की और बताया कि ईसाई धर्मयोद्धाओं ने जब भी उन पर हमले किये, हर बार उन्हें मुंहकी खानी पड़ी।

अचानक बात जहां-की-तहां रह गई। बीसलदेव ने अपने महामात्य संग्राम को तेज कदमों से आते देखा। संग्राम एक क्षण दरवाजे पर रुका, चारों तरफ ध्यान से देखा कि भीतर कौन हैं और तब अंदर आकर बोला, "एक गुप्तचर ने अभी-अभी आकर सूचना दी है कि सोलंकी चौलुक्यों को साथ लेकर पूर्व की ओर बढ़ते आ रहे हैं। उनका लक्ष्य निश्चय ही हम हैं।"

बीसलदेव मंत्रि-परिषद् की बैठक बुलाने का आदेश देकर फौरन दरबार में पहुंचे। उनके आते ही उपस्थित सभी मंत्रिगण तथा सभासद् खड़े हो गये। सबके चेहरे पर व्यग्रता और राजभक्ति के साथ-ही-साथ दृढ़ आत्म-विश्वास झलक रहा था।

दीपक के प्रकाश में बीसलदेव की श्वेत दंतावलि चमक उठी। दांत पीसते हुए उन्होंने कहा, "आपको पता है, पिछली बार हमने चकमा देकर चुपचाप सरक जाने का खेल खेला था। इस बार की लड़ाई में हम उसी को आजमायंगे। हमारी घुड़सवार सेना के पंद्रह हजार जवान उत्तर की ओर कूच करेंगे। देखनेवाले यही समझेंगे कि वे पंचनद-प्रदेश की ओर जा रहे हैं। शत्रु के गुप्तचर उन्हें उत्तर की ओर जाता देखकर अपने राजाओं को खबर कर देंगे। उधर हमारी अश्वारोही सेना आगे जाकर कहीं छिप जाएगी और हमारे संकेत की प्रतीक्षा करेगी।"...

"और संकेत पाते ही वह चुपके से पहाड़ी का चक्कर काटकर शत्रु की सेना पर पीछे से आक्रमण कर देगी।" संग्राम आवेश में आकर चिल्ला उठा।

बीसलदेव हंस पड़े। उन्होंने सुबाहु की ओर देखा। जो काम पहले आनंद के जिम्मे रहा करते थे, उन्हें अब सुबाहु करता था। उसे मालूम था कि कैसे-क्या करना है। किंतु उसके मन में शंका थी, पूछ ही बैठा, "क्या वे लोग इतने बुद्धू हैं कि ऐसी सरल बात भी नहीं समझेंगे ?"

"कभी-कभी साधारण चालाकी ही काम कर जाती है," बीसलदेव ने कहा। संग्राम और सुबाहु तैयारी के लिए वहां से साथ-साथ चल दिये।

बीसलदेव का दुर्ग शत्रु का सामना करने के लिए हर दृष्टि से तैयार था। सब लोग अपने-अपने काम पर तैनात थे। अस्त्र-शस्त्र-सज्जित सेना भी पर्याप्त थी। छोटे-बड़े गोफन उपयुक्त स्थानों पर रखवा दिये गए थे। सारी तैयारियां की जा चुकी थीं। अब तो केवल चौकसी रखना ही शेष था। शत्रु-सेना की गति-विधि के संबंध में गुप्तचर बीसलदेव को बराबर सूचनाएं दे रहे थे। पांचवें दिन शत्रु-सेना की टोह उन्हें मिली।

प्रतिहिंसा से उन्मत्त चौलुक्यों और सोलंकियों की सम्मिलित सेना धीमी गति से आगे बढ़ती आ रही थी। वे चीखते-चिल्लाते, अपने भाले-बर्छों को उछालते अस्त-व्यस्त रूप से चल रहे थे। पंक्ति-बद्धता और अनुशासन का उनमें अभाव था। किले के इर्द-गिर्द की रेत-मिश्रित मिट्टी को उनके घोड़े अपने सुमों से खूंद रहे थे, परंतु मिट्टी के भुरभुरी होने के कारण आवाज सुनायी नहीं देती थी। अस्ताचल को जाने से पूर्व सूर्य शत्रु की अश्वारोही सेना के पीछे से झांक रहा था। बीस हजार अश्वारोहियों के पीछे-पीछे तीस हजार पैदल सेना भी आ गई थी। ये सारे सैनिक किले पर घेरा डालने की नीयत से फैल गये। किले में घुसने के लिए वे किसी कमजोर जगह की तलाश में थे।

बीसलदेव के सैनिकों ने अपनी ओर से कोई पहल नहीं की। वे शत्रु-सेना के अगले कदम की प्रतीक्षा करते रहे। दुर्ग की रक्षा के लिए बाहर कोई सेना तैनात नहीं की गई थी। शत्रु की गति-विधि से लगा कि उस रात कोई कार्रवाई करने का उसका इरादा नहीं है।

पिछली शाम की तरह अगली सुबह भी शांत रही। लेकिन शत्रु-सैनिक ज्योंही किले की दीवार के समीप आये, भीतर से बाणों की एक बौछार उन पर पड़ी। गोफनों के द्वारा फेंके गये बड़े-बड़े शिलाखंडों की बरसात भी होने लगी। अब शत्रु ने किले को हथियाने के लिए धावा करने के बजाय किले के चारों ओर घेरा डालने और बीसलदेव को भूखों मार डालने का फैसला किया।

एक सप्ताह बीत गया, कोई भी नई घटना नहीं घटी। चौलुक्य और सोलंकी सैनिकों को कुछ चैन आ गया। वे किले पर निगरानी रखते रहे। आठवें दिन, सुबह-सुबह उनके पीछे की एक छोटी पहाड़ी पर घुड़सवार सेना की एक बड़ी टुकड़ी दिखायी दी। हंसिये की तरह फैलती हुई वह सेना धीमे-धीमे शत्रु-सेना के पृष्ठ-भाग की ओर बढ़ती आई। तभी अचानक किले के फाटक खोल दिये गए और बीसलदेव के तीस हजार सैनिक बाहर निकल पड़े। चौलुक्य-सोलंकी सेना के सम्मुख एक विशाल

अनुशासित सेना की बाढ़ आ गई।

शत्रु सेना शिकंजे में फँस गई। यद्यपि उनके सेनापति ने आदेश दे दिया था, लेकिन सैनिक उसको लेकर आपस में 'तू-तू मैं-मैं' कर रहे थे। अंत में कोई चारा न देख उन्होंने झटपट अपनी मोर्चाबंदी की और दो मोर्चों पर एक साथ लड़ना शुरू किया। देखते-देखते ढालों से ढालें टकरा गईं, घोड़े जोर से हिनहिना उठे, सैनिक चीखने-चिल्लाने लगे। सेना की हर टुकड़ी गला फाड़-फाड़कर अपना-अपना जयघोष करने लगी। अधिकारी गरज-गरजकर आदेश दे रहे थे और भेरियां बज रही थीं। जब कोई हृदय-विदारक चीख सुन पड़ती तो पता चलता कि मानव-देह कितनी भीषण और असह्य पीड़ा अनुभव कर सकती है। इस सारे कोलाहल के ऊपर दमघोंटू धूल का गुबार आसमान में बादल की तरह मंडरा रहा था।

दिन-भर लड़ाई होती रही। अचानक हमला हो जाने से शत्रु का पलड़ा शुरू में ही हल्का पड़ गया था। रात होते-होते लड़ाई रुकी। बीसल-देव के सैनिक पूरी तरह सावधान थे कि कहीं रात को शत्रु धोखा न दे दे। अर्द्ध रात्रि में बीसलदेव को दबा-दबा कोलाहल सुनायी दिया। वे तुरंत समझ गये कि इसका अर्थ क्या है। वे स्वयं भी इस युद्ध से बचना चाहते थे, इसलिए उन्हें खुशी हुई। सूर्य की पहली किरणों में उन्होंने देखा कि मैदान खाली है, शत्रु-सेना अपना बहुत-सा सामान छोड़कर रात के अंधियारे में निकल भागी है।

□ १८ महमूद का पुनः प्रस्थान

उसने अपने कमरे पर, जिसमें वह कई दिनों से था, एक उचटती हुई दृष्टि डाली। वह अपने विचारों में इतना तल्लीन हो गया था कि उसने

दरवाजा खुलने की आवाज नहीं सुनी। जब एक अधिकारपूर्ण स्वर ने उससे कहा, "अफजल, तुम्हारा खाना" तो वह चौंककर उछल पड़ा।

उसे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि नफीजा तश्तरी में उसका खाना लिये उपस्थित है। यह तो उसने कभी सोचा भी नहीं था।

"तुम कितनी अच्छी हो!" तश्तरी लेने के लिए उसने अपना हाथ बढ़ाया तो दोनों की अंगुलियां आपस में छू गईं।

नफीजा ने अपनी अधमुंदी पलकों की ओट से उस पर कटाक्ष किया। आनंद एक क्षण के लिए तिलमिला उठा, किंतु फिर संभलकर खाना खाने बैठ गया। नफीजा उसके बिस्तर पर बैठी उसे खाते हुए देखती रही।

"मैं उम्मीद करती हूं कि मेरे इस तरह एकाएक आ जाने से तुम्हें कोई उजलत नहीं हुई होगी। नहीं हुई न?" एक स्त्री की वाणी में इतना गाँभीर्य सहज ही नहीं पाया जाता। जब भी कोई स्त्री किसी पुरुष से बात करती है तब अपनी बातों में कुछ वक्रता लाने और उनको चटपटा बनाने की चेष्टा करती है, परंतु नफीजा की बातों की सहजता में भी अपना एक आकर्षण था।

उसने आगे कहा, "मेरा खयाल है कि एक-दूसरे के बारे में थोड़ा-बहुत मालूम कर लेना हम लोगों के हक में ठीक होगा।"

"तुम्हारे आने से मुझे कोई परेशानी नहीं हुई," आनंद ने कहा, "बल्कि खुशी ही हुई।" लेकिन ये शब्द क्या उसकी भावना को सम्यक् अभिव्यक्ति दे पाये? असल में तो वह सोचने लगा था कि इतनी औपचारिकता किसलिए है और क्यों वह उसके बारे में ज्यादा जानना चाहती है?

यद्यपि आनंद नफीजा से प्रायः प्रतिदिन मिलता और हलकी-फुलकी गप्पें हांका करता था, परंतु उसने कभी उससे यह नहीं पूछा था कि उसके घर में कहां क्या हो रहा है।

उस दिन जब आनंद प्रातः सोकर उठा, तो उसे वह सुबह भी हमेशा की तरह नीरस और उबानेवाली जान पड़ी। उसे लगने लगा कि यहां से कोई मतलब की बात हाथ नहीं लगेगी, इसलिए अब चल देना चाहिए।

तभी नफीजा वैठक में उसके पास आई।

"आज इतने सुबह-सुबह तुम्हें देखकर मुझे बहुत खुशी हुई।" तभी उसकी दृष्टि नफीजा के आंसुओं पर गई और उसने अचकचा कर पूछा, "क्यों, क्या हुआ ? रो क्यों रही हो ?"

"ओह, अफजल," उसने उत्तर दिया, "आज का यह दिन कितना मनहूस और खौफजदा है !" अंतिम शब्द कहते-कहते उसका गला रुंध गया और उसके गालों पर से आंसू वह चले। उसे पता ही नहीं चला कि कब आनंद ने उठकर उसका हाथ पकड़ा और अपने पलंग पर विठा दिया।

"अब चुप करो और बताओ कि क्या हुआ ?" आनंद ने सहानुभूति-पूर्ण शब्दों में कहा।

नफीजा की वाणी विलकुल असंवद्ध हो गई। उसने कहा, "शहंशाह महमूद हिंद पर फिर हमला करने की तैयारी कर रहे हैं।" इसके आगे वह कुछ न कह सकी।

जब कुछ प्रकृतिस्थ हुई और रूमाल से अपनी नाक साफ कर चुकी, तो आनंद बोला, "अच्छा, अब पूरी बात बताओ।"

"एक कबूतर के जरिये खबर मिली कि शहंशाह महमूद हिंदु (सिंधु) नदी के किनारे तक पहुंच चुके हैं। उनके साथ चालीस हजार फौजी हैं। हिंदु नदी के मशरिकी इलाके के हमारे सूबेदार आदिलशाह के पास जो बीस हजार फौजी हैं, उन्हें इसमें शामिल नहीं किया गया है। शहंशाह ने अब्बा हुजूर को दस हजार फौजी इकट्ठा करके अपने शरीक होने का हुक्म फरमाया है। खुदा खैर करें, मगर हिंद की खौफनाक जंगों में अगर अब्बा हुजूर को कुछ हो गया तो..."

आनंद को अचानक धक्का-सा लगा, लेकिन उसने अपने ऊपर नियंत्रण करते हुए कहा, "उनका वाल भी वांका नहीं होगा।"

"मगर वात इतनी ही नहीं है, अफजल। अब्बा हुजूर चाहते हैं कि तुम अपने साथ काली वुकनी लेकर उनसे पहले ही यहां से रवाना हो जाओ।

इस वुकनी से इस वार हिंदू काफिरों के मंदिरों को उड़ाया जायगा। तुम भी चले जाओगे...फिर मैं क्या करूंगी ?"

"मैं चला भी जाऊं तो क्या वनता-विगड़ता है ?"

नफीजा ने उसे घूरकर देखा, मानो कहना चाह रही हो—तुम्हें, अफजल, केवल तुम्हें, मैं चाहती हूं। लेकिन फिर इस डर से कि कहीं वह उसकी आंखों में इस वात को पढ़ न ले, उसने अपना सिर झुका लिया।

वह फर्श पर उसके पैरों के समीप वैठ गई। आनंद ने उसकी ठुड्डी के नीचे अपना हाथ लगाकर उसके सिर को इस कोण में घुमाते हुए कि वह उसे देखने के लिए वाध्य हो, कहा, "मेरे जाने की वात से तुम इतनी परेशान क्यों हो उठी हो ?"

"मेरे चले जाने से वस इतना ही तो होगा" वह कहने जा ही रहा था कि उसने नफीजा की आंखों में झांककर देखा, वहां उसे प्रणयोन्माद से भी अधिक पवित्र एवं सूक्ष्म भावना की चमक दिखाई दी। उन नीली गहराइयों में जो मशाल जल उठी थी और जिसकी लपटों ने उसे भी छू लिया था, उसे प्रेम के अलावा और कोई चीज जला नहीं सकती थी।

नफीजा ने यह देखने की कोशिश की कि कहीं वह उसकी खिल्ली तो नहीं उड़ा रहा है, और इस निष्कर्ष पर पहुंचकर आश्वस्त हो गई कि नहीं, वह ऐसा नहीं कर रहा है। "मैं और कुछ नहीं जानती," उसने व्याकुलतापूर्वक कहा, किंतु सहसा फूट पड़ी, "ओह, अफजल, मैं तुम्हें चाहती हूं।" लेकिन जैसे ही उसे यह ध्यान आया कि अचानक यह क्या कह वैठी तो वह उद्विग्न हो गई।

आनंद उसे देखकर मुस्कराया और वोला, "मैं भी नफीजा, तुम्हें प्यार करता हूं।" आनंद को यह अनुभूति वहुत सुखकर लगी कि इतनी सुंदर, इतनी अद्‌भुत नफीजा उसे प्यार करती है, और उसने अपने प्यार को छिपाने की कोई कोशिश नहीं की।

आनंद की इस स्वीकृति ने नफीजा को हठात् उद्दीपित कर दिया। वह अपने प्रेम को इतने शीघ्र प्रकट नहीं करना चाहती थी, परंतु अनायास

जब मन के गोपन भाव प्रकट हो गये तो उसके पांव स्वतः ही प्रेम की अट-पटी डगर पर चल पड़े। अब मुड़ना उसके बस का न रहा। 'अभी नहीं तो कभी नहीं' वाली स्थिति हो गई। इसीलिए उसने अपने हाथों से उसके पैर पकड़ लिये और सिर उसके घुटनों पर रख दिया। उसकी छाती उसके पैरों पर कोमल दबाव डालने लगी। आनंद पहले तो हक्का-बक्का रह गया, परंतु समर्पण के लिए उद्यत नफीजा ने उसकी वासना को उन्मेपित कर दिया और उसका संवेदित मन प्रतिदान के लिए आतुर होने लगा। नफीजा ने उसके प्रेम की ऊष्मा को अनुभव किया और अपनी आंखें मूंद लीं।

सहसा आनंद को एक झटका-सा लगा, जैसे किसी ने फटकारा हो, यह समय प्रेम की बात सोचने का नहीं, महत्त्वपूर्ण कार्य करने का है। दूसरे ही क्षण उसने अपने को भीतर से कठोर बना लिया और पांव छुड़ाने की चेष्टा करते हुए कहा, "तुम अपने को परेशान न करो, मैं जल्दी ही लौट आऊंगा।"

सुनते ही नफीजा की आंखें निराशा से विस्फारित हो गईं, फिर भी उसने धीरज बटोरा, पर जो चीज उसे पुनः हाथ लगी, वह पूरी आशा तो नहीं थी। बोली, "मैं तो पहले ही दिन से तुम्हें प्यार करने लगी हूं, जिस दिन मैंने चिक की ओट से तुम्हें अपने पिता के कमरे में देखा था। लड़ाई खत्म हो जाने के बाद क्या तुम्हें मेरी याद रहेगी ?"

नफीजा ने चिक के पीछे से उसको देखा था, उस समय वह अफजल के बारे में कुछ भी नहीं जानती थी, परंतु फिर भी उन क्षणों में उसका नारीत्व उसके भीतर जाग उठा था, वह अब लड़की नहीं रह गई थी, युवती हो गई थी, जिसके भीतर एक धड़कता हुआ दिल था और जो अपने मन की कामना को पहचानने लगी थी।

उसके मन में आया कि कहे, "अगर मेरी सामर्थ्य में होता तो तुम्हें सुखी बनाने के लिए मैं कुछ भी उठा कर न रखता, मगर मेरा फर्ज मुझे कहीं और बुला रहा है।" लेकिन प्रकट में उसने बड़े ही चलताऊ ढंग से कहा, "तुम्हें मैं कभी भी कैसे भूल सकता हूं ?"

नफीजा का चेहरा सुर्ख हो गया। वह उठी और दरवाजे की ओर मुड़ गई। एक क्षण के लिए उसकी संघर्ष-क्षमता समाप्त हो गई थी। वह मात्र एक स्त्री थी, जिसने एक पुरुष के सम्मुख अपना प्रेम-निवेदन किया, जिसे अस्वीकार कर दिया गया था। वह मुलायम गलीचे पर अपने नाजुक पैर रखते हुए धीमे-धीमे चल दी। उसने पीछे मुड़ कर भी नहीं देखा। उसके मन में बस एक ही ख्याल था कि कोई एकांत स्थान मिल जाय तो वह अपनी कमजोरी पर काबू पा सके।

आनंद की आत्मा का कोई नगण्य कोना, उसे अपने इस कृत्य के लिए धिक्कार उठा। उसने जो किया और जो नहीं कर पाया, सबके लिए उसका हृदय अनुतप्त हो गया। किंतु यह सब उसे विवशतावश ही करना पड़ा था। इस समय तो हर चीज उसे भुला देनी होगी। केवल एक लक्ष्य, एक संकल्प को अपने सामने रखना होगा।

क्रमशः उसका मन शांत हो गया। अब केवल यही आतुरता थी कि प्रातःकाल क्या होगा ? क्या वह उस विश्वास के योग्य सिद्ध हो सकेगा, जो वीसलदेव ने उस पर किया था ?

सारी रात वह तरह-तरह की योजनाओं पर विचार करता रहा। क्या उपाय करे कि शाहबुद्दीन की कमान में जानेवाली दस हजार की सेना का महमूद के पास पहुंचना रोका जा सके ? आखिर सवेरा होते-होते उसकी आंख लग गई।

सुबह अज़ान की बेसुरी बांग ने उसकी नींद भंग कर दी और वह यथार्थ परिस्थितियों का सामना करने के लिए सन्नद्ध हो गया।

उसे अधिक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी। कुछ ही देर बाद वह शहाबुद्दीन के सामने बुलाया गया, जो कूच करने के लिए अपने कुछ सैनिकों के साथ प्रांगण में खड़ा था। वह कुछ देर खड़ा प्रतीक्षा करता रहा, फिर शहाबुद्दीन उसकी ओर उन्मुख हुआ, "सुनो अफजल, मैं तुरंत कूच कर रहा हूं और करीब पंद्रह दिन में शहंशाह की छावनी में पहुंच जाऊंगा। मैं

समझता हूं, तुमने सुन लिया होगा कि तुम्हें क्या करना है ?"

आनंद ने स्वीकृतिसूचक सिर हिलाया।

"हमीद तुम्हारे साथ जायगा। अपने साथ जितने आदमियों को ले जाना चाहो, छांट लो और कुछ गधे भी साथ ले लो। अगर तुम मेरे जाने के दो रोज बाद भी यहां से रवाना हुए तो मुझसे एक दिन पहले शहंशाह की छावनी में पहुंच जाओगे।"

आनंद को भाग्य से मनचाहा अवसर मिल गया। लेकिन इसे भाग्य कह देना ही पर्याप्त नहीं। एक तरह से उसके पक्ष में जादू ही हुआ था। मार्ग में उसे निश्चय ही ऐसा अवसर हाथ लग सकता था कि वह शहाबुद्दीन की सेना के कम-से कम एक अंश को नेस्तनाबूद कर दे।

. . . . .

शहाबुद्दीन के जाने के बाद आनंद ने हर चीज को अस्त-व्यस्त पाया। लेकिन वह ज्योंही तैयारियों में जुटा, चीजें कुछ व्यवस्थित होती दिखायी देने लगीं। प्रांगण में इधर-से-उधर जाते हुए वह कभी-कभी ठहाका लगा कर हंस पड़ता था। नफीजा के कानों में ये ठहाके पहुंचते और उसे बड़े मधुर लगते थे। वह सोचती कि आनंद खुश और बेफिक्र जान पड़ता है।

आनंद इस बीच जान-बूझकर नफीजा से भेंट करने से कतराता रहा। उसका इस तरह बचते रहना नफीजा को उसकी ओर अधिक आकर्षित और उत्तेजित कर रहा था। एक रोज वह उसकी गतिविधियों को पूरे दिन देखती रही और सायंकाल उससे मिलने का मौका ढूंढ़ ही लिया। जिस कमरे में वह आनंद से मिली, वह बड़ा तो था, परंतु उसकी छत नीची और मेहराबदार थी, और उसे लकड़ी के खंबों का सहारा दिया गया था।

हमीद को निर्देश दे चुकने के पश्चात आनंद सुस्ताने के लिए कोने में रखी बेंच पर जा बैठा। नफीजा भी आकर उसकी बगल में बैठ गई। उसने आनंद का हाथ अपने हाथ में ले लिया और बोली, "मैं तुम्हारा इंतजार करती रहूंगी।"

"मैं वायदा करता हूं," आनंद ने कहा, "अपना काम पूरा कर लेने के

वाद जरूर-जरूर तुम्हारे पास आऊंगा। लेकिन मुझे तुम्हारी ओर से डर लग रहा है।"

"डर ? किस वात का ?"

"डर इस वात का कि तुम वड़ी हो जाओगी और वड़े हो जाने पर आदतें विगड़ जाने का खतरा है। तुम्हारे भी पांव फिसल सकते हैं। दूसरा डर मुझे इस वात का है कि कहीं तुम्हें कोई नुकसान न पहुंचाये।"

"कभी नहीं," नफीजा ने गरम होकर कहा, "तुम्हारे साथ मुहव्वत करना दुनिया की एक नायाव चीज है, जो मुझे मिल रही है।"

आनंद अपनी जगह खड़ा हो गया और उसकी ओर देखने लगा।

नफीजा ने उसका हाथ और कसकर थाम लिया, "हालांकि मुझे शहंशाह की यह हरकत अच्छी नहीं लग रही है, तो भी मेरा ख्याल है कि तुम्हें उनके इस हमले में मदद करने के लिए जाना ही पड़ेगा।"

नफीजा ने अपने गले में काले मोतियों की दोलड़ी माला पहन रखी थी, जिसके कारण उसका सौंदर्य और भी वढ़ गया था। उसकी आंखों की ओर देखते हुए आनंद को यह अहसास हुआ कि दोनों के हृदय में कोई चुंवकीय स्पंदन हो रहा है—एक ऐसी अदृश्य तरंग का प्रवाह, जिसे परिभाषित करना कठिन था। कोई चीज थी, जिसके कारण उनका सांस लेना भी दूभर हो रहा था। आनंद ने तुरंत फैसला किया कि चाहे जो हो, लड़ाई खत्म होने के वाद वह इससे शादी करने के लिए यहां जरूर वापस पहुंचने की कोशिश करेगा।

अचानक ऐसी कोमलता के साथ, जिसका प्रदर्शन उसने इससे पहले कभी नहीं किया था, आनंद ने अपनी वांह उसकी कमर में डाल दी और वोला, "तुम पंख की तरह हल्की हो।" यह कहकर उसने उसको अपने समीप खींच लिया। वह उसके इतना निकट आ गई थी कि वह उसके दिल की धड़कनें सुन सकता था।

अव नफीजा को किसी वात की चिंता न थी। वह आनंद से कहना चाहती थी कि मैं तुम्हें मुहव्वत करती हूं, लेकिन उसके मुंह से शव्द ही न

निकले। काफी देर तक दोनों इसी तरह वहां खड़े रहे—आपस में गुंथे हुए, एक ऐसे हर्षातिरेक के झूले पर पेंगे लेते हुए, जो इतना अधिक तीव्र, इतना अधिक सुंदर था, जितना उन्होंने इससे पूर्व कभी नहीं जाना था और अंततः नफीजा आनंद के सीने में अपना सिर छिपाने के लिए बढ़ी तो आनंद ने देखा कि उसकी आंखें छलछला आई हैं।

आनंद ने इस भय से कि कहीं उसकी अपनी भावनाएं ही इतनी तीव्र न हो जायं कि उन्हें संयमित कर पाना दुष्कर हो उठे, उसकी गिरफ्त से अपने को नरमी से छुड़ा लिया और अपना हाथ हटा लिया।

नफीजा की नीली आंखें अनवहे आंसुओं के कारण कुहासी-सी हो गईं थीं और उसके रस-भरे होंठ थरथरा रहे थे। आनंद ने जब अपना हाथ उसके हाथ से छुड़ा लिया तो वह मंद और कांपती हुई फुसफुसाहट में बोली, "ओह, अफजल, यह हमेशा ऐसे ही नहीं चल सकता तो मैं अभी, यहीं, तुम्हारी बांहों में मर जाना और इस तरह की मौत का खुशी से इस्तकबाल करना पसंद करूंगी।"

आनंद ने प्रेमपूर्ण नेत्रों से उसकी ओर देखा। यह संभव है कि कोई पुरुष किसी स्त्री के प्रति मोह, प्रेमोन्माद और वासना का अनुभव करे; लेकिन किसी को सचमुच प्यार करना बिलकुल अलग बात है। प्यार में केवल शरीर की ही नहीं, हृदय की भी चाह रहती है। आनंद की दृष्टि में प्रेम एक आध्यात्मिक भावना थी, शारीरिक भाव बहुत कम, नहीं के बराबर था। यह दो हृदयों के परस्पर मिलन से उत्पन्न आनंदातिरेक था, जो उन्हें सूर्य के जलते हुए हृदय तक खींच ले जाता था तथा जिस आनंद को अभिव्यक्त करने के लिए उनके पास कोई शब्द नहीं था।

तभी अचानक आनंद को अपना दिल बैठता-सा लगा, इसलिए उसने यह महसूस किया कि वह इस तरह के विचारों में अधिक तल्लीन नहीं रह सकता। उसे यहां से विदा होना है और शहंशाह महमूद के उल्लास को शोक में परिणत कर देने के लिए शीघ्र ही कुछ उपाय और उसके लिए उचित तैयारी भी करनी है।

वह चुपचाप ऊपरी मंजिल पर स्थित अपने कमरे में चला आया। सामने का गलियारा खाली था। उसमें एक चिराग जल रहा था, जिससे थोड़ी रोशनी हो रही थी। उसे अपने पीछे किसी के कदमों की आहट जान पड़ी, लेकिन जब उसने पीछे मुड़ कर देखा तब उसे कोई दिखाई न दिया। दरवाजा बंद कर लेने के बाद भी उसके कान उधर ही लगे रहे। वह टोह लेता रहा कि कहीं से कोई आ तो नहीं रहा है, लेकिन कोई नहीं आया, कहीं कोई आहट नहीं हुई।

□ १९ काले चूर्ण के प्रयोग की योजना

आनंद ने शहाबुद्दीन के घर के किसी आदमी को साथ ले जाने के लिए छांटना ठीक नहीं समझा। वह पड़ोस के गांव में गया और दो आदमियों को ले आया। काले चूर्ण की बोरियां लादने के लिए उसने चार खच्चरों का इंतजाम भी कर लिया। वह नहीं चाहता था कि नगर का कोई व्यक्ति उसे देखे, इसलिए उसने आधी रात को रवाना होने का निश्चय किया। हमीद घोड़े पर सवार, रास्ता बताता हुआ आगे-आगे चल रहा था। उसके पीछे काला चूर्ण ढोनेवाले चारों खच्चर आपस में एक रस्सी से जुड़े हुए पंक्तिबद्ध चल रहे थे। जिन दो आदमियों को आनंद भाड़े पर ले आया था, उनमें से एक तो खच्चरों के आगे चल रहा था, दूसरा उनके एकदम पीछे। आनंद सबके पीछे एक घोड़े पर सवार था। नगर की टेढ़ी-मेढ़ी सड़कों और गलियों को पार करते हुए, वे चुपचाप बस्ती से बाहर निकल आये।

अंधेरा इतना गहरा था कि रास्ता दिखाई नहीं पड़ता था। उन्हें पता ही नहीं चल रहा था कि कहां जा रहे हैं। हमीद को उस रास्ते पर आने-

जाने का अभ्यास था, या उसकी आंखें अंधेरे में भी देख सकती थीं—वात कुछ भी रही हो, वह उनके कुछ आगे-आगे तेज चाल से चल रहा था। आनंद को डर था कि कहीं खच्चर रास्ता न भूल जायं। जव-तव कुछ तेज चलकर वह यह जांच कर आता था कि खच्चरों के आगे-आगे चलनेवाला आदमी हमीद का सही-सही अनुसरण कर रहा है या नहीं। अगर वे अपना सफर केवल रातों में ही करें तो हमीद को साथ रखना वहुत आवश्यक हो जायगा, परंतु हमीद उसकी योजनाओं की पूर्ति के मार्ग में वाधक था। उसने यह निश्चय किया कि पहली रात के बाद केवल दिन में ही यात्रा किया करेंगे। उसने हमीद से छुट्टी पा लेने का भी उपाय सोच लिया था।

अंतत: जव समय का उसका सारा अहसास खत्म हो गया, तव पूर्व आकाश में एक दीप्ति उद्भावित हुई। अपना सिर कुछ घुमाकर आनंद ने देखा कि काले घोड़े पर एक नकावपोश सवार उसके पीछे-पीछे आ रहा है। रात को कई वार उसे संदेह हुआ था कि कोई व्यक्ति उसका पीछा कर रहा है, परंतु अंधेरे में उसने लड़ाई मोल लेना उचित न समझा।

अव वे दो पहाड़ियों के वीच एक दर्रे के संकरे धूलभरे रास्ते पर चल रहे थे। आगे चलकर रास्ते का मोड़ था। आनंद ने मोड़ घूम कर हाथ में तलवार खींच ली और आगंतुक की प्रतीक्षा करने लगा। जैसे ही पीछा करनेवाला घुड़सवार समीप आकर घूमा, उसने हाथ आगे को वढ़ाया, और उसकी तलवार की नोक सवार की छाती को छूने लगी। कड़ककर उसने पूछा, "कौन हो तुम ? क्यों मेरा पीछा कर रहे हो ?"

सवार के मुंह से आश्चर्यमिश्रित एक हल्की चीख निकल गई। उसने अपना नकाव उतार दिया।

आनंद को अपनी आंखों पर सहसा विश्वास नहीं हुआ। वह चिल्ला पड़ा, "अरे नफीजा, तुम ! खुदा के नाम पर वताओ, तुम मेरे पीछे क्यों आ रही हो ?"

नफीजा ने उषाकाल की प्रथम किरणों के प्रकाश में साफ-साफ देखा कि उसकी भौंहें तन गई हैं और ललाट पर सलवटें पड़ गई हैं। जाहिर था

कि नफीजा के इस तरह आने से आनंद वेहद खीझ उठा था।

"उस बड़े से मकान में मैं अकेले न रह सकी। हो सकता है कि रास्ते में तुम्हारी कोई मदद कर सकूं।" नफीजा ने दवी जवान से कहा।

"मेरी मदद ? किस तरह ? मैं लड़ाई पर जा रहा हूं, सैर के लिए नहीं !"

"मुझे हिंदुस्तान को जानेवाली सड़क की जानकारी है।"

हमीद और खच्चरों का काफिला भी रुक गया था और हमीद आनंद के पास आ गया था।

"तुम्हें तुरंत हमीद के साथ वापस लौट जाना है।" आनंद ने तीखे स्वर में कहा, "तुम्हें समझना चाहिए कि हमारे साथ रहने में स्त्रियों के लिए खतरा है।"

"मैं समझती हूं, लेकिन किसी भी लड़ाकू की तरह तलवार चला सकती हूं।"

"कुछ भी हो, तुम्हें वापस जाना ही होगा। सुन रही हो तुम ? तुरंत, अभी।"

"मुझे चाहे मार डालो, पर लौटूंगी नहीं।"

"तुम्हारे वालिद जनाव शहाबुद्दीन साहव का क्या हाल होगा ? वे पागल हो जायंगे...सोचेंगे कि कोई तुम्हें उड़ा ले गया...या किसी ने कत्ल कर दिया।"

"वे वहुत बूढ़े हैं—साठ साल के।"

"बुढ़ापे में ही तो इन्सान को ऐसे हादसों से ज्यादा तकलीफ होती है।"

"बुढ़ापा इन्सान को बर्दाश्त करना भी सिखा देता है। साठ साल के हो जाने की वजह से, वे जल्दी ही अपने ऊपर कावू पा लेंगे। उस उम्र तक पहुंचते-पहुंचते हर किसी को असलियत को मंजूर करना आ ज़ाता है। अगर ऐसा नहीं हो पाया तो बेहतर है कि वे खुदा को प्यारे हो जायं।"

अब हमीद का भी मुंह खुला। उसने आनंद से कहा, "मैं आपको

अकेला नहीं छोड़ सकता। मालिक की सख्त हिदायत है कि मैं आपको शहंशाह की छावनी तक पहुंचाकर ही दम लूं।"

"मैं आप लोगों को जरा भी परेशान न करूंगी।" नफीजा ने कोमल स्वर में कहा।

"परेशानी तो तुम खुद हो।" आनंद ने चिढ़कर कहा, "मगर जो चीज किसी तरह टाली नहीं जा सकती, उसे मंजूर करके चलना ही समझदारी है।"

उसने नफीजा का उत्तर सुनने की प्रतीक्षा नहीं की और खच्चरवालों को आगे बढ़ने का आदेश दे दिया। उषाकाल अपने पूरे उभार पर था। पूर्वाकाश से प्रकाश फूट रहा था। काबुल नगर उन्हें दिखाई दे रहा था। पहाड़ी की ढाल पर बसेरा किये हुए, यह नगर उन्हें याद दिला रहा था कि वे रात में केवल दस कोस ही चल पाये हैं। दिन में उन्हें कुछ ज्यादा मंजिल तय करनी होगी।

आनंद अपने घोड़े पर सवार चला जा रहा था। उसे रास्ते में एक कबायली सरदार की छोटी-सी बुर्जी मिली। इन पहाड़ियों में कई कबीलों के सरदार स्थान-स्थान पर रहते थे। आनंद को उनकी ओर से सावधान रहना था। बटमारों से भी उसकी मुठभेड़ हो सकती थी। वह हर परिस्थिति से निपटने के लिए तैयार था। नफीजा के साथ होने से जरूर थोड़ी फिक्र हो गई थी।

उन्होंने पूरे दिन सफर किया और रात होने तक काफी दूर निकल आये। संध्या के झुटपुटे में वृक्षों का एक कुंज दिखायी दिया। आनंद ने रात में वहीं विश्राम करने का निश्चय किया। नफीजा का व्यवहार सदा अनौपचारिक और स्पष्ट होता था, लेकिन इस समय जब उसने नकाब और लबादा उतार डाला तो आनंद को उसमें स्त्रियोचित मार्दव का अभाव-सा लगा। वह धव्वेदार बेढंगा सलवार और एक ढीलाढाला कुर्त्ता पहने हुए थी और उसके शरीर का कोई उभार उस पोशाक में दिखाई नहीं दे रहा था। उसके बालों का जूड़ा ऊपर की ओर कसकर साफे से बंधा हुआ

था, और कुछ लटें इधर-उधर छितर आई थीं। परंतु उसकी वड़ी-वड़ी गहरी नीली आंखें सुंदर पलकों के भीतर से उसको जिस प्रेमिल दृष्टि से देख रही थीं, उनके प्रभाव से वह अपनी पूरी चेष्टा के वावजूद वच नहीं पा रहा था।

जव वे लोग व्यालू कर चुके तो आनंद ने नफीजा के सोने के लिए उपयुक्त स्थान का चुनाव किया और तकिये के लिए उसी की जीन को उसके सिरहाने रख दिया। वह खुद उसके नजदीक ही सोया, ताकि उसकी सुरक्षा की देखभाल कर सके।

तारों से जगमगाती उस शांत रात के सन्नाटे में हठात् आनंद की अंतरात्मा में जैसे किसी ने कहा कि खतरा कहीं पास ही मंडरा रहा है, और उसने चौंककर अपनी आंखें खोल दीं। एक छायाकृति को उसने अपनी ओर आते देखा। छाया के हाथ में एक लंवी कटार, तारों की झिलमिल रोशनी में चमक रही थी। छाया जैसे-जैसे उसके समीप आती गई, कटार दीखना वंद हो गया, परन्तु यह आभास उसे हुआ कि कोई उस पर वार करने जा रहा है। वह चुपचाप दो-तीन गुलटियां खाकर एक वृक्ष के तने की आड़ में वैठ गया।

आगंतुक वड़ी सतर्कता से एक-एक डग फूंक-फूंककर रखता हुआ आ रहा था। उसका कटारवाला हाथ वार करने के लिए ऊपर उठा हुआ था। उसकी आंखों ने आनंद को तलाश किया। वह आनंद के विस्तर से एक कदम के फासले पर रुक गया। उसे आभास हुआ कि आनंद वहां नहीं है। अचानक उसे खतरे का अहसास हुआ, लेकिन तवतक काफी विलंव हो चुका था।

आनंद चुपचाप वृक्ष के पीछे से चलकर उस आदमी के पीछे की ओर पहुंच चुका था। उसने अपने वायें हाथ से उसकी गरदन के पिछले हिस्से पर और अपने दायें पैर से उसके गुरदे पर जोर से प्रहार किया। फौरन उस आदमी के प्राण पखेरू उड़ गये। केवल एक सिसकारी की आवाज सुनायी दी और वह आदमी पीठ के बल धराशायी हो गया। उसके हाथ पीठ से दब

गये थे, क्योंकि उसने अपने को गिरने से रोकने की चेष्टा की थी। आनंद ने उसे एक जोर की लात लगायी। वह उसके जीवित वचने की सारी संभावनाओं को समाप्त कर देना चाहता था। फिर एक ठोकर और मारकर, उसने उस मृत देह को पहाड़ी के ढाल पर लुढ़का दिया। लाश लुढ़कती हुई किसी चट्टान में जाकर अटक गई।

आनंद ने सोचा कि सारा काम चुपचाप समाप्त हो गया, कोई शोर-शराबा न हुआ। उसने एक अंगड़ाई ली और फिर आराम की सांस। तभी कोई सिसकता हुआ आया और उससे लिपट गया।

नफीजा को अपनी बांहों में पाकर वह अचकचा गया।

"हाय, अफ़जल ! तुम्हारे विना तो मैं कहीं की न रहती।" उसने सिसकी भरते हुए कहा।

इस बीच वे दोनों आदमी भी जाग गये थे। आनंद ने इस वात का निश्चय करने के लिए कि किस आदमी ने उस पर हमला करने की कोशिश की थी, लकड़ियों के एक गट्ठर में आग लगा दी, ताकि उसके प्रकाश में वह आक्रांता का मुंह देख सके।

"अरे ! वह तो हमीद था।"

हमीद हमेशा नफीजा की ओर ललचायी हुई दृष्टि से देखा करता था। शायद उसको पाने के ही लिए उसने आनंद को मार डालना चाहा था।

नफीजा अभी तक उत्तेजित और क्षुब्ध थी। अब उसने पूरी कहानी आनंद को सुना दी।

यद्यपि शहाबुद्दीन उसे अपनी वेटी की तरह मानता और उसकी पूरी सार-संभाल करता था, तथापि वह उसकी असली बेटी नहीं थी।

वह हिंदुस्तान की रहनेवाली थी। उसने विस्तार से बतलाया, "मेरा बचपन बड़े आनंद से बीता। मेरे पिता अपने नगर के एक बड़े व्यापारी थे। माता-पिता दोनों मुझे वहुत प्यार करते थे। एक तरह से उन्होंने मेरी आदतें बिगाड़ दी थीं।"

"जब मैं दस साल की थी, तभी महमूद के एक आक्रमण के अवसर पर,

शहाबुद्दीन हमारे घर में घुस गया। उसने मेरे पिता को मार डाला। मेरी मां अत्यंत भयभीत हो गई थीं। मुझे अपनी छाती से चिपटाकर वे घर के एक कोने में जा छिपी थीं। शहाबुद्दीन ने उन्हें ढूंढ़ निकाला और उनकी बांहों में से मुझे छीन लिया। इस तरह 'नीरजा' से में 'नफीजा' बन गई।

"अपनी मां के चेहरे के उस समय के भावों को मैं कभी भूल नहीं सकती। उन्होंने जोर से एक चीख मारी और चल बसीं।" नफीजा ने कहा।

मां की याद करके उसके चेहरे पर कोमलता आ गई। कैसे वह इस विचित्र व्यक्ति को यह बताये कि उसका संग पाकर उसे जीवन की कौन-सी खोई हुई निधि प्राप्त हो गई है? उसका जीवन कितना तृप्तिमय हो गया है? एक मर्द के साथ बोलना, अपने प्रति सहानुभूति रखनेवाले, अपने ही ऐसे देशवासी के साथ, जो उसमें दिलचस्पी भी रखता हो, बात करना उसके लिए कितना सुखकर है—इसे वह आनंद को किस तरह बताये!

शहाबुद्दीन के घर में उसने बहुत सुरक्षित, निश्चिंत और विलासमय जीवन विताया था। परंतु इस सबके बावजूद उसके मन को वहां कोई सुख न था। वहां से निकल भागने के लिए उसकी आत्मा छटपटाती रहती थी। भूलने की लाख चेष्टा करने के बाद भी वह अपने बचपन की घटनाओं को भुला नहीं पाती थी।

नीरजा का परिवार एक धार्मिक परिवार था। जबसे वह शहाबुद्दीन के साथ काबुल आई, हर चीज की ओर से भावना-शून्य और उदासीन हो गई थी। परंतु अब कोई चीज उसके हाथ लग गई, एक नया बोध उसके भीतर जागृत हुआ, एक जीवंत आत्मविश्वास पैदा हो गया, जो उसके समस्त प्रश्नों का समाधान कर सकता था और उसके अपरिपक्व विश्वासों को आधार दे सकता था। उसके मन से दुःख और चिंता के सारे भाव विलुप्त हो गए थे। उसका दिल तुरंत हल्का और खुश हो गया।

"अपनी मां की मौत का बदला लेने का कर्ज मेरे सिर पर चढ़ा है। अपने बचपन से ही मैं उस दिन की आतुर प्रतीक्षा कर रही हूं, जिस दिन मेरी

चिरपोषित अभिलाषा पूर्ण होगी।" उसने बुदबुदाकर कहा, "महमूद ने ऐसी विपत्तियों में दूसरे परिवारों को भी अवश्य डाला होगा। अनगिनत परिवारों को उसने जो पीड़ा पहुंचायी है, उसके लिए मैं उससे घृणा करती हूं।"

"क्या तुम ईश्वर पर विश्वास नहीं करती ?"

"असल में जिस ईश्वर के बारे में मैं अपने बचपन से इतना अधिक सुनती आई थी, उससे नफरत करने लगी थी। वह उनको ही अधिक दंडित करता दिखायी देता था, जो उस पर विश्वास करते हैं। लेकिन अब मेरा मन ईश्वर के प्रति कृतज्ञ हो रहा है। ईश्वर ने ही तो तुमको मेरे पास तक पहुंचाया है।"

"ईश्वर के ऊपर मेरा विश्वास कभी नहीं डिगा, परन्तु अब मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि तुम्हें उस पर पुनः विश्वास हो गया है।"

आनंद ने नफीजा को इस प्रकार से बातें करते कभी नहीं सुना था। कहीं वह उससे छल तो नहीं कर रही है ? इस तरह का छलावा करके कहीं वह उसका वास्तविक परिचय तो नहीं जानना चाहती है ? परंतु उसके चेहरे और स्वर से उसकी सच्चाई, निश्चछलता तथा निष्ठा का ही आभास मिल रहा था। ऐसा सोचते हुए वह यह भी नहीं भूल रहा था कि अभी नफीजा के बारे में आखिरी राय कायम करने की जल्दबाजी करना उचित न होगा। हो सकता है कि वह बातों के बहाने उसके दिल की थाह लेना चाहती हो।

उसने चुप्पी साध ली।

किंतु हमीद, उसके मार्ग की एकमात्र बाधा, जा चुका था। अब उसके मन में एक ही बात चक्कर काट रही थी कि महमूद के पास भेजी जाने वाली दस हजार सैनिकों की अतिरिक्त सहायता को किसी भी तरह रोकना चाहिए।

महमूद हिंदु नदी तक पहुंच चुका था, इसलिए उससे तो खैबर के पूर्वी भाग में टकराने की आशा नहीं थी; लेकिन शहाबुद्दीन और उसकी सेना

पर वहां घात लगाने का मौका शायद मिल जाय।

चार व्यक्तियों और खच्चरों का वह छोटा दल यथासंभव तीव्र गति से अपने यात्रा-पथ पर बढ़ चला। वे चाहते थे कि शहाबुद्दीन से कम-से-कम दो दिन पहले, दर्रे तक पहुंच जायं।

और छठे दिन वे खैवर घाटी में पहुंच गये। आनंद की टोली एक छोटी पहाड़ी पर चढ़ गई। उसका ख्याल था कि यहां काफी दूर से भी कोई उन्हें देख नहीं पायेगा। पहाड़ी की चोटी से चारों ओर का बड़ा मनोहर दृश्य दिखायी दे रहा था। दर्रे को वायीं ओर छोड़कर घाटी एक नदी की तरह दूर तक पसरी हुई थी और अंत में एक कांपती हुई धुंध में जाकर खो गई थी।

अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए आनंद ने जब उपयुक्त स्थान खोज निकाला तो उसे वड़ी खुशी हुई। एक चट्टान का हिस्सा रास्ते पर आगे तक झुका हुआ था। वंजर पहाड़ी की परिधि रेखा के द्वारा नीचे जो गर्त बन गया था, वह छोटा, तश्तरीनुमा था। वहां निचले भाग में गरमी थी। इधर-उधर विखरे चकमक पत्थर के टुकड़ों पर सूर्य की किरणें प्रतिविंवित हो रही थीं।

आनंद को इस वात की सावधानी वरतनी थी कि कोई उसे देख न ले, क्योंकि उस रास्ते से जानेवाला कोई भी आदमी उससे केवल पचासेक हाथ नीचे से गुजरता था। उनके पड़ाव से कुछ ऊपर थोड़ी ऊंची एक पहाड़ी थी। वहां पास ही उनको एक गुफा दिखायी दी। बड़ी कोशिश के वाद वे अपने खच्चरों को गुफा के भीतर धकेल पाये।

चट्टान पर उतरने के लिए कोई राह नहीं वनी थी, इसलिए उन्हें वहुत संभल-संभलकर उतरना पड़ा। सबसे पहले आनंद गया। उसकी पीठ पर काले चूर्ण की एक वोरी भी लदी थी, जिसका वोझ उठाना आसान काम न था। उसके पीछे दोनों मजदूर भी एक-एक वोरी लिये हुए पहुंचे। नफीजा गुफा के भीतर विश्राम कर रही थी।

आनंद को अपने प्रथम सर्वेक्षण में कोई ऐसी सुविधाजनक दरार नहीं मिली, जिसमें से चट्टानों को तोड़कर नीचे सड़क पर फिसलाया जा सके।

अतः वह घास-फूस की एक पट्टी के सहारे अपनी दायीं ओर को बढ़ा। कुछ दूरी पर, ढलान की तरफ, उसे चट्टानों का एक भाग आगे को निकली तोंद की तरह दिखायी दिया। वह बेडोल उभार लगभग छह बांस लंबा था। उसे देखकर आनंद को कुछ आशा बँधी। इस बेडौल उभार को काले चूर्ण की सहायता से तोड़कर, नीचे रास्ते पर जानेवालों का काम तमाम किया जा सकता था।

नीचे उतरते समय एक जगह उसकी पीठ पर लदी काले चूर्ण की बोरी बेढंगी झाड़ी में अटक गई। आनंद को काटो तो खून नहीं। अगर बोरी सहित वह गिर जाता तो बचना मुश्किल ही था। उसने प्रयत्नपूर्वक बोरी पर बँधी हुई रस्सी को पकड़कर, उस टहनी को ही तोड़ डाला, जिसमें बोरी अटक गई थी। अंत में चट्टान पर पहुंचकर उसने कहा, "आओ, हम लोग अपने काम में लग जायं।"

पहाड़ों पर दरारें और सूराख इतनी अधिक संख्या में थे कि उनमें काले चूर्ण को भरा जा सकता था। अगर सारी योजना निश्चयानुसार कार्यान्वित हुई तो विस्फोट के कारण, पहाड़ी का आगे निकला हुआ तोंद जैसा हिस्सा टूटकर नीचे गिरेगा और शहाबुद्दीन की सेना के एक बड़े हिस्से को खत्म कर देगा।

आनंद की टोली फौरन काम में जुट गई। बारूद की एक बोरी खाली हो जाती तो वे दूसरी ले आते। वे बड़ी तेजी से काम कर रहे थे, क्योंकि सूर्यास्त होने से पहले उन्हें अपना काम खत्म कर देना था।

पश्चिम की ओर की काली पहाड़ियों के पीछे जाकर सूर्य छिपने लगा। वे लोग भी अपना काम पूरा कर गुफा में चले गये। अब ठीक समय पर पलीता लगाना ही बाकी था। उन लोगों ने सूराखों को आपस में बांट लिया था। पलीता लगाने के काम में नफीजा ने भी हाथ बंटाने की इच्छा प्रकट की थी।

उसने आनंद की ओर देखा। तारों के प्रकाश में आनंद उसे बहुत बड़ा और बलिष्ठ लगा। एक क्षण उसके मन में यह विचार आया कि अगर वह

उससे सटकर खड़ी रहे, और वह उसे अपनी वांहों में भर ले तो फिर दुनिया की किसी चीज से उसे डर नहीं लगेगा।

अगले दिन वे दिन-भर प्रतीक्षा करते रहे, परंतु कोई आता दिखायी नहीं दिया। खाने-पीने और सोने के अलावा उनके पास कोई काम नहीं रह गया था। एक आदमी वारी-वारी चौकसी करता रहा।

तीसरे दिन भी कोई नहीं दिखायी दिया। वे निरुत्साह होने लगे। यह संदेह भी हुआ कि शहावुद्दीन कहीं निकल तो नहीं गया। जव सूरज छिपने लगा, संध्या की गंध और गरम दिन के वाद ठंडक का अनुभव होने लगा तो शहावुद्दीन की सेना आती दिखायी दी।

आनंद धीरे-धीरे उठा और उसने हाथ के इशारे से अपने आदमियों को पीछे-पीछे आने के लिए कहा।

सभी उठे और जिसे जो सूराख सुपुर्द किया गया था, वह उसके पास पहुंच गया।

"मुझे आशा है कि हम उन सभी की चटनी बना डालेंगे, लेकिन हमें यह ध्यान रखना होगा कि चूर्ण में पलीता न तो बहुत जल्दी लगाया जाय, न वहुत देर से। जव मैं पलीता लगाऊं तो तुम लोग भी मेरी देखादेखी चूर्ण में वत्ती लगा देना।" आनंद ने कहा।

सेना धीरे-धीरे निकट आती जा रही थी। जब सैनिक कुछ ही दूरी पर रह गये, तव आनंद ने देखा कि शहाबुद्दीन अगली टुकड़ी के साथ है। जब-तक सारी सेना उस पहाड़ी टेकरी के पास पहुंची, काफी अंधेरा हो गया था। आफत के मारे शहाबुद्दीन के सैनिकों ने रात के भोजन के लिए उसी टेकरी के नीचे डेरा डाल दिया। वे दिन-भर चलते रहे थे, इसलिए खैवर-दर्रे में घुसने से पहले पड़ाव करने को उत्सुक थे। मशालें जला ली गईं। सभी सैनिक हंसी-खुशी में मग्न थे।

जव आनंद और उसकी टोली के लोगों ने अपने पलीते जलाये, तो नीचे के लोगों में से किसी ने उन्हें नहीं देखा। सवसे पहले आनंद ने एक सूराख में पलीता लगाया। दूसरों ने भी उसका अनुसरण किया और वे दौड़-

दौड़कर एक छेद से दूसरे छेद में आग लगाते रहे। महासागर की हजारों-हजार लहरों के मंथन की तरह विस्फोट की आवाजें होने लगीं।

आनंद ने चिल्लाकर कहा, "जल्दी करो, गुफा में भाग चलो!"

जितने भी सूराखों में काला चूर्ण भरा गया था, सभी में आग लगा दी गई। आनंद के साथी ठोकर खाते, लुढ़कते-गिरते-उठते गुफा की ओर भागे। जब-तब आनंद पीछे मुड़कर देख लेता था। वह नफीजा का हाथ पकड़े हुए था और उसे सहारा देकर ऊपर की ओर लिये जा रहा था। नीचे शिविर वालों का हाल-बेहाल था। वे छेड़ी गई मधुमक्खियों की तरह भिनभिनाते, इधर-उधर भाग रहे थे। उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि माजरा क्या है?

आनंद और उसके साथी गुफाओं की ओर भागते रहे। नफीजा एक जगह गिर पड़ी और अपने साथ आनंद को भी गिरा दिया। आनंद ने उसे खींचकर खड़ा किया और फिर भागा। गुफा में पहुंचकर सब लोग भीतर जा छिपे। अब उन्हें कोई डर न था।

विस्फोट की क्रिया धीरे-धीरे आरंभ हुई। पहले तो जमीन हल्के-हल्के कांपी, उसके बाद जोर का धमाका हुआ। पहाड़ी की टेकरी के मध्य भाग में तोंद की तरह के बेडौल उभार में से चट्टानें टूट-टूटकर, मिट्टी और मलबा चारों ओर फुहारों की तरह धुंआधार छिटकने लगीं। अब शुरू हुई एक भारी गड़गड़ाहट, जो चट्टानों के उखड़-उखड़कर नीचे फिसलने के साथ अधिक तीव्र होती गई। सारा दर्रा धूल के गुबार से भर गया। उस गर्द-गुबार में कुछ भी दिखायी नहीं देता था। आनंद नीचेवालों की छिट-पुट मशालों को बड़ी कोशिश के बाद ही देख पाया। फिर सर्वत्र अंधकार छा गया। गुफा में छिपे बैठे लोगों के पास तक भी धूल और कंकड़-पत्थर की गंध पहुंच रही थी।

इस प्रकार का विस्फोट उन लोगों ने अपने जीवन में पहली ही बार देखा था। कुछ क्षणों तक तो ऐसा लगा कि गुफा की दीवारें चटख रही हैं, और छत के गिरने से निश्चय ही उनकी कब्र बन जायेगी। आनंद ने

नफीजा को अपने पास खींच लिया और वे औंधे मुंह गुफा के फर्श पर लेट गये। आनंद ने अपना हाथ उसके सिर पर रख दिया, मानो उसकी रक्षा करना चाहता हो। धीरे-धीरे सब शांत हो गया, केवल नीचे से कुछ लोगों के चीखने-चिल्लाने और कराहने की आवाजें आ रही थीं।

आनंद ने कहा, "सब खत्म हो गया।"

नफीजा ने पूछा, "क्या सब-के-सब मारे गए ?"

"मेरा ख्याल है कि अधिकांश मर गए। जो बचे, वे हिंदुस्तान की ओर रुख करने के बजाय अपने घरों की ओर सिर पर पैर रखकर भागे होंगे।" आनंद ने उत्तर दिया।

□ २० हत्या का प्रतिशोध

आनंद और उसके साथी गुफा के सामने की पहाड़ी पर खड़े थे। उनका मुंह पूर्व की ओर था। उगते हुए सूरज की किरणें उनकी आंखों को चौंधिया रही थीं। रात में विस्फोट के कारण जो विनाश हुआ था, उसे वे देख रहे थे। शहाबुद्दीन की लगभग आधी सेना या तो मरी पड़ी थी या बुरी तरह घायल हो गई थी। शहाबुद्दीन शायद मर गया था, क्योंकि उसका घोड़ा तो वहां था, लेकिन वह कहीं नज़र नहीं आ रहा था। जो लोग बच गये थे, वे या तो भाग गये थे, या भाग रहे थे।

अब आनंद के सामने अजयमेरु लौटने की समस्या थी। वह अपने को मुक्त और स्वच्छंद अनुभव कर रहा था। शारीरिक और मानसिक दोनों रूपों में संसार के शीर्षस्थ-स्थान पर पहुंचने की अभिलाषा बहुत दिनों से उसके मन में थी। अब उसे वह सुयोग मिला था।

लेकिन एक दूसरा विचार उस पर हावी हो गया—सड़कें महमूद के सैनिकों से पटी हुई थीं।

"यही तो खतरे की वात है।"

"क्यों ?" नफीजा ने पूछा।

"क्योंकि केवल एक ही दर्रा है, जिसमें से होकर हिंदुस्तान पहुंचा जा सकता है।"

कुछ देर वाद, जव नीचे तलहटी में रात की विनाश-लीला से वचे हुए लोगों में से अधिकांश चले गए तो आनंद ने उन दोनों आदमियों को, जिन्हें वह कावुल से अपने साथ लाया था, अच्छा पारिश्रमिक देकर खच्चरों के साथ लौट जाने का हुक्म दिया। उसने शहावुद्दीन के खजाने से काफी धन अपने साथ ले लिया था। अव चूंकि शहावुद्दीन की मृत्यु हो चुकी थी, इसलिए वे आदमी रात की घटना के विषय में किसी से कुछ कहते तो भी आनंद को कोई हानि नहीं पहुंच सकती थी।

नफीजा के पास कोई शस्त्र नहीं था, इसलिए आनंद ने सुरक्षा के लिए उसे अपना खंजर दे दिया। नफीजा ने उसे अपनी वांह में छिपा लिया। आनंद और नफीजा अपने-अपने घोड़े पर सवार हो गये और चल पड़े। सौभाग्यवश दर्रे में उन्हें कोई नहीं मिला। रात में वे उपयुक्त स्थानों में पड़ाव करते जाते थे।

दर्रे में वे सुवह-सुवह ही अपनी यात्रा पर चल पड़ते थे। आनंद का ख्याल था कि अगर अगले गांव को उन्होंने सकुशल पार कर लिया तो कठिन परीक्षा के दिन समाप्त हो जायंगे। उसकी इच्छा, उस गांव के वाद, उत्तर की ओर जानेवाली सड़क पर चलने की थी। वह हिंदु नदी को कुछ ऊपर जाकर पार करना चाहता था, ताकि महमूद के सैनिकों से कोई ख़तरा न रहे।

जव वे उस गांव के पास पहुंचे तो गोधूलि-वेला हो चुकी थी। आनंद और नफीजा ने अपने घोड़ों की चाल धीमी कर दी। एक वृक्ष के तले खड़े होकर आनंद ने अपने चारों ओर एक नज़र डाली। चुपचाप चलते हुए, मकानों की छांह में छिपते-छिपते, वे गांव की गली को पार करने लगे। उन्हें कहीं कोई दिखायी न दिया। गांव को वे सकुशल पार कर गए।

बाहर निकलकर उन्होंने एक वृक्ष के नीचे रात को विश्राम करने का निश्चय किया। जब वे खाना खा चुके और विश्राम करने जा रहे थे तो आनंद को किसी घोड़े की हिनहिनाहट सुनायी दी। उसने देखा कि चार घुड़सवार गांव की ओर से घोड़े दौड़ाते हुए चले आ रहे थे।

रास्ते के पास ही, पेड़ के नीचे, आनंद और दो घोड़ों को देखकर वे रुक गये। उनमें से एक, जो नायक जान पड़ता था, आगे आकर बोला, "ऐ सुनो ? तुम कौन हो ? यहां किसलिए आये हो ?" उसने पश्तो में प्रश्न किया था। उसकी आवाज़ रूखी, तेज़ और असंस्कृत थी।

"हम लोग शहंशाह की छावनी जा रहे हैं।"

वह आदमी कुछ और क़रीब आ गया और उसने आनंद के चेहरे को ग़ौर से देखा।

उसकी दृष्टि में संदेह स्पष्ट था। नफीजा की तरफ मुख़ातिब होकर उसने उसे अपने सिर की पगड़ी उतारने के लिए कहा। वह अपनी पगड़ी उतारने जा ही रही थी कि आनंद ने कड़ककर कहा, "यह हज़रत शहा-बुद्दीन की बेटी है। क्या तुम्हारी औक़ात के आदमी इसकी तौहीन करेंगे ?"

यद्यपि आनंद ने प्रकट रूप से निडरता प्रदर्शित की थी, परंतु नफीजा ने उसके स्वर में भय का अनुभव किया। वास्तव में वह चिंतित हो गया था। पहली ही बार नफीजा को अहसास हुआ कि बहादुर होने का मतलब निडर होना नहीं, बल्कि डर के बावजूद अपने काम को करते रहना है।

"यह तो चलकर तुम हमारे ख़ान को बताना।" घुड़सवारों के नायक ने कहा, "हमारे साथ चलो। दलील करने की मुझे फुरसत नहीं है।"

चारों सवार अपने घोड़ों से उतर गये। आनंद ने अपनी तलवार इस-लिए नहीं खींची कि अगर वह उनसे युद्ध करते मारा जाता तो नफीजा की देख-भाल कौन करता ? इस मुसीबत से छुटकारे का उसे और ही कोई उपाय करना होगा। उन लोगों ने आनंद के हाथ बांध दिये और उसकी कमर में एक रस्सी डाल दी। नफीजा को उन्होंने घोड़े पर ही सवार रहने दिया। आनंद को वे कमर में बँधी रस्सी से खींचते हुए ले चले। एक दूसरा

सवार आनंद के घोड़े को ले चला।

वे अपने घोड़ों को ख़ासी अच्छी चाल से ले जा रहे थे। आनंद को उनके साथ चलने के लिए लगभग दौड़ना पड़ रहा था, जिससे उसे बड़ी कठिनाई हो रही थी। वे लोग आधा कोस ही चल पाये होंगे कि आनंद की सांस फूल गई, लेकिन गनीमत हुई कि तबतक खान का छोटा-सा किला आ गया।

वह जगह ऊंची दीवार से घिरी थी और उसमें एक ही प्रवेश-द्वार था। बीच में एक छोटा-सा मकान था। मकान के सामने के एक बड़े कमरे में ख़ान एक डैला (ऊंची खाट) पर बैठा हुक्का पी रहा था। आनंद को जब उसके पास ले जाया जा रहा था तो उसने हिसाब लगाकर देख लिया कि ख़ान के पास चार नौकर और हैं।

ऐसा लगा कि ख़ान को हुक्के से बढ़कर कोई दूसरी चीज़ प्यारी नहीं। उसने कड़कती आवाज़ में पूछा, "मुल्क के इस हिस्से में तुम किसलिए आये हो?"

आनंद ने नम्रता से कहा, "खान, मैंने यह नहीं समझा था कि हज़रत शहाबुद्दीन की बेटी को अपने साथ शहंशाह महमूद की छावनी में ले जाना ग़ैरमुनासिब है।"

"तुम काबुल गये कैसे? तुम तो पख़्तून नहीं मालूम पड़ते।"

"मैं उनकी नौकरी में हूं। हिंदुस्तान में काम करता हूं।"

"और तुम क्या वाकई शहाबुद्दीन की दुख़्तर हो?" खान ने नफीजा से पूछा।

लालटेन की रोशनी में वह बहुत सुंदर दिखायी दे रही थी।

प्रयत्नपूर्वक अपने मन से भय की भावना दूर कर अधखुली पलकों के भीतर से कटाक्ष करते हुए नफीजा ने कहा, "नहीं तो, तुम मुझे क्या समझते हो?"

"अच्छी बात है। हम हज़रत शहाबुद्दीन का आज इंतज़ार करते रहे

हैं, कल तक तो वे ज़रूर ही इधर से गुजरेंगे। हमें उनका पैगाम मिल चुका है।"

आनंद के सामने अब यह समस्या थी कि इस कठिन परिस्थिति से अपने को कैसे उबारूं। इतने आदमियों से लड़कर तो वह पार पा नहीं सकता था। खान के संदेह-निवारण और सोचने-विचारने के लिए थोड़ा समय पाने के इरादे से उसने कहा, "मेरे आका को जरूरी काम की वजह से आने में थोड़ी देरी हो गई है। मुझे उन्होंने इसलिए पहले भेज दिया है।"

इस बात से खान प्रकट रूप से संतुष्ट हुआ और उसने अपने आदमियों को आदेश दिया कि आनंद की रस्सियां खोल दी जायं।

आनंद मुक्त हो गया। उसे एक छोटे-से कमरे में रहने और बाहर न निकलने की आज्ञा दी गई। उसके सामने एक बड़ी बैठक में नफीजा को ठहराया गया। नफीजा पर मकान में इधर-उधर घूमने-फिरने पर कोई पाबंदी नहीं लगायी गई।

खान अतिथि-सत्कार के शिष्टाचार को नहीं भूला। उसने उन दोनों को अपने साथ खाना खाने की दावत दी।

नफीजा अपने पलंग पर लेटी थी, लेकिन मानसिक संताप, कष्ट, व्यथा, परेशानी और उलझन का बुखार उस पर हावी हो गया। रात में उमस थी, इसलिए वह बिस्तर पर करवटें बदलती और छटपटाती रही। जब इस तरह पड़े-पड़े थक गई तो उठी और आनंद के पास चली आई। आनंद को देखते ही उसका साहस लौट आया।

"अब क्या होगा ?" उसने पूछा।

आनंद गुमसुम था। चुप रहा।

"क्या तुम अब भी मुझसे नाराज़ हो ?" नफीजा ने पूछा।

"नाराज, बेहद।" आनंद ने अपनी झुंझलाहट को दबाते हुए कहा।

नफीजा ने उसकी ओर आश्चर्य से देखा, "क्या मैं तुम्हारे लिए इतना बोझ बन गई हूं ?"

"मैं तुम्हारे बारे में ही चिंतित हूं।" आनंद ने अपने रूखे स्वर को कुछ

नरम बनाते हुए कहा। "अगर मेरी योजना सफल न हुई तो तुम्हारा क्या होगा ?"

"भगवान की सौगंध !" नफीजा ने जोर से कहा, "फिजूल की बातों को लेकर दिमाग खराब करना कोई तुमसे सीखे। यह क्यों नहीं सोचते कि मरने से पहले हमें बहुत कुछ कर गुजरना है।"

आनंद ने उसके परिहास पर कोई ध्यान नहीं दिया, वरन् शांतिपूर्वक कहा, "मैं बार-बार यही सोचता हूं कि तुम मेरे साथ न होतीं तो इस झमेले में हमें न पड़ना पड़ता। तुम शायद नहीं समझ पा रहीं कि किन लोगों से तुम्हारा पाला पड़ा है। अगर तुम्हारे जीवन को कोई ख़तरा न हो तो भी तुम किसी पख्तून के घर लौंडी बनाकर रख दी जाओगी और तुम्हारी सारी ज़िंदगी बोझ बन जायेगी।"

"अरे, अब चुप भी करो !" नफीजा ने अधीर होकर कहा, "हम लोग इनके चंगुल से छूट जायंगे, और अगर किसी कारण से ऐसा न हुआ तो तुम्हारा दिया हुआ खंजर मेरे पास है ही, वह मेरे काम आयेगा।"

"लेकिन अभी तुम्हारी मरने की उम्र नहीं है, तुम अभी कमसिन हो।" आनंद ने विरोध किया।

"क्या किसी आदमी को असली खुशी पाने के लिए अधिक जवान या अधिक बूढ़ा होना जरूरी है ?"

"तुम भी ग़ज़ब हो।" आनंद ने प्रसन्नता से कहा, "तो ऐसा ही हो।" और दोनों खान के पास गए।

सरदार की आदत थी कि वह भोजन से पहले अफीम खाता था, इसलिए उसने अफीम की तश्तरी आनंद के सामने भी की। वह जब भी तश्तरी आनंद की ओर करता, आनंद उसमें से थोड़ी-सी अफीम उठा लेता और उसकी आंख बचाकर अपने पास जमा करता जाता था। जब खाना परोसा गया तो उसने चोरी-छिपे वह सारी-की-सारी अफीम खान के शोरबे में डाल दी।

अफीम की दूनी खूराक पहुंच जाने के कारण खान खाना खाते ही

अंटाचित हो गया। आनंद ने उसे उठाकर खाट पर डाल दिया और उसके वाद खाना परोसनेवाले नौकर को वुलाकर दस्तरख्वान पर से तश्तरियों को हटा देने के लिए कहा।

अव उन्हें दूसरे आदमियों के सोने जाने की प्रतीक्षा थी।

नफीजा को चुपचाप देखकर आनंद ने उससे पूछा, "तुम घवरा तो नहीं रही हो न ?"

"मैं तो इस मौके का न जाने कव से इंतज़ार कर रही हूं।" नफीजा आनंद को देखकर मुस्करा दी। उसने अपने और आनंद के वीच एकता के सूत्र का अनुभव किया, और वह निश्चिंत हो गई। आनंद में कुछ ऐसी विशेषता थी कि वह जहां भी रहता, निश्चिंतता का वातावरण वना देता था।

जव खान के घर के अन्य सभी लोग सोने के लिए अपनी-अपनी जगह चले गये तो आधी रात हो चुकी थी। किले के फाटक पर सिर्फ दो आदमियों को पहरे पर छोड़ दिया गया था। आनंद चुपचाप अस्तवल में गया। वहां कोई पहरेदार नहीं था। उसने अपने और नफीजा के घोड़ों पर ज़ीनें कसीं, फिर नफीजा से वोला, "अव मुझे देखना है कि तुम कैसे तलवार चलाती हो ? अच्छा हो कि तुम अपने खंजर से ही काम लो।"

खान की कैद से भागने के विचार-मात्र ने नफीजा को रोमांचित कर दिया। वह वाहर निकल आई और फाटक पर तैनात एक पहरेदार की वगल में जाकर वैठ गई। वोली, "नई जगह होने से मुझे नींद नहीं आ रही है। यहां के लोगों की जिंदगी के वारे में कोई वात सुनाओ, जिससे वक्त कटे।"

इस तरह उसने एक पहरेदार को वातों में लगा लिया। कुछ देर वाद आनंद भी वाहर आ गया और उसने दूसरे पहरेदार को इशारे से अपने पास वुलाया।

"तुम अपने कमरे से कैसे वाहर आ गए ?" दूसरे पहरेदार नें चिल्लाकर कहा और आनंद के पास गया।

"मेरी तबीयत कुछ ठीक नहीं है, इसलिए सोचा कि तुम्हारे पास ही चला चलूं।"

तभी अचानक अपना खंजर निकालकर नफीजा ने पहले पहरेदार की पीठ में घोंप दिया। जैसे ही वह आह करके गिरा, आनंद ने भी अपनी तलवार से दूसरे पहरेदार का काम तमाम कर दिया।

उसके बाद उन्होंने ज़रा भी समय नष्ट नहीं किया। आनंद और नफीजा तुरंत अपने घोड़ों पर सवार होकर निकल पड़े और उत्तर की ओर जानेवाली सड़क पकड़कर भाग खड़े हुए। वे तबतक नहीं रुके जबतक किले से काफी दूर नहीं निकल गये।

नफीजा में यह विशेषता थी कि वह घोड़े पर बैठे-बैठे सो सकती थी। जब उसने आंखें खोलीं तो रात बाकी थी और उनके घोड़े चलते ही जा रहे थे। रात-भर सफ़र करने के बाद वे खुले मैदानी भाग में आ गये थे। तारों भरी रात में वह वृक्षों की छायाओं को देख सकती थी। वृक्षों की शाखाएं आकाश की ओर उठी हुई थीं। सारा इलाका शांत था। कहीं से कोई आवाज़ नहीं आ रही थी। ऐसा लगता था कि दुनिया दम साधे चुप पड़ी किसी की प्रतीक्षा कर रही है। जैसे ही आकाश में सफेदी फैली, धरती ने जम्हाई ली और एक नया दिन जागा। नफीजा ने अपने भीतर एक नई शक्ति का अनुभव किया।

शीघ्र ही उन्होंने हिंदु नदी को पार कर लिया। अपनी सारी अंतः-शक्ति के होते हुए भी नफीजा संभ्रमित थी। यह विचार उसे मंत्रमुग्ध कर रहा था कि इतने सारे वर्षों के बाद वह अपनी जन्मभूमि में लौटी है। पीछे मुड़कर उसने उस पौराणिक नदी को देखा, जिसके किनारों पर वृक्षों की पंक्तियाँ संतरी की तरह खड़ी थीं, और जिसने इस देश को 'हिंद' नाम दिया। हिंदुघाटी में वनों, हरे-भरे चरागाहों और उनमें चरती हुई गाय-भैंसों का सौंदर्य देखते ही बनता था। इन सबके ऊपर, बहुत ऊपर, नारंगी रंग का चंदोवा ताने हुए नीलाकाश अपनी छटा से मन को लुभा रहा था।

सुनहले सूरज की रोशनी में उन दोनों को सुखद स्वतंत्रता की अनुभूति हुई।

रात की थकान और विपत्ति समाप्त हो गई और उन्होंने पक्षी का गीत सुना। आनंद को अपने हृदय में भी एक मधुर रागिनी बजती जान पड़ी। शायद नफीजा के हृदय में भी कुछ वैसी ही रागिनी बज उठी थी। उसने कहा, "अफ़जल !"

"अफ़जल कहां है यहां ?"

"मालूम है, अफजल नहीं है और महबूब पहले ही मारा जा चुका है।" आनंद अचंभित, उसकी तरफ देखता रह गया।

"मैं पहले ही जान गई थी।"

"बताओ न, कैसे ? कौन-सी चूक मुझसे हो गई थी ?"

"तुमने शहाबुद्दीन की बुद्धिक्षमता को कम आंका।"

आनंद और भी विस्मित हुआ, "तो, वह जानता था ?"

"नहीं, जानता नहीं था। वह केवल महबूब के संदेश पर निर्भर नहीं करता था, अन्य गुर्गों से भी पूछ-ताछ करता रहता था।"

"लेकिन उनकी ओर से कोई उत्तर नहीं मिला होगा।"

"नहीं, उत्तर मिला था। परंतु हुआ यह कि जिस दिन उत्तर आया, कबूतरों से संदेश लेनेवाला मेरे सिवा कोई न था। मैंने उत्तर प्राप्त कर लिया, उसे शहाबुद्दीन तक पहुंचाया नहीं।"

"तो तुम इतने दिनों सच्चाई से परिचित थीं और फिर भी मेरा विश्वास किये रहीं ?"

"तुम्हारे साथ आने का यह भी तो एक कारण था कि मैं जान गई थी कि तुम्हीं एक ऐसे आदमी हो, जो मुझे अपने माता-पिता की हत्या का बदला लेने में मदद दे सकते हो।"

"तुमने यह सब मुझसे इतने दिनों तक छिपाये क्यों रखा ?" आनंद ने पूछा।

"मुझे सबसे अधिक चिंता तुम्हारी ही थी।"

वे नीम के वृक्षों के एक कुंज की छाया में अपने घोड़ों को ले गए। नफीजा ने अपने चारों ओर दृष्टि डाली। वर्षा ऋतु आ गई थी। नीम के फूलों की भीनी-भीनी गंध से हवा लदी हुई थी। किसी-किसी नीम पर निम्बोली लटक रही थीं। मधुमक्खियों की भिनभिनाहट और चिड़ियों की चहचहाहट के अलावा कोई आवाज सुनायी नहीं देती थी। आनंद नफीजा को प्रशंसात्मक दृष्टि से देख रहा था।

"एक सुंदर स्त्री एक सजीले घोड़े पर वैठी हो, इससे वढ़कर अधिक मनोहर क्या कोई चीज हो सकती है ?" आनंद ने पूछा।

नफीजा हँस पड़ी। हँसने से उसके गालों में गड्ढे पड़ जाते थे। उसने कोमल स्वर में आनंद से कहा, "हम लोग क्यों न थोड़ा आराम कर लें !"

"क्यों नहीं !" कहकर आनंद अपने घोड़े से उतर गया और उसे एक वृक्ष के तने से वांध दिया। फिर उसने घोड़े से उतरने में नफीजा की मदद की।

नफीजा के घोड़े को भी वांध चुकने के वाद, आनंद उसके पास लेट गया, फिर अपनी कुहनी के वल उठकर उसने पूछा, "क्या सोच रही हो ?"

"तुम्हारे वारे में।"

"और मैं भी केवल तुम्हारे ही वारे में सोचता रहता हूं।" आनंद बोला।

"शायद तुम किसी और स्त्री को प्यार करते हो। मैं तुमसे सच-सच जानना चाहती हूं, आनंद।"

नफीजा पेड़ का सहारा लेकर पीछे को थोड़ी-सी झुकी, फिर अत्यंत तृप्ति की सांस लेते हुए उसने स्वप्निल मुद्रा में कहा, "मेरे सवाल का जवाव दो, आनंद। मैं तुम्हारा जवाव सुनने के लिए वेताब हूं।"

आनंद उसके कुछ और पास खिसक आया।

"ठीक है, मैं तुमसे सच्ची वात ही कहता हूं। मैं अपने जमाने में वहुत-सी स्त्रियों के संपर्क में आया—हर तरह की स्त्रियों के, लेकिन तुमको

देखने से पहले नफीजा, मैंने यह नहीं जाना था कि प्रेम किसे कहते हैं।"

प्रात:कालीन शीतल समीर प्रवाहित हो रही थी, उससे नफीजा के सिर पर से दुपट्टा हट गया। आनंद कहते-कहते एकाएक रुक गया और उसकी ओर देखने लगा। सूर्य की प्रथम किरणें उसके मुख पर पड़कर एक अनोखी कांति उत्पन्न कर रही थीं। वह सोचने लगा कि नफीजा की आकर्षक गरिमा, उसकी सर्वांग सुंदर देह-यष्टि, रोमांचित कर देनेवाली उसकी वाणी, इनमें से कौन-सी चीज है, जो उसे सर्वाधिक आकृष्ट करती है? उस क्षण, वह सोच रहा था कि नफीजा के विषय में वह कितना कम जानता है। उसकी अत्युत्तम काया के भीतर धड़कते हृदय को और उसके सुडौल उन्नत ललाट के पीछे सक्रिय मस्तिष्क को वह वास्तव में कितना जान पाया था?

"तुमसे अलग होने का विचार तक मैं सहन नहीं कर सकता।" उसने कहा।

आनंद के स्वर में जो गंभीरता थी, उसके कारण नफीजा ने लाज के मारे अपना मुंह दूसरी ओर फिरा लिया। लेकिन आनंद की इस भावना से परिचित होकर वह प्रसन्न हुई, अत्यंत प्रसन्न। आखिर वह अपने भविष्य के विषय में निश्चित हो गई। तभी अचानक हँस पड़ी—उल्लास और सुख की हँसी, स्वतंत्रता की हँसी।

□ २१ दो पाटों के बीच

राजस्थान में वर्षा से अधिक सुहावनी ऋतु नहीं होती। सारी मरुभूमि हरित आभा से ढंक जाती है। स्त्रियां गीत गाकर झूले झूलती हैं। विवाहिता और अविवाहिता महिलाएं तीज-त्योहार बड़े हर्ष से मनाती हैं।

विवाहिता स्त्रियों को इस अवसर पर पति का विछोह वहुत खटकता है।

उस दिन वीसलदेव अपने महल के जिस झरोखे के सामने अनासागर झील का जल लहरा रहा था, वहां एक मसनद के सहारे वैठे थे। वर्षा-ऋतु का लगभग अंत होने को था और झील पानी से लवालव भरी थी। अव तक भी कुछ युवतियां झूले पर गीत गा रही थीं। सूरज पर एक झीने वादल की छाया थी और वीसलदेव के चेहरे पर विषाद की रेखाएं। वे गंभीर थे। आनंद को कावुल गये चार महीने से अधिक हो गये थे, परन्तु उसका कोई संदेश उन्हें प्राप्त नहीं हुआ था। वीसलदेव यह तो जानते थे कि आनंद सहज ही हार माननेवाला नहीं था। किसी विशेष परिस्थिति में ही वह पड़ा होगा, अन्यथा उसने निश्चय ही सूचना भेजी होती।

तभी सामने वैठी राजमती पर उनकी नजर पड़ी। वह भी चिंतित थी। वीसलदेव की विचार-तंद्रा जरा टूटी। वे वोले, "राज, क्या करें, इस वार हम लोग उस जंगल में मिलन-तीर्थ पर नहीं जा सके।"

"जिसकी तैयारी हम कर रहे हैं, वह काम सफल हो जाय तो वड़े उत्साह से हम उधर चलेंगे।"

वाहर कुछ हलचल मालूम पड़ी और एक दासी ने वड़े वेग से कक्ष में प्रवेश किया। दासी झुकी और अभिवादन कर उसने शीघ्रता से ख़वर दी कि आनंद अभी-अभी लौटा है।

यह १०८४ विक्रमी संवत था। महमूद के फिर आने की खवर आग की तरह सभी राजाओं में फैल गई थी। महमूद हिंदु नदी के पश्चिमी तट पर अपनी सेनाओं को अपने सूवेदार की सेनाओं के साथ पुनर्नियोजित करने के लिए कुछ दिनों तक प्रतीक्षा करता रहा। आनंद महमूद के आक्रमण की सूचना तो ले आया, परंतु अभी उसको यह नहीं पता चल सका था कि वह किस तरफ से आयेगा।

महमूद ने अपनी सेना को दो भागों में वांटा था। एक भाग उसके सूवेदार के अधीन रहकर लड़नेवाला था, दूसरा भाग, जो संख्या में पहले

भाग की अपेक्षा कम था, उसने खुद अपने मातहत रखा था। इस भाग का काम था—मंदिरों को नष्ट करना और नगरों तथा गांवों की धन-संपत्ति तथा मूल्यवान वस्तुओं को लूटना। लड़ाकू-सेना में चालीस हजार सैनिक थे, जिनमें से दस हजार अश्वारोही थे। महमूद के मातहत पंद्रह से लेकर सोलह हजार सैनिक थे। उसने पांच हजार घुड़सवार-सैनिकों को पृष्ठभाग की रक्षा के लिए पीछे छोड़ दिया था।

महमूद ने इससे पहले भी भारत पर कई आक्रमण किये थे, परंतु इस बार वह जितनी सेना अपने साथ ला रहा था, उतनी पहले कभी नहीं लाया था। उसकी सेना ने सौराष्ट्र की ओर रुख किया। पहले की ही तरह इस बार भी आक्रमण का उद्देश्य राज्य की स्थापना करना उतना नहीं, जितना लूट-पाट था। जाहिर था कि महमूद अभी नदी के पूर्वी तटीय प्रदेश के, जहां उसने अपनी सूबेदारी कायम कर दी थी, आगे नहीं जाना चाहता था।

उसके आक्रमण के समाचार के तुरंत बाद विभिन्न राजाओं के पास सहायता करने तथा मिल-जुलकर महमूद के आक्रमण को विफल करने के लिए अपीलें पहुंचीं—"अगर हम महमूद को जीवित नहीं पकड़ लेते या उसका खात्मा नहीं कर देते तो यह अंततः हमारे देश पर अपना आधिपत्य स्थापित कर ही लेगा। हम अलग-अलग रहकर उससे नहीं लड़ सकते, क्योंकि इस तरह के युद्धों की तुलना में उसकी शक्ति बहुत अधिक होगी।" बीसलदेव ने कहा था।

बीसलदेव ने अपने मंत्रिमंडल की एक बैठक बुलायी। अपने सभा-भवन के सफेद और हरे संगमरमरी फर्श पर चहल-कदमी करते हुए वे जिधर भी जाते, उनके मंत्रिगण उधर ही उनको देखने लगते। बीसलदेव उनकी स्वेच्छापूर्वक दी गई सलाह को सुन रहे थे। जब सब लोग अपनी राय दे चुके तब बीसलदेव ने कहा, "किसी को भी महमूद के आक्रमण का समाचार मिलने से पहले मुझे आनंद के मार्फत यह समाचार मिल चुका था। मेरे पिताजी के राज्यकाल में महमूद ने अजयमेरु पर जो आक्रमण

किया था, वह मुझे अबतक याद है। लेकिन मैं आपको यह सलाह नहीं देना चाहता कि आप उसका पीछा करें। हम उस मौके की ताक में रहें जब वह अपनी वापसी यात्रा में हिंदु नदी की ओर जाने लगे। उस समय हम उसका प्रतिरोध करेंगे। तबतक उसकी सेना थक चुकी होगी और वह लापरवाह भी होगा। हम लोग नदी का मार्ग रोक दें तो कच्छ के रण में से गुजरता हुआ वह पानी के लिए भी तरसेगा।"

बीसलदेव ने आगे कहा, "हमने बहुत-सी लड़ाइयां लड़ी हैं और उनसे हमें कई चीजें सीखने को मिली हैं। सबसे उत्तम चीज जो हमने सीखी है, कम-से-कम मैंने तो जरूर सीखी है, वह यह कि यह संसार उतना महत्व-पूर्ण नहीं है, यह तो मात्र छाया है; जो वास्तविक है, वह इसके पीछे छिपा है।" इतना कहकर वे चुप हो गये।

यह निश्चय हुआ कि महामात्य रावल तेजसी के पास जायंगे और उनको लेकर सीधे पश्चिम चले जायंगे। अन्य मंत्रियों को दूसरे-दूसरे राजाओं के पास भेजा गया। अंतर्वेद (गंगा-जमुना का मध्यवर्ती भाग) के कछवाहों से अनुरोध किया गया कि वे अजयमेरु पधारें और प्रतिरोध-अभियान में बीसलदेव के साथ सम्मिलित हों।

अधिकांश राजाओं ने बीसलदेव के आमंत्रण को स्वीकार कर लिया। कुछ अपेक्षाकृत छोटे राजा भी अपनी स्वल्प सैन्य-शक्ति के साथ आये। शीघ्र हिंदु-सेना उस मार्ग पर चल पड़ी, जो हिंदु नदी के दक्षिण-पश्चिम की ओर जाता था। अजयमेरु से साठ हजार से अधिक सैनिकों ने कूच किया। बीसलदेव अपनी बीस हजार पैदल सेना के साथ थे। कछवाहा भी पंद्रह हजार सैनिकों को लेकर आये थे। छोटे-छोटे राजा भी अपनी सेनायें लाये थे।

यद्यपि उन लोगों को लंबा सफ़र करना पड़ा और सेना के आकार को देखते हुए दुर्घटनाओं का घटित होना भी स्वाभाविक था, परंतु मुश्किल से ही कोई दुर्घटना हुई। वर्षा-ऋतु के बीत जाने के कारण मौसम ठंडा था। उन्हें केवल कुछ ही दूर तक, जब वे रेगिस्तान के अंतिम भाग में पहुंचे,

गरमी का सामना करना पड़ा। तीन घुड़सवार घायल हुए और दो आदमी आपस में छुरेवाजी के कारण घायल हो गये। जहां तक सेनानायकों का प्रश्न था, उनके लिए तो सारा सफर धूल-धक्कड़ से भरा, चक्करदार और घटनाविहीन था।

वीसलदेव ने नदी के पूर्व की ओर का मोर्चा संभाला। इसी बीच चित्तौड़ के राणा तेजसी भी अपने तीस हजार पैदल सैनिकों और दस हजार अश्वारोहियों के साथ आ पहुंचे। उन्हें कक्ष से पूर्व की सड़क पर कुछ दूर तैनात किया गया, ताकि उपयुक्त समय पर वे महमूद की सेना पर पीछे से आक्रमण कर सकें।

उदयादित्य अपने दस हजार सैनिकों के साथ आया था। भट्टियों की ओर के भी दस हजार सैनिक उनसे आ मिले थे। उन्होंने उत्तर की ओर अपना मोर्चा जमाया। वे यह निश्चय कर लेना चाहते थे कि महमूद उस रास्ते से, उन्हें चकमा देकर, भाग न निकले। इस प्रकार एक लाख से अधिक सैनिकों ने मोर्चाबंदी की। उन्होंने महमूद और उसकी सेना को फँसाने के लिए एक शिकंजा ही तैयार कर लिया था।

महमूद की कुदृष्टि सोमनाथ पर लगी थी। सोमनाथ की मूर्ति मंदिर के बीचोंबीच प्रतिष्ठापित थी, परंतु न तो उसे नीचे से कोई आधार प्राप्त था, न ऊपर से ही वह लटकायी हुई थी। वस्तुतः वह हवा में तैर रही थी[1]। और सागर अपने ज्वार-भाटे से देव-प्रतिमा का पूजन करता था।

देश-भर के श्रद्धालु भक्त सोमनाथ महालय में देव-दर्शन के निमित्त आते और अपने साथ भेंट-स्वरूप रत्नादि बहुमूल्य वस्तुएं लाते थे। भगवान की पूजा करने के लिए हजारों पंडित नियुक्त किये गए थे। पांच सौ नृत्यांगनाएं देवालय के मंडप में देव-विग्रह के सम्मुख नृत्य-गान करती रहती थीं।

महमूद की गतिविधि और उसकी योजनाओं का पता लगाने तथा

---

१. कामिल-उल्-तवारीख, लेखक: इब्न असीर।

सूचना देते रहने के लिए बीसलदेव ने पहले ही अपने गुप्तचर नियुक्त कर दिये थे। बीसलदेव ने मोर्चा संभाला, तबतक उनके गुप्तचरों का एक अग्रिम दल वहां लौट आया था। उन्होंने सूचना दी कि गुजरात के राजा भीमसिंह, अह्लिलवाड़ पाटन के राजा और कुछ अन्य राजा भी अपनी सेनाओं सहित मंदिर की रक्षा करने के लिए एकत्र हो गए हैं। वे पिछले दस दिनों से महमूद को पास नहीं फटकने दे रहे हैं।

बीसलदेव ने वहां एकत्र सभी राजाओं की एक परिषद् बुलायी। उन्होंने सबसे पूछा, "क्या हम महमूद का पीछा करने के लिए सोमनाथ महालय चलें या अपनी पूर्व-योजना के अनुसार यहीं उसकी ताक में बने रहें ?"

विचार-विमर्श के पश्चात् यही निश्चय हुआ कि उन्हें इसी स्थल पर महमूद की प्रतीक्षा करनी चाहिए, क्योंकि जबतक वे सोमनाथ पहुंचेंगे, संभव है, वह कहीं अन्यत्र चल दे।

इसके बाद उन्हें सूचना मिली कि सोमनाथ की रक्षा करनेवाली सम्मिलित सेना के एक सेनापति ने विश्वासघात किया और एक पखवारे तक देवालय का घेरा डाले रहने के बाद महमूद देवालय में प्रविष्ट हो गया।

सोमनाथ के प्रधान पुजारी ने महमूद के सामने यह प्रस्ताव रखा कि वह अगर मंदिर में न घुसे तो उसे प्रभूत धनराशि दी जा सकती है। महमूद ने धन-संपदा स्वीकार भी कर ली, परंतु मूर्तिभंजक का विरुद अर्जित करने के लिए मंदिर में प्रविष्ट हो गया और मूर्ति खंडित कर दी। उसने मूर्ति को सजानेवाले स्वर्ण, वस्त्राभूषणों तथा रत्नादि को एकत्र किया और लूट के सारे माल को एक हजार ऊंटों पर लादकर सोमनाथ से चल पड़ा।

जब यह समाचार हिंदु-सेना के पास पहुंचा तो उन्हें अत्यंत रोष हुआ। सभी राजाओं की पुनः बैठक हुई और महमूद को नेस्तनाबूद करने का उनका संकल्प और भी दृढ़ हो गया।

"हमें ऐसी नाकेबंदी करनी चाहिए कि इस बार महमूद हमसे बचकर न जाने पावे।" बीसलदेव ने कहा।

वे अपनी मोर्चाबंदी में यथोचित परिवर्तन करने का विचार कर ही रहे थे कि गुप्तचरों ने सूचना दी कि महमूद अन्हिलवाड़ की ओर जा रहा है। अन्हिलवाड़ एक द्वीप पर बसा हुआ राज्य था। महमूद वहां के राजा को सोमनाथ मंदिर के रक्षा-युद्ध में सहायता पहुंचाने के लिए दंड देना चाहता था।

महमूद ने ज्वार उतरने पर समुद्र को पार किया और नगर पर आक्रमण करके उसे खूब लूटा। नगर के सभी पुरुषों को मरवा डाला और स्त्रियों को दासी बनाने के लिए अपने कब्जे में कर लिया। गुप्तचरों ने यह भी सूचना दी कि महमूद अपने साथ सोमनाथ महालय के एक पुजारी को भी ले गया है, ताकि वह हिंदु नदी तक उसको मार्ग दिखा सके।

"यह अच्छा मौका है। मार्ग-दर्शक चाहे तो महमूद और उसकी सेना को गुमराह कर सकता है।"

आनंद से कहा गया कि वह इसका प्रबंध करे। आनंद बड़ी चतुराई से वेश बदलकर तुरंत रवाना हो गया।

महमूद के सैनिक इस समय तक लड़ते-लड़ते और लंबी यात्रा के कारण बहुत थक गए थे। वे स्वदेश लौटने के लिए आतुर थे। महमूद की महत्वाकांक्षा अन्य राजधानियों को भी लूटने की थी, परंतु अपने सैनिकों की अनिच्छा देखकर उसने इस योजना को त्याग दिया। वह सोमनाथ के दक्षिण के भी कुछ नगरों पर आक्रमण करना चाहता था, परंतु उसी के आदमियों ने उसे विरत कर दिया। उन्होंने उत्तर की ओर रुख किया। धीरे-धीरे उनकी खाने-पीने की रसद छीजती जा रही थी। कच्छ के रन में धूप की तेजी बढ़ गई थी और मौसम बहुत गरम हो गया था। महमूद के सैनिक उस गरमी की वजह से बिलबिलाने लगे। अब एक-एक दिन काटना दूभर होता जा रहा था।

"लगता है, आनंद ने अपने सुपुर्द काम को अच्छी तरह पूरा कर दिया है।" वीसलदेव ने कहा।

"हमने कभी स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि महमूद इतनी मूर्खता

करेगा और हमारे विछाये जाल में इस बुरी तरह जा फंसेगा।" राणा ने कहा।

हिंदू-सेना अंतिम क्षण में मोर्चेवंदी में कुछ परिवर्तन कर रही थी, इसलिए उसके शिविर में वड़ी चहल-पहल थी। मूलत: उसने योजना को वैसा ही रखा, जैसा पहले निश्चित किया गया था। गुप्तचरों ने सूचना दी कि यदि महमूद अपने मौजूदा रास्ते पर इसी तरह वढ़ता रहा तो पांच दिनों में मित्र सेना की मोर्चावंदी के पास आ जायगा।

महमूद के सैनिकों की जल-संवंधी आवश्यकता नदी-घाटी से पूरी हो सकती थी, किंतु उस पर हिंदू-सेना का नियंत्रण था। महमूद की सेना को न केवल हिंदु सेना के प्रहारों का सामना करना था, वल्कि प्यास की असह्य यातना का भी।

महमूद जव कुछ नजदीक आ गया तो भट्टी धनुर्धरों ने 'मारो और भागो' की रणनीति अपना ली। वे महमूद की सेना पर वाण-वर्षा करने के वाद छिप जाते थे। इससे उसे आगे वढ़ने में वड़ी कठिनाई होने लगी। महमूद के लिए अव यह भी संभव नहीं रह गया कि वह अपना रास्ता वदले। वह नदी घाटी तक आगे वढ़ता चला गया। उसकी वाढ़ तव रुकी जव उसने वीसलदेव की सेना को अपना रास्ता रोके हुए पाया।

राणा तेजसी भी आगे वढ़े और उन्होंने महमूद के पीछे लौटने का मार्ग अवरुद्ध कर दिया। महमूद अव चक्की के दो पाटों के वीच आ गया था। यद्यपि गत दो दिनों से वह अनुभव कर रहा था कि वह जाल में फंसता जा रहा है, तथापि उसे अपने शत्रुओं की शक्ति का सही अंदाज नहीं था। उसे भरोसा था कि अपनी सेना की मदद से वह किसी भी वाधा को तहस-नहस कर डालेगा। शहावुद्दीन की मृत्यु के वाद से उसकी गुप्तचरी की व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो गई थी।

जव महमूद की सेना दो तरफ से घिर गई तो वीसलदेव ने उदयादित्य और वचे हुए भट्टियों को संदेश दिया कि वे अधिक निकट आ जायं। वहुत तड़के उन्होंने महमूद का प्रतिरोध करनेवाली सेनाओं का वड़ी वारीकी से

निरीक्षण किया और आक्रमण करने का आदेश दिया। महमूद की घुड़सवार-सेना उनका सीधा मुकावला करने के लिए आगे बढ़ी। बीसलदेव देखते रहते थे कि महमूद के सैनिकों के वाण कहां गिर रहे हैं, फिर वे अपने सैनिकों को आगे वढ़ने का संकेत देते थे। कुछ ही देर में महमूद और हिंदुओं की सेना में भिड़ंत हो गई। दोनों पक्ष एक-दूसरे पर क्रुद्ध सिंहों की तरह टूट पड़े।

हवा में खून के फव्वारे छूट रहे थे और नदी की घाटी आदमियों और घोड़ों की चीखों, चिल्लाहटों से गूँज रही थी। दोपहर तक हिंदु-सेना शत्रु की सेना को पीछे धकेलकर आगे वढ़ गई।

महमूद घुटनों के वल वैठ गया और उसने खुदा की इवादत की। उसके वाद उसने अपने सैनिकों को प्रोत्साहित कर आगे वढ़ने का आदेश दिया। बीसलदेव की अश्वारोही सेना उस जोरदार हमले से एक वार तितर-वितर हो गई, परंतु शीघ्र ही अपने को संगठित कर उसने प्रत्याक्रमण कर दिया और महमूद की सेना को पीछे हटा दिया।

वीसलदेव ने राणा तेजसी के पास अपना दूत इस आशय का संदेश देकर भेजा कि कुछ देर वाद वे पीछे हट जायं और यह दिखाने का वहाना करें, मानो हरा दिए गये हों। उनके जो सैनिक आक्रमण कर रहे हैं, उन्हें पीछे मुड़ने का आदेश दे दें और खुद भी उनके पीछे-पीछे चलें। महमूद समझेगा कि वे मैदान छोड़कर भाग रहे हैं, इसलिए अपनी कुछ सेना को उनका पीछा करने के लिए भेज देगा। इस तरह उसकी सेना विभाजित हो जायगी। राणा तेजसी ने ऐसा ही किया। महमूद की सेना इस झांसे में आ गई, जिससे उन लोगों का अनुशासन भंग हो गया।

महमूद की सेना ने पीठ फेरी ही थी कि राणा तेजसी के सैनिकों ने उसे पीछे से धुनना शुरू कर दिया। आगे की मुसलमान घुड़सवार फौज वीसलदेव के भयंकर आक्रमण का शिकार हो गई। शत्रु की पहले ही अस्त-व्यस्त और घवराई हुई सेना, वीसलदेव के तेज प्रहारों के आगे

बिलबिला उठी। यह स्थिति रात तक बनी रही। अंधेरा अधिक हो जाने पर ही दोनों पक्ष अलग-अलग हुए।

अगली सुबह तक महमूद के अधिकांश सैनिक, जो पीछे छूट चुके थे, अंधेरे की ओट में आ मिले। उन्होंने हिन्दू सेना के हजारों हरावल सैनिकों पर हमला बोल दिया। वे तेज हवा के झोंकों के बावजूद धावे-पर-धावा बोल रहे थे। प्राणों की परवा किये बिना बीसलदेव की सेना में घुस पड़ते, मार-काट करते और खुद भी मारे जाते। पिछले दिन वे जितनी भयंकरता से लड़े थे, आज उससे भी अधिक भयंकरता से लड़ रहे थे। महमूद बार-बार उन्हें बेरहम होकर दुश्मन को गाजर-मूली की तरह काटने के लिए उत्तेजित कर रहा था। युद्ध में उसकी उपस्थिति के कारण उसके सैनिकों को बड़ा उत्साह मिल रहा था और उस दिन जैसा धैर्य तथा सहनशीलता उन्होंने कभी प्रदर्शित नहीं की थी।

बीसलदेव भी अपने सैनिकों को हाथों के संकेत से आगे बढ़ने के लिए प्रोत्साहित कर रहे थे, और इसका अच्छा प्रभाव उनके सैनिकों पर पड़ रहा था। वे लगातार सफलता प्राप्त करते जा रहे थे। इसी समय उदयादित्य ने उत्तर दिशा से आगे बढ़ना शुरू किया और महमूद की सेना को तितर-बितर कर दिया। इससे उत्तर में खाली जगह रह गई। बीसलदेव उस रिक्त स्थान को भरते, तबतक महमूद अपने पांच हजार अश्वारोहियों के साथ उस रास्ते से नौ-दो-ग्यारह हो गया। वह भाग गया और विजय बीसलदेव को मिली। आदिलशाह मर चुका था। महमूद के बचे-खुचे सैनिक इधर-उधर भाग गये।

सूर्य ने पश्चिम में, दूरवर्ती वृक्षों की पंक्ति के पीछे, गौरव की चकाचौंध के बीच अस्त होते हुए समस्त युद्धक्षेत्र पर सुनहली आभा विकीर्ण कर दी। वह सारा लंबा-चौड़ा मैदान लाशों से पट गया था। कुछ लाशें अभीतक फड़क रही थीं, लेकिन अधिकांश लकड़ी की तरह कड़ी पड़ गई थीं?

लड़ाई खत्म हो चुकी थी।

हिंदुस्तान में महमूद की सल्तनत की पहली बुनियाद उखाड़ दी गई। हिंदु-सेना हिंदु नदी की पूरी लंवाई में फैल गई और खैवर दर्रे तक धावा करके विदेशी आक्रांता के आधिपत्य के समस्त अवशेषों को समाप्त कर दिया गया।

वीसलदेव का हाथी उनकी अश्वारोही सेना और पैदल सेना के वीच खड़ा था। उन्होंने सारे दृश्य का अवलोकन किया। अश्वों पर आसीन उनके सेनापति साथ थे। वे उस व्यक्ति के बदलते हुए तेवर देख रहे थे, जिनके विषय में वहुतों का विचार था कि वह अपनी अनुभूतियों का प्रदर्शन करने में बहुत संकोची है।

महामात्य ने अपना घोड़ा आगे बढ़ाया और उसे वीसलदेव के हाथी के समानान्तर ले आये, फिर अपने घोड़े की रकाव पर खड़े होकर उन्होंने धौंसे पर चोट मारने का संकेत किया। धौंसे पर चोट पड़ते ही वीसलदेव यथार्थ जगत में लौट आये। इसके अनंतर महामात्य ने राजा को संवोधित करते हुए कहा, "महाराजाधिराज, इस संध्याकाल में एक बड़ा उल्लसित जनसमूह यहां एकत्र हुआ है एवं नये युग का आरंभ हुआ है। आक्रांताओं को देश की सीमा से बाहर खदेड़ दिया गया है और सूर्य अव अपने पूर्ण गौरव के साथ चमक रहा है।"

वीसलदेव अपने हाथी पर से उतरे, सेना के समीप गये और तुमुल हर्षनाद के बीच अपने सैनिकों में मिल गए। थोड़ी ही देर में विजयी सेनाओं के कूच का डंका वजा।

ठीक उसी समय अजयमेरु के दुर्ग में राजमती ने प्रकाश, आनंद, सफलता और विजय के देवता सूर्य भगवान की प्रातःपूजा समाप्त की और चारों ओर से उसे शुभ सगुन होने लगे। उसका वाम अंग फड़कने लगा, हृदय में हर्षोल्लास की लहरें उमड़ने लगीं। उसके अंतर में वार-वार कोई कह रहा था—स्वागत की तैयारियां करो, तुम्हारे हृदयेश्वर शत्रु को पराजित कर, विजयश्री से मंडित, धौंसे की धमक पर चले आ रहे हैं।

परिशिष्ट

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

राजपूतों के उपवंशों का इतिहास लिखने में कोई ठोस आधार प्राप्त करने के लिए राजपूताना के इतिहासकार को वड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता है। जो भी तथ्य हैं, वे स्वल्प, अपर्याप्त और असंतोषजनक हैं। इतिहासकार को उन्हीं के सहारे इतिवृत्तरूपी सरिता का अवगाहन करना पड़ता है। परंतु अपनी खोज के दौरान उसे कुछ ऐसे तथ्य मिल जाते हैं, जो उसके सारे परिश्रम को सार्थक कर देते हैं। उन तथ्यों के बिना उसका काम निरर्थक ही होता। चौहानकुल के अंतर्गत जो वीस अनुवंश गिनाये गए हैं, उनमें से प्रत्येक के साथ हम एक पृथक सूचना संलग्न किये दे रहे हैं, जिससे, हमें आशा है, उनका महत्व समझनेवाले लोगों को संतोष होगा। इनके साथ ही साथ कुछ टिप्पणियां भी दी गई हैं, जिनका वीसल-देव के उत्तराधिकारी हरस के विषय में किये गए अनुसंधानों से सीधा संबंध है।

पहली बात तो यह है कि वीसलदेव की तिथि को सही-सही निर्धारित करना मज़ाक नहीं है। वीसलदेव माणिकराय से लेकर पिरथीराज (पृथ्वीराज) तक के चौहान-वंशी राजाओं में सर्वाधिक महत्वपूर्ण थे।[1] उनके वंश-वृक्ष का एक अंश हमारी बात को भली-भांति स्पष्ट कर देगा।

दिल्ली में फ़ीरोजशाह के महल के बीच में एक प्रसिद्ध स्तंभ खड़ा है।

---

१. 'ऐनल्स एंड ऐंटीक्युटीज आव राजस्थान' लेखक टाड

उस पर जो लेख उत्कीर्ण है, उसमें सबसे पहले वीसलदेव (विशालदेव) का नाम आता है। इस स्तंभ के विषय में यह कहा जाता है कि चंद कवि ने चौहानों की प्रशस्ति करने के लिए इसको निगमवोध घाट पर, जो यमुना पर एक तीर्थस्थान है और दिल्ली के समीप है, स्थापित किया था। यह स्तंभ निश्चय ही वहां से हटाकर अपने वर्तमान स्थान पर स्थापित किया गया होगा।[1]

यह स्तंभ-लेख वैशाख १५, संवत् १२२० को अंकित होना प्रारंभ हुआ और उसी दिन इसका लिखना समाप्त भी हुआ। अगर इसकी सही-सही प्रतिलिपि की जाय तो इसमें बीसलदेव का संदर्भ इससे अधिक कुछ नहीं आता कि वह 'प्रतिव चह्माण तिलको शाकंभरी भूपति' अर्थात् भूपति पिरथीराज चौहान का पूर्वज था, जो सांभर के राजा थे तथा जिनका दिल्ली पर संवत् १२२० में शासन था और जो संवत् १२४६ में मार डाले गए तथा जिन्होंने सबसे प्राचीन राज्यों में से एक राज्य सांभर के भूपति का विशेषण बनाये रखा।

मैं अंतिम चौहान सम्राट के हांसी या हासी स्थित राजप्रासाद के ध्वंसावशेष से एक शिलालेख इस आशय का ले आया था। यह शिलालेख संवत् १२२४ वि० का है।[2]

दूसरा श्लोक यह कहता है कि स्तंभ-लेख[3] पर जो दो तिथियां दी गई हैं उनमें से पहली तिथि का हमें विश्वास नहीं करना चाहिए, और

---

१. देखिए, 'एशियाटिक रिसर्चेज' खण्ड १, पृष्ठ ३७६, खंड २, पृष्ठ १८० और खंड ६, पृष्ठ ४५३

२. इस संबंध में टिप्पणियां देखिए : 'ट्रांजेक्शन्स आफ दि रायल एशियाटिक सोसायटीज' खंड १, पृष्ठ १३३

३. इन लेखों की बहुत विद्वत्तापूर्ण व्याख्याएं की गई हैं, परंतु इनसे एक बात स्पष्ट हो जाती है कि केवल अनुवादों का कितना कम महत्त्व है। इन लेखों के अनुवादक कोई सामान्य व्यक्ति नहीं रहे हैं। इनको अनुवादित किया है प्रथम श्रेणी के विद्वानों ने, जिनका इस क्षत्रीय-वंश के बारे में ऐतिहासिक ज्ञान भी बहुत था।

१२२० (११२० के बजाय) पढ़ना चाहिए। यह तिथि वही है जब विशाल-देव ने 'म्लेच्छों को आर्यावर्त से खदेड़ दिया'। संस्कृत में १ व २ अंकों में सरलता से भ्रम हो सकता है। फिर भी अगर यह तिथि निश्चित रूप से संवत् १२२० ही हो तो यह मानना पड़ेगा कि सारा स्तंभ-लेख 'प्रतिव चह्माण' (पृथ्वीराज चौहान) से संबंधित है, और पृथ्वीराज और विशालदेव के

सर्वप्रथम इस स्तंभ-लेख का अनुवाद किया सर विलियम जोन्स ने १७८४ में (एशियाटिक रिसर्चेज खंड १)। संभवतः एक नई प्रतिलिपि से श्री कोलब्रुक ने १८०० ई० (एशियाटिक रिसर्चेज खंड : ७) में अनुवाद का एक नया पाठ प्रस्तुत किया। लेकिन इससे विषय स्पष्ट होने के बजाय और भी भ्रमोत्पादक बन गया। अपने पंडित के द्वारा स्वयं के अनुवाद का उन्होंने जो संशोधन कराया, उसमें तो राजा के नाम और उनके वंश को अलंकारिक रूपकत्व ही प्रदान कर दिया गया। विलफोर्ड ने जब विक्रमादित्य और शालिवाहन के विषय में अपना प्रबंध प्रकाशित किया (वह प्रबंध अजीब गड़बड़झाला है) तब श्री कोलब्रुक को अपनी गलती का पता चला। तदंतर उन्होंने उस पुस्तक की टिप्पणी में अपनी भूल को सुधारा, फिर भी इस स्तंभ-लेख को ऐतिहासिक दस्तावेज के रूप में उपयोगी नहीं बनाया जा सका। मैं विलफोर्ड के प्रबंध को समझ-बूझकर ही गड़बड़झाला की संज्ञा दे रहा हूँ। यह प्रबंध अत्यंत शोधात्मक है। इसको प्रस्तुत करने में लेखक ने बहुत-से ग्रंथों तथा आलेखों का उपयोग किया है। लेकिन उसकी अपनी एक परिकल्पना है, जिसको प्रमाणित करने के लिए उसने सभी तथ्यों को तोड़ा-मरोड़ा है। श्री विलफोर्ड ने अपनी 'इंडिया' में चौहानों, सोलंकियों, गहलोतों सभी को खिचड़ी बना दिया है। उन्होंने हम्मीर चौहान के (जो मेवाड़ के राजा न थे, जैसा कि विलफोर्ड ने कहा है, वरन् रणथंभौर के राजा थे) चारण शांर्ङ्गधर द्वारा लिखित 'शांर्ङ्गधर' पद्धति के आधार पर अपनी यह मान्यता बनायी थी। हम्मीर चौहान विशालदेव की ही वंश-परंपरा में थे। उनको अलाउद्दीन खिलजी ने मार डाला था। शांर्ङ्गधर 'हम्मीर रासो' और 'हम्मीर काव्य' का भी रचयिता था। इन दोनों काव्यों के मुख्य अंशों का अनुवाद मैंने अपने गुरुजी की सहायता से किया है। बहुत दिनों तक मैं श्री विलफोर्ड की शोधों का प्रशंसक रहा, परंतु अनुभव से मुझे उनमें अविश्वास उत्पन्न हुआ। फिर तो मैंने इन सभी मामलों में यह दृष्टिकोण अपना लिया कि प्रशंसा मत करो।

मध्य कम-से-कम छह राजा और सिंहासनासीन हो चुके थे। इस तरह प्रथम श्लोक का प्रारंभ मात्र पिरथीराज की वंश-परंपरा को सांकेतिक करता है। संभव है स्तंभ पर लेख को उत्कीर्ण करनेवाले शिल्पी ने तिथि में गड़बड़ कर दी हो।

मैं यह उचित समझता हूं कि फ़ीरोजशाह के महल के ध्वंसावशेष में स्थित स्तंभ पर उत्कीर्ण लेख के प्रथम श्लोक को विशालदेव (वीसलदेव) से संबंधित माना जाय। उनके वंशज पृथ्वीराज से संबंधित जो अंश उसमें आ जुड़ा है, उसके विषय में यही कहा जा सकता है कि पृथ्वीराज ने अपने पूर्वपुरुष विशालदेव की विजय-वर्षगांठ का समारोह मनाते समय उनके अंकित स्तंभ-लेख में अपनी विजयों का भी उल्लेख करा दिया होगा। पृथ्वीराज द्वारा प्राप्त जीतें भी ठीक वैसी ही थीं, जैसी कि विशालदेव की। विशालदेव ने भी मुसलमानों को आर्यावर्त से भगा दिया था, और पृथ्वीराज ने भी उनके आक्रमण को विफल करके वैसा ही कार्य किया था। मुसलमान लेखक भी इस बात को स्वीकार करते हैं कि शहाबुद्दीन मुहम्मद ग़ौरी जब अंतिम रूप से उत्तरी भारत को विजय कर पाया, उससे पहले अपमान-जनक रूप से पृथ्वीराज चौहान द्वारा पराजित किया जा चुका था।

जैसी कि मेरी धारणा है, यदि स्तंभ-लेख के प्रथम श्लोक को वीसल-देव संबंधित मान लिया जाय तो उसकी विक्रमी तिथि संवत् ११२० या ईस्वी सन् १०६४ निश्चित होती है। चौहानों के चारण चंद ने महमूद गजनवी के विरुद्ध हिंदुओं की सम्मिलित सेना के प्रत्याक्रमण की जो प्रशस्ति गायी है, वह बीसलदेव के नेतृत्व में संगठित हुई थी। बीसलदेव ने ही अपनी नेतृत्व-कुशलता से उस समस्त अभियान को सफल बनाया था, और उसी की स्मृति को सुरक्षित रखने के लिए उक्त स्तंभ पर यह लेख उत्कीर्ण कराया गया होगा।

चंद कवि द्वारा लिखित जो अंश स्तंभ पर उद्धृत है, उसमें उन राजाओं का भी उल्लेख है, जिन्होंने अपनी सेनाओं को महमूद-विरोधी अभियान में

वीसलदेव के सेनापतित्व में रख दिया था।[1] इन नामों में से चार ऐसे हैं, जो समकालीनता को निर्धारित करने में सहायक हो सकते हैं। एक नाम तो ऐसा है, जिससे हम प्रत्यक्षत: वीसलदेव के काल का निर्धारण कर सकते हैं, किंतु तीन नाम ऐसे हैं, जिनसे इस कार्य में अप्रत्यक्ष साक्ष्य ही प्राप्त होता है। पहला नाम है उदयादित्य परमार का। यह धार का राजा था और राजा भोज का पुत्र था। मैंने आलेखों और दस्तावेजों के आधार पर उसका काल वि० संवत् ११०० और संवत् ११५० के मध्य निर्धारित किया है। इससे हम इस निष्कर्ष पर पहुंच सकते हैं कि उदयादित्य ने जब महमूद-विरोधी अभियान में भाग लिया तो वह उसके शासन का लगभग मध्य काल रहा होगा।

अप्रत्यक्ष साक्ष्यों में भी काफी प्रामाणिकता और प्रबलता है। इनमें से प्रथम नाम सामने आता है 'डेरावल के भोमिया भट्टी' का। चंद के कथन में यदि कुछ अप्रामाणिकता होती तो जैसलमेर को, जो आजकल भट्टी राजपूतों की राजधानी है, भट्टियों का मूल स्थान बताया गया होता।[2]

---

१. देखिए, 'रायल एशियाटिक सोसायटी' खंड : १, पृष्ठ १३३ पर दिया गया विवरण।

२. डेरावाल की स्थापना के संबंध में देखिए 'ऐनल्स आफ जैसेलमेर' पृष्ठ : १८८। चौहानों की एक महत्त्वपूर्ण शाखा, खींचियों के इतिवृत्त को लिखते समय उनके चारणों ने इस अंश को सुरक्षित रखा है, परंतु चूंकि वे डेरावल और लौदोर्व (चंद का जो पाठ मेरे पास सुरक्षित है, उसमें इन दोनों का उल्लेख है) से अपरिचित थे, इसलिए उन्होंने इनके स्थान पर जैसलमेर का नाम जोड़ दिया। अज्ञानी चारणों द्वारा किये गए संशोधनों के कारण तिथि-संबंधी जो भूलें हो गई हैं, उनके कारण उनके द्वारा रचित इतिवृत्त-ग्रंथों का मूल्य आधा ही रह जाता है। पुराने चारणों ने चंद कवि की मूल उक्तियों को सुरक्षित रखा था, परंतु आधुनिक चारणों ने उनको तोड़-मरोड़ दिया। मैंने दोनों प्रकार के पाठों का तुलनात्मक अध्ययन किया है और यह विषय मेरे लिए बहुत आनंददायी रहा है। इनके कारण बहुत सारी मान्यताएं, जिनको मैंने निराधार समझकर तिरस्कृत कर दिया होता, साधार प्रमाणित हुईं। इस बात से मुझे यह शिक्षा भी मिली कि निरपेक्ष आविष्कार और की जानेवाली

दूसरा नाम है, कछवाहों का। इनको अंतर्वेद (यमुना और गंगा के मध्यवर्ती प्रदेश) से आया हुआ बताया गया है। नरवर से आमोर के इर्द-गिर्द छोटी-सी उनकी बस्ती का मूलस्थान कहां रहा होगा, इसका अभी पता नहीं लग सका है।

तीसरा प्रमाण प्राप्त होता है, मेवाड़ के आलेख से। इस आलेख में समरसी के पितामह तेजसी के विषय में कहा गया है कि उन्होंने बीसलदेव से संधि की थी और साथ मिलकर कार्य किया था। बीसलदेव के विषय में बताया जाता है कि वे चौसठ वर्ष तक जीवित रहे। यदि मान लें कि उनके जीवन-काल की मध्यवर्ती तिथि संवत् ११२० थी, तो उनका समय संवत् १०८८ से संवत् ११५२ या ईस्वी सन् १०३२ से ईस्वी १०९६ के बीच निर्धारित होता है। किंतु उनके पिता धर्मगज या बीराबीरम देव की (जिनको हम्मीर रासो में मलूनदेव कहा गया है) मृत्यु महमूद के अंतिम आक्रमण के दौरान अजमेर (अजयमेरु) की रक्षा करते हुए हुई थी। इस तरह हमें बीसलदेव की जन्म-तिथि को दस वर्ष पहले ले जाना होगा। (यह मानते हुए कि महमूद के अंतिम आक्रमण के समय वे बच्चे ही रहे होंगे।) उस दशा में बीसलदेव का जीवन-काल ईस्वी सन् १०२२ (संवत् १०७८) से ईस्वी सन् १०८६ (संवत् ११४२) तक निर्धारित करना होगा। यह तिथि दिल्ली के स्तंभ पर अंकित तिथि से मेल खाती है और इतिवृत्त में उल्लिखित सभी अवधियों का इससे हिसाब ठीक बैठ जाता है। इस प्रकार हम हम्मीर-रासो का रचनाकाल निरापद रूप से संवत् १०६६ से संवत् ११३० के बीच निर्धारित कर सकते हैं।

इसलिए यह माना जा सकता है कि बीसलदेव दिल्ली के तोमर राजा जयपाल का समकालीन था। बीसलदेव के ही समकालीन नरेश थे गुजरात

गलतियों में अंतर है। खीचियों के चारण ने जब डेरावल नाम को मिटाकर जैसलमेर नाम लिखा होगा, तब उसने अपने मन में निश्चय ही सोचा होगा कि वह ठीक काम कर रहा है।

के दुर्लभ और भीम, धार के भोज और उदयादित्य, मेवाड़ के पद्मसी और तेजसी, और जिस सम्मिलित हिंदु-सेना का बीसलदेव ने नायकत्व किया होगा, वह मुसलमान बादशाह मौजूद के विरुद्ध, जो महमूद गजनवी की चौथी पीढ़ी में हुआ, संगठित की गई होगी। राजपूताना के उत्तरी भागों से बादशाह मौजूद को निकाल भगाने से आर्यावर्त पुनः 'धर्मक्षेत्र बन गया।' बीसलदेव और अजमेर के राजा के द्वारा संगठित सेनाओं से, जिन्हें महमूद का विरोध करने के लिए संगठित किया गया था, बचकर महमूद का सिंध के रास्ते से भारत से हमेशा के लिए निकल जाने की घटना ४१७ हिजरी या १०२६ ईस्वी या १०८२ विक्रमी संवत् में घटित हुई होगी। यह तिथि उस तिथि (संवत् १०८४ विक्रमी) से लगभग मिलती-जुलती है, जिसका उल्लेख चंद कवि ने अपने लेख में किया है।

(टॉड के ग्रंथ से उद्धृत)
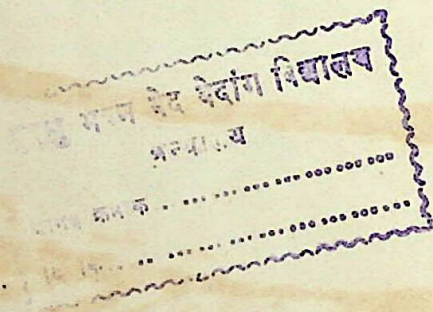
मंडल का उपन्यास साहित्य

देवदासी
नवीन यात्रा
हृदय नाद
जिंदगी दांव पर
प्रेम प्रपंच
ज्वालामुखी
प्रेम और प्रकाश
[illegible]
भाग्य की विडम्बना
जागे तभी सवेरी
पद्मिनी का शाप
प्रेम की देवी
नियति के पुतले
टाम काका की कुटिया
मेघ मल्हार
लहरों के बीच